❖ अपश्चिम तीर्थंकर महावीर
(भाग – द्वितीय)
प्रेरणा स्रोत– आचार्यश्री रामेश

❖ प्रथम संस्करण : सितम्बर, 2008 3100 प्रतियाँ

❖ अर्थ सहयोगी
श्री सुजानमलजी कर्नावट, बैंगलोर

❖ मूल्य : 40/– (चालीस रु. मात्र)

❖ प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज)
दूरभाष 0151–2544867, 3292177, 2203150 (फेक्स)

❖ आवरण सज्जा : विष्णु व्यास, बीकानेर

❖ मुद्रक
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस
मोहता चोक बीकानेर (राज)
फोन 9314962474/75

प्रकाशकीय

भारतीय सस्कृति अपने भीतर अनेक धर्मों को समाहित करने वाली है। अनेक धर्म, अनेक सम्प्रदाय, अनेक जातियो के मध्य जैन धर्म का विशिष्ट एव प्रभावशाली स्थान है। जैन धर्म अनादिकाल से करुणा, दया, वात्सल्य, स्नेह का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी धारा को निर्मल एव पवित्र बनाकर प्रवाहित कर रहा है। जैन धर्म मे अनेक सम्प्रदायो के मध्य श्री साधुमार्गी जैन सघ का विशिष्ट स्थान है। श्री साधुमार्गी जैन सघ को इतिहास के स्तर पर आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर चरम तीर्थंकर भगवान महावीर से जोडा जा सकता है। इन सभी तीर्थंकरो ने अपने समय मे विशुद्ध धर्म अर्थात् समता धर्म, शुद्ध आत्मधर्म, अहिसा, सयम, तप, वीतराग धर्म का प्रवर्तन किया और तत्कालीन युग मे व्याप्त विकृतियो और विषमता के खिलाफ विचार और आचार दोनो स्तरो पर क्रान्ति कर सच्ची साधुता, सज्जनता, सात्विकता का मार्ग प्रशस्त किया। उसी परम्परा की विचार ऊर्जा और आचारनिष्ठा को अपने मे समाहित किये हुए श्री साधुमार्गी जैन सघ आज भी जीवन्त है।

वर्तमान मे शास्त्रज्ञ, तरुण तपस्वी, प्रशान्तमना श्रमण विभूति सयम सरोवर के राजहस कोहिनूर दीप्ति मणी आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म सा अपनी अद्भुत प्रतिभा और प्रखर मेघा के साथ सघ का कुशल नेतृत्व कर रहे हैं। जिनके प्रवचनो मे जवाहराचार्य की झलक, अनुशासन मे गणेशाचार्य की झलक एव जिनके जीवन मे नानेशाचार्य की झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। शास्त्रीय धरातल और आगमिक ग्रन्थो के तलस्पर्शी अध्ययन के साथ ही आचार्य श्री रामेश सयमी क्रिया के प्रति भी अत्यन्त सजग है। तिन्नाण और तारयाण पद को सार्थक करते हुए आचार्य श्री रामेश अपने साथ-साथ अपनी शिष्य मडली के शुद्धाचार हेतु सदैव सजग रहते है। अपने उज्ज्वल एव पवित्र जीवन तथा शास्त्र के दिशा-निर्देश को अपने जीवन मे ढालकर पूज्य आचार्यदेव ने जनमानस के समक्ष एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है। ज्ञान ओर क्रिया के बेजोड सगम आचार्यदेव अपने श्रावक समुदाय को भी ज्ञानवान चारित्रवान एव क्रियावान बना देखना चाहते हैं।

शुद्ध साध्वाचार के प्रतिबिम्ब आचार्यदेव सम्पूर्ण जनमानस के कल्याण एव उत्थान की भावना को लेकर ग्राम-ग्राम, नगर-नगर मे पदविहार करते हुए धर्म की ज्योत को प्रज्वलित कर रहे हैं। हुक्मसघ के इतिहास मे प्रथम बार उडीसा बिहार, झारखण्ड की धरा को पावन करते हुए पूज्य आचार्यदेव के चरण भारत की महानगरी कोलकाता की ओर बढे। जहाँ पर जन-जन को धर्म का बोध देते

हुए वर्तमान मे हावडा मे चातुर्मास हेतु विराज रहे है। कुछ वर्षो पूर्व भगवान महावीर के सिद्धान्तो एव जीवनशेली पर कुछ लेखनी की आवश्यकता महसूस हुई। हमारे सघ के वरिष्ठ सुश्रावक श्रीमान् पीरदानजी पारख तथा श्रीमान् हरीसिहजी राका ने इस विषयक अपनी जिज्ञासाएँ भी प्रस्तुत की।

इसका शोध करते हुए विदुषी महासती श्री विपुलाश्री जी म सा ने चूर्णि आदि प्राचीन ग्रन्थो का अध्ययन करते हुए भगवान के तपपूत जीवन को अपनी लेखनी से उकेरा तथा अपश्चिम तीर्थकर महावीर भाग–1 का प्रकाशन हमारे ही सघ के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष सघरत्न शासन गौरव श्रीमान् सुजानमलजी कर्णावट परिवार, वेंगलोर के सोजन्य से हुआ। इसके दो सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तक की अत्यधिक माग रही तथा विदुषी महासती श्री विपुलाश्री जी म सा ने गुरुकृपा एव अथक परिश्रम से अपश्चिम तीर्थकर महावीर भाग–2 का भी कार्य सम्पूर्ण किया। उसी का परिणाम है कि यह द्वितीय भाग आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसके प्रकाशन के लिये भी श्रीमान सुजानमलजी कर्णावट ने अपनी उदारता का परिचय दिया हे एतदर्थ सघ आपका आमारी है। श्री कर्णावट परिवार निश्चित रूप से सघ एव समाज की अद्वितीय सेवा कर रहा है। श्री साधमार्गी जैन सघ का परम सौभाग्य है कि आचार्यदेव अपने सूक्ष्म शास्त्रीय विवेचनो से साधु–साध्वी समाज मे ज्ञान की अलख जगा रहे हैं। उन्हीं मे से एक विदुपी महासती श्री विपुलाश्री जी म सा का वैदुष्य एव कौशल इस ग्रन्थ के सहज सुगम्य है।

विदुषी महासती श्री विपुलाश्री जी म सा ने अपनी सासारिक अवस्था मे सस्कृत मे एम ए प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की थी। दीक्षा पश्चात् स्व आचार्य श्री नानेश के चरणो मे आगमो का तलस्पर्शी ज्ञान किया। इस हेतु हम विदुषी महासती श्री विपुलाश्री जी म सा के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

हालाकि भगवान महावीर का जीवन सागर के समान गहरा, आकाश के समान विशाल एव कोहिनूर हीरे के समान उज्ज्वल है फिर भी उनके जीवन एव उनकी विहार यात्रा तथा सयमी चर्या के कुछ महत्त्वपूर्ण भागो को इस पुस्तक मे अत्यन्त कुशलतापूर्वक उभारा गया हे। प्रस्तुत ग्रन्थ को प्रकाशित करने मे पूर्ण सावधानी वरती गई हे, फिर भी कोई त्रुटि हो तो हम क्षमाप्रार्थी हैं।

मदनलाल कटारिया

सयोजक–साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ भा साधुमार्गी जन सघ, बीकानेर

समर्पण

श्रमण संस्कृति की प्रतिनिधि धारा साधुमार्ग मे ज्योतिर्धर,
क्रांतदर्शी और शातक्रान्ति के सूत्रधार आचार्यो की
ज्योतिरत्न मालिका मे वर्तमान शासननायक,
जिनशासन प्रद्योतक, सिरीवाल प्रतिबोधक,
मेरे परम आराध्य, अविचल आस्था के केन्द्र
"आचार्यप्रवर 1008 श्री रामलालजी महाराज सा "
को सादर समर्पित

– साध्वी विपुलाश्री

अर्थ सहयोगी परिचय

नए शब्दो के साथ नूतन वाक्यो मे शास्त्रोक्त निहित प्रेरक प्रसगो के प्रस्तुतिकरण की एक अद्वितीय कृति है– **"अपश्चिम तीर्थंकर महावीर"** भाग–2 इस अनुपम कृति के अर्थ सहयोगी अनन्य निष्ठावान, परम गुरुभक्त, सेवारत, साधनाशील श्री सुजानमलजी कर्नावट एव उनकी धर्मपत्नी अखण्ड सौभाग्यवती श्रीमती गुणमालाजी कर्नावट है। पूर्व मे भी "अपश्चिम तीर्थंकर महावीर" भाग–प्रथम के प्रथम व द्वितीय सस्करणो का मुद्रण भी आपके अर्थ सौजन्य से ही हुआ है।

मध्यप्रदेश की औद्योगिक नगरी इन्दौर मे जन्मे श्री सुजानमलजी कर्नावट आत्मज श्री प्यारचदजी कर्नावट ने व्यावसायिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रो मे महनीय कर्मठ कार्यों से न केवल कुल परम्परा को यशस्वी बनाया है, वरन् अपने उज्ज्वल कृतित्व से जिनशासन को भी गौरवान्वित किया है।

हुक्मगच्छ के परम प्रतापी जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी म सा से लेकर वर्तमान आचार्यप्रवर श्री रामलालजी म सा के शासन के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित कर्नावट परिवार धर्मसघ की सभी प्रवृत्तियो मे सक्रिय योगदान देने के लिए सदा ही अग्रसर रहा है।

उन्हीं श्रावकरत्न श्री सुजानमलजी कर्नावट के आदर्शपद चिन्हो का पदानुसरण करने वाले युवा हृदय श्री किशोरकुमाजी–श्रीमती नन्दाजी तथा दीपककुमारजी–श्रीमती रेखाजी पुत्र एव पुत्रवधुए भी उसी तरह से सघ, समाज, जिनशासन तथा गुरु भगवन्तो के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित हैं।

कर्नावट परिवार भाग्यशाली है कि उन्हे शास्त्रज्ञ तरुण तपस्वी, चारित्र चूडामणि, अखण्ड बाल ब्रह्मचारी परम पूज्य आचार्यश्री रामलालजी म सा की आज्ञानुवर्तिनी परम विदुषी, पडितरत्ना, महासती श्री विपुलाश्रीजी म सा द्वारा विरचित अनुठी कृति "अपश्चिम तीर्थंकर महावीर" भाग–2 के मुद्रण का सौभाग्य मिला है।

मै श्री कर्नावटजी को इस हेतु अपनी प्रणति समर्पित करते हए शासनदेव से प्रार्थना करता हू कि वे इसी तरह से आचार्य भगवन् के शासन के चहुमुखी विकास मे अपना समर्पण एव योगदान देते हुए सदैव कालजयी बने रहे।

देवीलाल सुखलेचा

विषयानुक्रमणिका

णमो जिणाणं

अनुत्तरज्ञानचर्या का प्रथम वर्ष
समर्पण की सौरभ

पदयात्रा की एक झलक :

भगवान् का कैवल्य ज्ञान महोत्सव ऋजुबालिका नदी के तट पर देवो ने हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न किया।[1] बडी धूमधाम से उत्सव मनाने के अनन्तर शक्रेन्द्र[क] स्वय सौधर्म[ख] देवलोक मे जाने को समुद्यत हुआ। भारतवर्ष की भूमि से कोटाकोटि योजन दूर [ग]घनोदधि[i] पर आधारित[2] सौधर्म देवलोक[ii] अपने दिव्य आलोक से चहुँ ओर आलोक विकीर्ण[घ] करता हुआ अर्धचन्द्राकार[4] रूप से अवस्थित अनेक देव-देवियो के आकर्षण का केन्द्र था। तेरह मजिला[5] यह सौधर्म कल्प सभी वैमानिक[ङ] देव-देवियो मे सर्वाधिक विमानो को समाहित करने वाला है।[6] इसमे रहे हुए बत्तीस लाख विमान त्रिकोण, चतुष्कोण[iii] एव गोल[7], जो कि एक-दूसरे से असख्येय योजन दूर, पक्तिबद्ध रूप से अपनी शोभा से नेत्रो को स्तम्भित कर रहे हैं। इन्हीं पक्तिबद्ध विमानो के मध्य विविध आकार धारण किये हुए [च]पुष्पावकीर्ण[iv] विमान पुष्प की तरह यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरे हुए-से प्रतीत होते हैं।[8] प्रत्येक मजिल के मध्य मे रहे हुए विमान, इन्द्रक विमान[9] के नाम से विख्यात है, जिनमे शक्रेन्द्र एव उनके सामानिक[छ] देव निवास करते हैं।

प्रत्येक इन्द्रकविमान[v] एव [ज]आवलिका प्रविष्ट[vi] विमानो के बीच चार दिशाओ मे चार [झ]अवतसक बने हुए हैं। पूर्व मे [ञ]अशोक अवतसक[vii], दक्षिण मे सप्तपर्ण अवतसक, पश्चिम मे चम्पक अवतसक और उत्तर मे आम्र अवतसक अपनी भव्य आभा से देवो को भी मत्र-मुग्ध करने वाले हैं। इनके मध्य मे सौधर्म अवतसक है। इन सभी मे उस-उस विमान के अधिपति देव का निवास स्थान है।

अनुत्तर ज्ञान-केवल ज्ञान

(क) शक्रेन्द्र-प्रथम देवलोक का इन्द्र

(ख) सौधर्म-प्रथम देवलोक का नाम

(ग) घनोदधि-घना जमा हुआ पानी

(घ) आलोक विकीर्ण-प्रकाश फैलाना

(ङ) वैमानिक- विमान मे रहने वाले देव (12 देवलोक 9 लोकान्तिक 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमानवासी देवो के लिए रूढ़)

(च) पुष्पावकीण-फूल की तरह बिखरे

(छ) सामानिक देव-इन्द्र के समान ऋद्धि वाले किन्तु इन्द्र पदवी से रहित देव

(ज) आवलिका प्रविष्ट - पंक्ति रूप मे रहे हुए

(झ) अवतंसक - श्रेष्ठ महल

(ञ) अशोक अवतंसक- अशोक नामक महल (विमान)

इन्द्रक विमान के चारो ओर चार अवतसक और मध्य मे सौधर्म अवतसक है। इसी सौधर्म अवतसक के मध्यातिमध्य[क] भाग मे शक्रेन्द्र का सौधर्म विमान है।[10] ऋजुवालिका से आगत शक्रेन्द्र ने इसी सौधर्म विमान मे प्रवेश किया। सौधर्म विमान की चारो दिशाओ मे श्वेतवर्णी[ख] एक-एक हजार द्वार आकर्षक, विचित्र चित्रो से चित्रित हैं। मणियो की जगमगाहट से उद्योतित[ग] द्वारो के उभय पार्श्वों[घ] मे बने विशाल मच अपनी दिव्य आभा से देवो की महर्द्धि को प्रदर्शित कर रहे हैं। मचों पर रखे सुगठित चन्दन कलश अपनी भीनी-भीनी महक से वायुमण्डल मे मलयज[ङ] प्रसरित कर रहे हैं। मचो के ऊपरी भाग पर नागदत (खूटियॉ) हैं, जिन पर लटकती वन मालाएँ जगती तल के विवाह मण्डप की शोभा को निरस्त कर रही हैं। उनके ऊपर बनी खूटियो पर लटकते हुए छीके, जिनमें धूप दान रखे हुए हैं। वे अगरु, तुरुष्क, लोबान आदि की गध से मानो देवलोक को गधवटिका के समान बना रहे हें। मचो पर मणिमय चबूतरे बने हुए हैं और उन चबूतरो पर भव्य प्रासाद[च] निर्मित ह। उन प्रासादो मे सिहासन, भद्रासन[छ] रखे हुए है, जिन पर इन्द्र के सामानिक देव अपने परिवार सहित ऋद्धि का उपभोग करते हैं।

सोधर्म विमान के ठीक मध्यातिमध्य भाग मे शक्रेन्द्र का उपकारिकालयन[ज] राजभवन है। यह राजभवन अपने से 500-500 योजन दूर चारो ओर से चार वनखण्डों[झ] (अशोकवन, सप्तपर्ण वन, चम्पक वन और आम्र वन) से घिरा है। इसी वनखण्ड मे शक्रेन्द्र ने प्रवेश किया। विशालकाय सघन वृक्षो से घिरा यह वनखण्ड कृष्ण मेघमाला की द्युति को धारण किये हुए है। समश्रेणि[ञ] मे स्थित तरुवृन्द पुष्प-फलो से लदे, अत्यन्त झुके हुए थे। वहॉ रहे हुए फल स्वादिष्ट, निरोग एव निष्कटक थे। नवीन मजरियो से शृगारित होकर पादप-वृन्द[ट] शक्रेन्द के स्वागत मे आतुर था।

तरुवृन्दों[ठ] के मध्य बने हुए लतागृह, कदलीगृह क्रीडास्थली की विशेष शोभा

(क) मध्यातिमध्य–ठीक बीचो बीच
(ख) श्वेतवर्णी–श्वेत रग वाले
(ग) उद्योतित–प्रकाशित
(घ) उभयपार्श्व–दोनो ओर
(ङ) मलयज–चन्दन से उत्पन्न सुगध
(च) प्रासाद–महल
(छ) भद्रासन–एक प्रकार का सिंहासन (आसन)
(ज) उपकारिका लयन–प्रशासनिक कार्यों की व्यवस्था के लिए निर्धारित भवन
(झ) वनखण्ड–जिस उद्यान में भिन्न जाति के उत्तम वृक्ष होते है उसे वनखण्ड कहते है

- जीवाजीवाभिगम चूर्णी

(ञ) समश्रेणि–कतारबद्ध
(ट) पादपवृन्द–वृक्ष समूह
(ठ) तरुवृन्द–वृक्ष–समूह

मे चार चॉद लगा रहे थे। स्थान-स्थान पर बनी स्वच्छ निर्मल जल की वापिकाएँ[क] चचल लहरो पर जीवन की क्षणिकता का इतिहास उत्टकित[ख] कर रही थी। भ्रमरो की गुजार और पक्षियो की चहचहाट वातावरण को कलनाद से व्याप्त कर रही थी।

प्रत्येक वनखण्ड मे बना श्रेष्ठ प्रासाद अपनी श्रेष्ठ शिल्प रचना से अनिमेष[ग] नेत्रो से देखने योग्य था। इन्ही प्रासादो मे वनखण्ड के अधिपतिदेव (अशोक देव, सप्तपर्ण देव, चम्पक देव और आम्र देव) निवास करते हैं।

इन प्रासादो की शोभा की एक झलक दृष्टिगत करके शक्रेन्द्र के चरण अपने राजभवन की ओर, जहॉ वह प्रशासनिक व्यवस्था करता है, गतिमान बन रहे हैं। वह राजभवन की पद्मवर वेदिका[घ] मे प्रविष्ट हुआ जहॉ विविध जाति के कमल छत्राकार रूप छत्रियो के रूप मे खडे मानो मुसलाधार वर्षा से रक्षा करने मे तत्पर हैं। पद्मवर वेदिका के पास प्रासाद के चहुँ ओर घिरा वनखण्ड अपनी परिमल[ङ] से वातावरण मे सुगन्ध प्रसरित कर रहा है। इसी वनखण्ड के मध्य मे बना प्रासाद, जिसकी चारो दिशाओ मे चार द्वार और तीन-तीन सीढियॉ है, पर खचित[घ] मणियो से चन्दन से भी अधिक सुगन्धित महक प्रसरित हो रही है।

इस राजभवन (उपकारिकालयन) के मध्यातिमध्य भाग मे निर्मित एक प्रासाद-अवतसक[छ] पॉच सौ योजन चौडा व 250 योजन लम्बा अपनी मनोहर आभा से विहॅसता हुआ-सा प्रतीत हो रहा है। इसके ईशान कोण मे सौ योजन लम्बी एव 50 योजन चौडी तथा 72 योजन ऊँची अतीव मनोहर रूप-लावण्य की उत्कृष्ट प्रतिकृति अप्सराओ से व्याप्त सुधर्मा सभा[viii] है।

इस सुधर्मा सभा की तीन दिशाओ (पूर्व, दक्षिण और उत्तर) मे तीन द्वार श्रेष्ठ स्वर्णशिखरो एव वनमालाओ से अलकृत है। इसमे निर्मित अडतालीस हजार चबूतरे और 48 हजार शय्याएँ[ix] अतीव शोभा से सुशोभित है।[11] इसी सुधर्मा सभा के मध्य श्रेष्ठ सिहासन पर शक्रेन्द्र आकर विराजमान हुआ।

देह से शक्रेन्द्र सुधर्मा सभा मे सिहासनस्थ हैं, लेकिन मन वह तो

(क) वापिकाएँ-बावड़ियाँ
(ख) उत्टंकित-उल्लिखित
(ग) अनिमेष-लगातार
(घ) पद्मवर वेदिका-श्रेष्ठ कमलो की बनी वेदिका-परकोटा-सा
(ङ) परिमल-सुगध
(च) खचित-जटित
(छ) प्रासाद-अवतंसक-श्रेष्ठ महल

करुणा निलय[क] भगवान् महावीर से सपृक्त[ख] है। चिन्तन की चॉदनी मे लोटती लहरो की बॉसुरीवत् भगवान् महावीर के सस्मरण चित्रपट की तरह मानस पटल पर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। उसी मे आकण्ठ डूबा श्रद्धाभिनत[ग] होकर सोच रहा है। ओह ! कैसा अद्वितीय जीवन भगवान् महावीर ने जीया है। स्वय प्रज्वलित होकर दूसरो को जिलाया है। स्वय कष्टसहिष्णु बनकर दूसरो को बचाया है। समता का उपदेश देने से पहिले स्वय परम समत्व की भूमिका पर आरोहण कर वीतरागता का मार्ग प्रशस्त किया है और अपने भीषणतम कर्म-जजाल को मात्र 12½ वर्ष मे मात्र 12½ वर्ष के अत्यल्पकाल[घ] मे तोड डाला। वे किसी भी स्थिति-परिस्थिति मे, किसी भी क्षेत्र मे, किसी भी अवस्था मे असफल, अपराजित नहीं हुए, क्योकि उन्होने सदैव स्वय को जीतने का अप्रतिम[ङ] पुरुषार्थ किया। दूसरो के किसी भी कृत्य से स्वय को जोडने का प्रयास नही किया, न स्वय की प्रशसा से कही प्रसन्नता की झलक दिखलाई, न निन्दा से विद्वेष की, प्रतिशोध की भावना। वैभाविक[च] परिणामो से सर्वथा दूर, वे स्वय मे जीकर स्वय को जीतने का पुरुषार्थ करते रहे। सहस्रो की भीड मे भी एकाकी रहकर आत्मशक्तियो को उजागर करने का प्रयास करते रहे।

प्रव्रज्या[छ] के प्रथम दिन जब उन पर घोर उपसर्ग आया और एक सामान्य ग्वाला भी अपने बैल बॉधने की रस्सी से उन्हे मारने को उद्यत हुआ तभी मैं स्वय वहॉ पहुँचा और ग्वाले को समझाकर उसे मारने से रोका और भगवान् से निवेदन भी किया, भते ! साधना के मार्ग मे अभी भीषणतम उपसर्ग आने वाले हं ओर उनसे रक्षा करने हेतु मैं स्वय आपकी सेवा मे उपस्थित रहना चाहता हूँ, लेकिन वे ठहरे महावीर ! उन्होने कहा—कष्टो मे समाधि ही वीतरागता प्राप्ति का मार्ग है। मै उस मार्ग मे स्वय अपने-आप को गतिमान करना चाहता हूँ इसलिए इस कार्य के लिए तुम्हारी उपस्थिति नही, मेरा स्वय का पुरुषार्थ उत्तम है।

कहॉ सामान्य मनुष्य, जो [ज]स्वल्प-सा भी कष्ट आने पर निरन्तर देव-स्मरण कर देव-सहायता के लिए अविरल[झ] तत्पर रहता है ओर कष्टो से निजात[ञ] पाने

(क) निलय-सदन
(ख) संपृक्त-लगा हुआ
(ग) श्रद्धाभिनत-आस्था मे युक्त
(घ) अत्यल्प काल-बहुत थोड़ा समय
(ङ) अप्रतिम-अद्वितीय
(च) वैभाविक-ससार मे भटकाने वाले
(छ) प्रव्रज्या-दीक्षा
(ज) स्वल्प- थोड़ा
(झ) अविरल- लगातार
(ञ) निजात-मुक्ति

के लिए कुछ सिद्धियॉ प्राप्त कर देवाकर्षण का प्रयास करता है और कहॉ महावीर! भगवान् महावीर ! जिनके लिए मै स्वय सेवा मे समुपस्थित था। साथ रहने का आकाक्षी, कष्ट से मुक्ति दिलाने को समुत्सुक[क] लेकिन भगवान् वे वय से अल्प, देहोत्सेध[ख] से अल्प लेकिन पुरुषार्थ मे सहनशीलता मे बहुत आगे त्वरित गतिमान अपने कर्मो को नष्ट करने मे तोडने मे मात्र स्वय का ही अवलम्बन एकमात्र ध्येय था स्वय की शक्ति को जगाने का और उसको पाने हेतु निरन्तर चलते रहे। कोई कष्ट देता तो भी समभाव क्रोध करे तो समभाव गाली दे तो समभाव फॉसी लटकाये तब भी समभाव समभाव की पराकाष्ठा को कहना सरल है, सोचना सरल है, पर जीवन मे अपनाना अत्यन्त कठिन है।

भगवान् महावीर ने अपने रोम-रोम मे निष्कषाय भाव को समा लिया था। मन, वचन, काया को कषाय के भीषणतम रोग से बचाते रहे। सदैव राग-द्वेष की ऑधी से अपने-आप को दूर रखते रहे। माया की चिनगारियो को सरलता के जल से बुझाते रहे। लोभ के भीषण पारावार[ग] को श्रुत शील की नौका से तैरते रहे और तैरते-तैरते पार पहुँच गये।

धन्य है ऐसे महान् पराक्रमशाली, धैर्य की पराकाष्ठा पर चलने वाले अपश्चिम तीर्थंकर[घ] भगवान् महावीर को, जिनका वह दिव्य तेजस्वी आभामण्डल, जिसे देखकर नयन हटते नही, मन थकता नही, चरण वहीं थम जाते है और मन मे उत्ताल[ङ] तरगे तरगायित होती है मानो जीवन का सर्वस्व समर्पण कर डालूँ। स्मरण हो रहा है, उस ऋजुबालिका का, जहॉ भगवान् के पधारने से कण-कण पवित्र हो गया। एक नई ताजगी, नई स्फूर्ति, नई चेतना और नये वातावरण का निर्माण हो गया। अरे ! उस ऋजुबालिका की छटा को एक बार और निहार लूँ। यह चिन्तन कर अपनी अवधिज्ञान[च] की धारा से शक्रेन्द्र ने पूर्वद्रष्ट ऋजुबालिका[छ] पर ध्यानाकर्षित किया और नयनाभिराम दृश्यो से मन मे आनन्द का अनुभव करते हुए "ओह ! ऋजुबालिका का सोम्य छटा वाला कूल"

(क) समुत्सुक–सम्यक् प्रकार से उत्सुक
(ख) देहोत्सेध–शरीर की ऊचाई
(ग) पारावार–समुद्र
(घ) अपश्चिम तीर्थंकर–अन्तिम तीर्थंकर
(ङ) उत्ताल–उछलती, चचल
(च) अवधिज्ञान–रूपी पदार्थो को देखने वाला ज्ञान
(छ) कूल–किनारा

प्रभु के विराजने से कितना नयनाभिराम लग रहा है। कल-कल की मधुर ध्वनि करने वाला नदी का स्वच्छ नीर अपनी चचल लहरो से अठखेलियॉ करता हुआ सतत पुरुषार्थ की प्रेरणा प्रदान कर रहा है। नदी के समीप पशु-पक्षियो का झुण्ड अपनी तृषा शमित करने के लिए निरन्तर स्वच्छ जल का पान कर विश्रान्ति का अनुभव कर रहे हैं। समीपवर्ती भूमि मे स्थित पेड-पौधे नवीन पल्लवों[क] को धारण कर मानो किसी के आगमन की प्रतीक्षा मे हर्षान्वित हो रहे हैं। आम्रवृक्षो पर आने वाली मजरियो का रसास्वादन कर कोकिल पचम स्वर से मीठी-मीठी वाणी बोल रही है। समीपस्थ खेतो की हलो से कर्षित[ख] भूमि पर नव-नवीन अकुर प्रस्फुटित हो गये हैं। हरीतिमा की चादर ओढकर धरती रूपी अभिसारिका[ग] मानो सर्वस्व पाने हेतु समागम को उद्यत है। सर्वत्र हर्ष का वातावरण परिलक्षित हो रहा है।

ऐसी बासन्तिक छटाओ से अभिनव श्रृगारित भूमि पर अद्‌भुत नजारा दिखलाई दे रहा है। बसत का यौवन चरमोत्कर्ष पर है। भीनी-भीनी महक से दिशाओ-अनुदिशाओ को सुगन्धित करती हुई वासन्तिक-बयारे[घ] नवजीवन मे स्फूर्ति प्रदान कर रही हैं। हरीतिमा की चादर ओढकर उसमे मजरियो के झिलमिलाते सितारो को जटित कर प्रकृति नवोढा[ङ] का रूप धारण कर रही है। ऐसे ऋतुराज मे शालवृक्ष की शीतल छाया तले गोदुह आसन[च] से ध्यान-साधना मे लीन, आत्मशक्तियो को जागृत करने मे सलग्न, भगवान् महावीर अपनी भीतरी ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करने मे सलग्न हैं। इधर भीतरी प्रकाश से भगवान् महावीर अपनी आत्मा को ओतप्रोत करने मे लगे हैं। उधर भुवन भास्कर अपनी चमचमाती मयूखा[छ] से वसुन्धरा को पूर्ण प्रकाशमान बनाकर निरन्तर अपनी उज्ज्वल प्रभा विकीर्ण कर रहा है।

लेकिन दोनो मे विशिष्ट अन्तर दिखलाई दे रहा है। दिनकर तो प्रखर तीक्ष्णता धारण कर शनै -शनै शीतल प्रकाश फैलाता हुआ मन्द ज्योतिपुञ्ज बन रहा है, लेकिन भगवान् महावीर तो आत्मज्योति का उज्ज्वल, उज्ज्वलतम प्रकाश पाने मे सफलता के सोपानो पर आरोहण कर रहे हैं।

(क) पल्लव- पत्ता
(ख) कर्षित-जुती हुई
(ग) अभिसारिका-रात्रि-नायिका
(घ) बयारें-हवाएँ
(ङ) नवोढा-नव-वधू
(च) गोदुह आसन-गाय दूहने वाला जैसे बैठता है, वह गोदुह आसन
(छ) मयूख-किरण

शनै-शनै दिन के अन्तिम याम[क] का आगमन हो गया। अस्तगत[ख] होने को उद्यत रवि[x] पश्चिम दिशा से विदाई लेने को उद्यत है। ऐसे समय मे चरम आत्मोत्कर्ष की ओर गतिमान शुभ मन, वचन, काया के योगो से, शुक्ल लेश्या मे निरत ज्ञान की अविरल धारा को शुभ्रतम बनाते हुए, चार घनघाती[ग] कर्मों[घ] (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय) को क्षय करते हुए कैवल्यज्ञान[ङ] उपलब्ध कर लिया।

अब शक्रेन्द्र चितन करता है–"अहो ! वह कैसा अद्भुत समय था कैसा मनोरम वातावरण था । मैं (शक्रेन्द्र) भी स्वय असख्य देव-देवियो से परिवृत[च] होकर भूमण्डल पर दिव्य महोत्सव मनाने गया था। अरे मैं ही क्या? स्वय 64 इन्द्र ! अपने-अपने देव-देवी परिवार सहित वसुधा[छ] पर महोत्सव मनाने गये थे चहुँ ओर देव-देवी दिखलाई दे रहे थे, मानो कोई देवमेला लगा हो या जगती-तल पर देवो की बरात उतर आई हो। क्या धूम मची थी जभियग्राम के बाहर, ऋजुबालिका नदी के तट पर ! कितना नयनाभिराम दृश्य ! मनोहरी समवसरण और उसमे भगवान् की भव्य देशना अब तो स्मृति मात्र रह गयी ।

एक मूहूर्त के पश्चात् भगवान् ने विहार कर दिया और मैं मैं भी यहाँ चला आया।" (पुन शक्रेन्द्र अवधिज्ञान से वर्तमान मे भगवान् को देखकर) "ओह ! भगवान् अभी भी विहारचर्या मे निरत है। मध्यम पावा की ओर पधार रहे है। सर्वस्व प्राप्त कर लिया फिर भी कितना पुरुषार्थ ! भव्य जीवो को प्रतिबोध देने के लिए, अनेक मुमुक्षुओ को सयम-पथ पर अग्रसर करने के लिए, अनेक भव्यात्माओ को कष्टो से उबारने के लिए, भोग से त्याग की पावन यात्रा करवाने के लिए, हिसा के महाताण्डव का महाविनाश करने के लिए चल रहे है, पैदल विहार पद विहार कर रहे हैं।

अपनी छोटी अगुली पर लोक को उठाने का सामर्थ्य[x''] रखने वाले[12], अतुल बलशाली, महान लब्धियो के धारक ! वे चाहते तो अपनी शक्ति के प्रयोग से एक क्षण मे मध्यम पावा पधार जाते, लेकिन नही महान् पुरुष शक्ति का आश्रय नही लेते पुरुषार्थ को प्रधानता देते हैं लब्धि का प्रयोग नही करते

(क) याम–प्रहर
(ख) अस्तगत–अस्त होने वाला
(ग) घनघाती कर्म–प्रबलता से घात करने वाला कर्म
(घ) कर्म–ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय
(ङ) केवल्यज्ञान– सम्पूर्ण ज्ञान
(च) परिवृत–घिरे हुए
(छ) वसुधा–पृथ्वी

वे अपवाद मार्ग[क] का जल्दी से सेवन नहीं करते वे तो आकाश-दीप की भॉति सबको दिशाबोध कराते हुए अपने कदमो से नगे पॉव चलकर सतत पथदर्शक बने रहे हैं। उनका अपना भव्य चिन्तन है "मैं ही लब्धि का प्रयोग करूँगा तो भविष्य मे होने वाले साधु-साध्वी, वे तो थोडी-सी मुसीबत आने पर.. तुरन्त लब्धि का प्रयोग करेगे, फिर नगे पॉव पद यात्रा करने .. वाले .. क्वचित्–कदाचित् ही रह जायेगे" साधु-साध्वियो को इगित करने के लिए प्रभु चरणो को निरन्तर गतिमान कर रहे हैं और महान् ऋद्धिशाली देव, जो स्वल्प समय मे वैक्रिय शक्ति से असंख्यात योजन पार चले जाते हैं, वे भी भक्तिवश .. श्रद्धावश भगवान् के साथ निरन्तर पदयात्रा कर रहे है।

कितना अभिराम दृश्य है ! आगे-आगे भगवान् और उनके पीछे-पीछे अनेक देव, जिनके मुकुट-कुण्डल-वस्त्र और आभूषणो की दिव्य आभा से रात्रि मे भी दिवा-सम[ख] प्रकाश फैल रहा है।

निश्चल नीरव निशीथिनी[ग] मे प्रभु की पदयात्रा[13] का यह दृश्य अनन्त काल बाद देखने को मिल रहा है।[14] शान्त-प्रशान्त प्रहरी[घ] के समान खडे वृक्षो की पक्तियॉ फल-फूलो से लदकर प्रभु का अभिवादन कर रही हैं। भगवान् के चरण पडने से भूमि का कण-कण सुगन्धित हो रहा है। वृक्षो के झुरमुटो पर आश्रय ग्रहण किये हुए खगवृन्द[ङ] मौन रहकर भगवान् का स्वागत कर रहे हैं। कल-कल निनाद[च] करने वाले प्रपात[छ] शीतल जलधारा का उत्स प्रवाहित कर प्रभु के आगमन पर कल-कल की हर्ष ध्वनि मुखरित कर रहे हैं। भगवान् के चरण-कमल जहॉ गिरते, उससे पहले उस स्थान पर देव स्वर्ण-कमल की रचना कर अपनी भीतरी दृढ आस्था का प्रकटीकरण कर रहे है और भगवान् की अतिशय पुण्यवानी का सूचन कर रहे है। अडतालीस कोस की यह सुदीर्घ यात्रा मात्र एक ही यामिनी[ज] मे बिना रुके, निरन्तर गमन करते हुए भगवान् तय कर रहे हैं।[15] धन्य है ऐसे महान् पराक्रमी प्रभु को।" (यहॉ यह ज्ञातव्य है कि भगवान् ने अपने केवलज्ञान मे जेसा देखा वैसा किया, किन्तु अन्य सभी साधु-साध्वियो को रात्रि-विहार का पूर्णतया निषेध किया हे। वृहत्कल्प-सूत्र 1/44)

(क) अपवाद मार्ग–आपत्ति मे चलने योग्य मार्ग
(ख) दिवा–सम–दिन के समान
(ग) निशीथिनी–अर्द्धरात्रि
(घ) प्रहरी–पहरेदार
(ङ) खगवृन्द–पक्षी–समूह
(च) निनाद–आवाज
(छ) प्रपात–झरने
(ज) यामिनी–रात्रि

शक्रेन्द्र अपने ज्ञान से भगवान् की विहार यात्रा सुधर्मा सभा मे बैठा चित्रपट की भॉति देख रहा है। भगवान् विहार करते हुए मध्यम पावा के महासेन उद्यान मे जाने को समुद्यत है। शनै -शनै कदमो से उन्होने पावा के महासेन उद्यान मे असख्य देवियो और देवो सहित प्रवेश किया।

महासेन का यह उद्यान आज प्रभु के पदार्पण से पुण्य-पुञ्ज-सा आभासित[क] हो रहा है। अपनी हरीतिमा से अतीव शोभायमान होता हुआ यह अनेक प्राणियो का आश्रय-स्थल बना हुआ है। विशालकाय पादपो का समूह सघन पत्तो से परिवृत, फल-फूलो से लदी डालियो से पृथ्वी-तल को चूमने-सा लगा है। नव-आगन्तुक मजरियो ने प्रभु के पधारने से अपने यौवन के उत्कर्ष को प्राप्त-सा कर लिया। पक्षियो के वृन्द अपने-अपने घोसलो मे प्रभु-सम्मिलन से मत्र-मुग्ध बने हुए भगवान् का स्वागत करते हुए चहचहाट करने लगे। मधुकरो[ख] की मधुर गुञ्जार की मनोरम ध्वनि प्रभु के आगमन पर पलक-पावडे बिछाने लगी।

स्थान-स्थान पर फहराने वाली ध्वजाऍ मानो कैवल्यज्ञान रूपी विजय का प्रदर्शन करने लगी। बावडियो पर बने सुरम्य झरोखो से छनकर आने वाली मन्द-मन्द समीर शीतलता प्रदान करती हुई प्रभु के चरण चूमने लगी। ऐसे सुरम्य वातावरण मे भगवान् ने महासेन उद्यान मे आश्रय ग्रहण किया और तप-सयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

प्रकृति के अचल मे पलने वाली मध्यम पावा नगरी का कण-कण पावनतम बन रहा है। प्राची[ग] दिशा सिन्दूरी रग से रगी हुई सूर्य को प्रकट करने की तैयारी मे संलग्न है। सुमेरु की प्रभा से अरुणाभ[घ] बना दिनकर धीरे-धीरे निकलता हुआ अपनी अरुण[ङ] किरणो से वसुन्धरा को अरुणाभ बना रहा है। खगो मे नभ मे उडने की होड-सी लग रही है। तभी शक्रेन्द्र का आसन यकायक कम्पायमान होता है। (शक्रेन्द्र चिन्तन धारा में) अरे यकायक यह क्या आसन प्रकम्पित हो रहा है? क्यो? (तुरन्त अपने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर) हॉ हॉ आज तो मध्यम पावा

(क) आभासित-प्रकाशित, दृष्टिगत
(ख) मधुकर-भ्रमर
(ग) प्राची-पूर्व
(घ) अरुणाभ-लाल आभा वाला
(ङ) अरुण-लाल

मे समवसरण[क] की रचना करनी है। अभी आभियोगिक[ख] देवो को बुलाता हूँ। तुरन्त आभियोगिक देवो को बुलाया।

आभियोगिक देव आकर–शक्रेन्द्र की जय हो। आपका आदेश पाकर हम श्रीचरणो मे आये हैं। आप हमारे योग्य सेवाकार्य फरमाइये।

शक्रेन्द्र–तुम मध्यम पावा जाओ और समवसरण की रचना के लिए भूमि परिमार्जित[ग] आदि करो।[16]

आभियोगिक देव–"जैसी प्रभु की आज्ञा।"

यो कहकर, ईशान कोण की ओर चले गये। वहाँ जाकर वैक्रिय शरीर बनाने के लिए [घ]वैक्रिय समुद्घात[xiii] किया। उससे उन्होने सख्यात योजन का रत्नमय दण्ड बनाया। उस रत्नमय दण्ड बनाने के लिए आभियोगिक देवो ने 1 कर्केतन रत्न, 2 वज्र रत्न, 3 वैडूर्य रत्न, 4 लोहिताक्ष रत्न, 5 मसारगल्ल रत्न, 6 हसगर्भ रत्न, 7 पुलक रत्न, 8 सौगन्धिक रत्न, 9 ज्योति रत्न, 10 अजन रत्न, 11 अजन पुलक रत्न, 12 रजत रत्न, 13 जातरूप रत्न, 14 अंक रत्न, 15 स्फटिक रत्न और 16 रिष्ट रत्न–इन सोलह रत्नो के बादर (असार–अयोग्य) पुद्गलो को दूर किया। यथासूक्ष्म (सारभूत) पुद्गलो को ग्रहण किया। इसके पश्चात् पुन वैक्रिय समुद्घात किया और वैक्रिय समुद्घात करके उत्तर वैक्रिय शरीर बनाया[17] और तत्पश्चात् अत्यन्त त्वरित[ङ] गति से वे मध्यम पावा[xiv] के महासेन वन उद्यान मे आये।

द्वितीय समवसरण मध्यम-पावा वहाँ आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा[xv] की, आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करके वदन-नमस्कार किया। वदन-नमस्कार करके भगवान् से कहा–हम शक्रेन्द्र के आभियोगिक देव आप देवानुप्रिय को वदन करते हैं, नमस्कार करते हैं। आपका सत्कार-सम्मान करते हैं। आप कल्याण रूप हैं, मगल रूप हैं, देव रूप हैं, चैत्य रूप हैं, आप देवानुप्रिय की हम पर्युपासना करते हैं।

[xvi]आभियोगिक देवो द्वारा यो कहे जाने पर भगवान् महावीर उन्हें सम्बोधित करते हुए फरमाते हैं–हे देवो ! यह प्राचीनकाल से, देव-परम्परा से चला आ

(क) समवसरण-भगवान् का प्रवचन स्थल, जो देव निर्मित होता है।

(ख) आभियोगिक-नौकर देवों की एक जाति निम्न श्रेणी के देव जो विद्याधरो की श्रेणी से 10 योजन ऊँचा आभियोगिक देवो के रहने का स्थान है।।

(ग) परिमार्जित-स्वच्छ

(घ) वैक्रिय समुद्घात-वैक्रिय शरीर निर्माण योग्य पुद्गलो का प्रवलता मे घात करना। इस प्रक्रिया के बाद उत्तर वैक्रिय शरीर वनता है, जिसको वनाकर ही देव भूमण्डल पर आते है।

(ङ) त्वरित-शीघ्र

रहा जीत-कल्प[क] है। यह देवो द्वारा करणीय है। यह देवों द्वारा आचीर्ण[ख] है। यह सब देवेन्द्रो ने सगत माना है कि सभी भवनपति[ग], वाणव्यन्तर[घ], ज्योतिष्क और वैमानिक देव[ङ] अरिहत भगवन्तो को नमस्कार करते हैं एव नमस्कार करते हुए अपने नाम-गोत्र को बतलाते हैं। भगवान् की इस मधुरिम वाणी को श्रवण कर आभियोगिक देव अत्यन्त हर्षित-प्रफुल्लित हुए। उन्होंने प्रभु को वदन-नमस्कार किया और ईशानकोण[च] मे चले गये। वहाँ जाकर पूर्ववत् वैक्रिय समुद्घात करके रत्नमय दण्ड बनाया। पुन वैक्रिय समुद्घात करके उत्तर वैक्रिय रूप बनाया, सवर्तक[छ] वायु की विकुर्वणा की और तत्पश्चात् राजप्रागण की सीको की बुहारी से सफाई करने वाले महान बलशाली पुरुषो की तरह आभियोगिक देवो ने भगवान् महावीर के आस-पास की एक योजन[ज] भूमि को साफ करना प्रारम्भ किया। वहाँ पर रहे हुए घास, पत्ते, ककर, पत्थर आदि को चुन-चुन कर एकान्त मे फेक दिया, फेककर भूमि को स्वच्छ बना दिया।

तत्पश्चात् पुन वैक्रिय समुद्घात[xvii] से उत्तर वैक्रिय शरीर बनाकर जैसे कोई भृत्य मनोयोग से फुलवारी को सीचता है, वैसे ही उन्होने मेघो की विकुर्वणा (रचना) की और रचना करके चार कोस की भूमि पर रिमझिम-रिमझिम फुहारे बरसायी। उन फुहारो से भूमि रजकण से आर्द्र बन गयी और मिट्टी मे सौंधी-सौधी महक आने लगी।

तदनन्तर आभियोगिक देवो ने पुष्पवर्षक[झ] पयोधरों[ञ] की विकुर्वणा की और चार कोस की भूमि मे अचित्त पचरगे मनमोहक सुगन्धित पुष्पो की वर्षा की।

उन मनमोहक सुमनो की सुगध से वातावरण महकने लगा।[18] तदनन्तर व्यन्तर देव वहाँ पर उपस्थित हुए। उन्होने चारो दिशाओ मे विचित्र मणि-रत्नो वाले आकर्षक तोरण द्वारो का निर्माण करना प्रारम्भ किया। मणियो की झिलमिलाहट से जगमगाते तोरण द्वार निपुण शिल्पकला द्वारा निर्मित करने के पश्चात् उन तोरणो पर छत्र, पुत्तलियाँ, मकर, ध्वजा और स्वस्तिक के अति

(क) जीतकल्प-आचार परम्परा
(ख) आर्चीण-पहले आचरण किया गया।
(ग) भवनपति-भवनो मे रहने वाले असुरकुमार आदि
(घ) वाणव्यन्तर-भूत, पिशाच आदि
(ङ) वैमानिक-विमान में रहने वाले 12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमान)
(च) ईशानकोण-पूर्व-उत्तर का कोण जहाँ पूर्व-ठत्तर का समागम होता है।
(छ) सर्वतक-वायु विशेष
(ज) एक योजन- चार कोस
(झ) पुष्पवर्षक-फूल वरसाने वाले।
(ञ) पयोधर-वादल

सुन्दर जीवन्त-से लगने वाले चित्रो को चित्रित किया।

तोरण द्वारो का निर्माण होने के पश्चात् तीन परकोटो को बनाने के लिए वैमानिक, ज्योतिष्क एव भवनपति देव अवतरित हुए। वैमानिक देवो ने आभ्यन्तर[क] परकोटे का निर्माण करना प्रारम्भ किया। विविध प्रकार के रत्नो से उन्होने परकोटा बनाकर, पचरगी मणियो से बडे ही आकर्षक कगूरो को निर्मित किया और कगूरो को बरबस नेत्रो को आकृष्ट करने वाले ध्वजा, पताका और तोरणो से चित्रित कर डाला। मध्य का परकोटा ज्योतिष्क देवो ने अतीव सुन्दर पीली आभा वाले स्वर्ण से बनाया और उस पर रत्नमय कगूरे रत्नजडित स्वर्णहारो की शोभा को विजित करने वाले बनाये। रजतमय[ख] बाह्य परकोटे का निर्माण करके उस पर स्वर्णमय कगूरे अपनी विशिष्ट लब्धि, शक्ति व कौशल से भवनपति देवो ने बनाये। सभी कगूरो पर विशिष्ट शिल्पकला को प्रदर्शित करने वाले चित्र, तीन लोक की शोभा का दिग्दर्शन करा रहे थे। अब व्यन्तर देवो ने चतुर्दिक् मे अगरु, तुरुष्क और लोबान की सुरभि प्रसरित कर आन्तरिक उल्लास का अनुभव किया।

तीन परकोटो का निर्माण होने के पश्चात् आभ्यन्तर परकोटे के बहु-मध्य भाग मे एक भव्य आभा वाले, सघन पत्तो वाले, भगवान् महावीर की अवगाहना से द्वादश गुण[ग] ऊँचाई वाले अशोक वृक्ष की स्थापना स्वय शक्रेन्द्र ने की। उसके नीचे पर्णकों[घ] की घनी छॉव मे एक आकर्षक पीठ[ङ] (चबूतरे) का निर्माण किया। उसके ऊपर एक देवच्छन्दक[च] और उस पर एक स्फटिक सिहासन को निर्मित किया। तत्पश्चात् ईशान देवलोक[छ] के देव सिहासन के ऊपर तीन छत्रो का निर्माण करते है। उस सिहासन के दोनो ओर दो यक्ष दो श्रेष्ठ चॅवरो को बींजते रहते हैं। इन चॅवरो का निर्माण चमरेन्द्र[ज] और बलिन्द्र[झ] करते हैं। तत्पश्चात् एक पद्म प्रतिष्ठित धर्म-चक्र को देव स्थापित करते हैं।[19]

आकर्षक रग से सुसज्जित, इस प्रकार, एक भव्य समवसरण का निर्माण होता है। समवसरण के ये तीनो परकोटे दर्शको को मत्र-मुग्ध बनाने वाले थे।

(क) आभ्यन्तर-भीतरी
(ख) रजतमय-चॉदी का
(ग) द्वादश गुण-बारह गुण
(घ) पर्णक-पत्तो
(ङ) पीठ-चबूतरा
(च) देवच्छन्दक-ऊँची चौकी जैसा
(छ) ईशान देवलोक-दूसरा देवलोक
(ज) चमरेन्द्र-असुरकुमार भवनपति का दक्षिण दिशा का इन्द्र
(झ) बलिन्द्र-असुरकुमार भवनपति का उत्तर दिशा का इन्द्र

एक परकोटे से दूसरे परकोटे की दूरी 1300 धनुष प्रमाण थी। प्रथम आभ्यन्तर परकोटे मे 10,000 पक्तियॉ और मध्य एव बाह्य परकोटे मे 5000-5000 पक्तियॉ बनायी गयी थी। ये बीस हजार पक्तियॉ एक-एक हाथ ऊँचाई पर बनी थी। चूँकि चार हाथ का एक धनुष[क] तथा दो हजार धनुष का एक कोस होने से समवसरण ढाई कोस ऊँचा था, परन्तु भगवान् के अतिशय प्रभाव से वहॉ चढने मे किसी को किचित्मात्र भी थकान का अनुभव नही होता था।[20]

ऐसे दिव्य समवसरण की रचना करने के पश्चात् अनेक देव भगवान् के समीप महासेन वन[ख] मे गये और भगवान् के चरणो मे स्तुति करने लगे। भते ! समवसरण परिपूर्णता को सप्राप्त है, आप वहॉ पधारे और भव्यजनो को विशिष्ट बोध प्रदान करे।

तब भगवान् महावीर महासेन वन—उद्यान से समवसरण की ओर पधारते हैं एव देव निर्मित समवसरण के पूर्व द्वार से देवो द्वारा स्तुति किये जाते हुए प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात् समवसरण के मध्यातिमध्य[ग] भाग मे, जहॉ स्फटिक सिहासन निर्मित था, वहॉ पधारते हैं और 'तीर्थाय नम ' कहकर उस पर विराजमान होते हैं। तदनन्तर देव दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा मे प्रभु का प्रतिरूप निर्मित करते है, जिससे किसी भी दिशा से प्रवेश करने वाले को यह आभास होता है कि भगवान् हमारी ओर मुख करके देशना प्रदान कर रहे हैं।

भगवान् का अनुगमन करते हुए प्राची[घ] द्वार से प्रविष्ट वैमानिक[xviii] देव भी 'तीर्थाय नम ' का उच्चारण करके गणधरो एव श्रमण वर्ग के लिए स्थान छोडकर वहीं स्थान ग्रहण कर लेते हैं। भवनवासी, व्यन्तर एव ज्योतिष्क देव दक्षिण द्वार से प्रवेश करके प्रभु की तीन बार प्रदक्षिणा करके नैऋत्यकोण[ङ] मे खडे रहते हैं। इनमें भी सर्वप्रथम भवनपति, उनके पीछे ज्योतिष्क एव उनके पृष्ठभाग[च] मे व्यन्तर देव खडे रहते हैं। ज्योतिष्क देवियॉ, भवनपति देवियॉ एव व्यन्तर देवियॉ दक्षिण अपर दिशा मे बैठ गयी। मनुष्य एव मनुष्य स्त्रियॉ उत्तर द्वार से प्रवेश करके उत्तर दिशा मे बैठ गयीं।

द्वितीय परकोटे मे तिर्यच पशु-पक्षी, तिर्यच स्त्रियॉ बैठ गयी। तृतीय बाह्य

(क) धनुष–4 हाथ या 96 अगुल
(ख) वन-जिस उद्यान मे एक जाति के वृक्ष हो, उसे वन कहते है।
(ग) मध्यातिमध्य–ठीक बीचो–बीच
(घ) प्राची–पूर्व दिशा
(ङ) नैऋत्यकोण–दक्षिण–पश्चिम कोण
(च) पृष्ठभाग–पीछे

परकोटे मे आगन्तुक श्रद्धालुओ ने यान[क] आदि रख दिये। इस प्रकार समवसरण मे भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक—ये चार जाति के देव, चारो जाति की देवियॉ, मनुष्य, मनुष्य स्त्रियॉ, तिर्यंच, तिर्यच स्त्रियॉ इन बारह जाति की परिषद से सुशोभित प्रभु की दिव्य छटा दर्शनीय थी।

उद्बोधन : भव्यो को परिषद के सुशोभित होने पर मगलाचरण करने के लिए सर्वप्रथम प्रथम देवलोक का इन्द्र—शक्रेन्द्र स्वय भक्ति से रोमाचित होकर, अजलि जोडकर स्तुति करते हुए इस प्रकार मधुरिम मनमोहक शब्दावली प्रस्तुत करता है—भगवन् ! आपकी ऊर्जस्विल आभा-मण्डल की भव्य प्रभा समस्त दर्शको को विस्मयान्वित बना रही है। आपके इस दिव्य मुखमण्डल को देखने के लिए, आपकी भव्य देशना को कर्णगोचर करने के लिए अनुत्तर विमानवासी देव[ख] भी तरसते रहते हैं, लेकिन फिर भी वे आपकी इस अमृत देशना का पान करने के लिए भूमण्डल पर अवतरित नहीं हो सकते। हमारा तो आज महान् पुण्योदय है कि हमे आपका पावन सान्निध्य सप्राप्त हुआ है। यह स्वर्णिम अवसर हमारे समक्ष है, इसका हमे परिपूर्ण लाभ लेना है। आपकी सुखद शरण का ही समाश्रय ग्रहण करना है। आपकी ही पर्युपासना[ग] कर जीवन को धन्य बनाना है। निरन्तर आपकी स्तुति करते हुए सिद्धि-सौध[घ] को प्राप्त करना है। आप ही इस भीषण ससार-सागर से पार कराने वाले कुशल, परम नाविक हैं। राग-द्वेष के सघन बधनो से मुक्त कर वीतरागता के दर्शन कराने वाले हैं। भ्रातिमय जगत् मे आसक्त बनाने वाले मोह कर्म का समूल उच्छेद करने मे सामर्थ्यवान हैं। भव्य आत्माओ को विरति के मार्ग पर आरूढ करने वाले है। सभी को कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर करने वाले हैं। हे भते ! अब मैं आपश्रीजी को विनति करता हूँ कि आप अपनी अमृतमय वाणी से भव्य आत्माओ को उद्बोधन प्रदान करावे। इस प्रकार अपनी श्रद्धा से परिपूर्ण भगवन चरणो मे निवेदन प्रस्तुत कर शक्रेन्द्र प्रभु को वदन-नमस्कार करके अपना आसन ग्रहण करते हैं।

तत्पश्चात् स्वयमेव भगवान् महावीर अपनी दिव्य देशना प्रदान करते हैं[21]।

अहो ! यह ससार समुद्र के समान कठिनाई से पार करने योग्य है। इस ससार मे भटकने का मूल कारण कर्म ही है। जैसे कुआँ खोदने वाला व्यक्ति स्वयमेव नीचे ही नीचे चला जाता है, वैसे ही स्वय द्वारा उपार्जित अशुभ कर्म के उदय से जीव निरन्तर अधोगति मे जाता रहता है। तद् विपरीत जैसे महल

(क) यान-रथादि सवारी योग्य साधन, गाड़ी
(ख) अनुत्तर विमानवासी देव-सबसे ऊपर रहने वाले वैमानिक देव, उनके ऊपर सिद्धशिला है।
(ग) पर्युपासना-सेवा, भक्ति (घ) सिद्धि सौध-मोक्ष-महल

बनाने वाला व्यक्ति क्रमश ऊपर-ऊपर चढता है, वैसे ही शुभ कर्मो वाला व्यक्ति स्वय उपार्जित शुभ कर्मो के उदय से ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है।

अशुभ कर्मबधन की आधारशिला है—हिंसा। हिसा दुर्गति का द्वार है, हिंसा दु ख का पारावार है, हिंसा घोर दु खमय फल प्रदान करने वाला आश्रव[क] है। हिंसा अविवेक की जननी है। हिंसा घोर भय उत्पन्न करने वाली है।[22]

इस ससार मे अनेक पातकी, सयमविहीन, अनुपशात[ख] क्रोधादि परिणाम वाले, दूसरो को पीडा पहुँचाने मे हर्ष का अनुभव करने वाले, प्राणियो के प्रति द्वेष भाव रखने वाले भयकर प्राणवध—हिंसा[23] किया करते हैं। वे पाप मे आसक्त अन्य प्राणियो को पीडा पहुँचाने मे आनन्द का अनुभव करते हैं।

इस हिंसा का प्रमुख कारण है—आसक्ति। कई मानव अनेक प्रकार के वाद्यो, चमडे के बैग, मुलायम पर्स, मुलायम जूतो के लिए चमडा प्राप्त करने के लिए जीवित गर्भवती गाय-भैंसादि का वध करते है और उनके जीवित गर्भस्थ शिशु का चमडा उतार कर मुलायम चमडे को प्राप्त करते हैं। केवल स्वय की प्रसन्नता के लिए ऐसी घोर हिंसा करके भी आनन्द का अनुभव हा ! हा ! यह भीषण कर्मबध का कारण है।

कई लोग रेशमी वस्त्र को प्राप्त करने के लिए हजारो-लाखो कीडो को खौलते गर्म पानी मे डालकर उनकी निर्मम हत्या करके आनन्द का अनुभव करते हैं, यह घोर दु ख का द्वार है। अपनी विलासिता के लिए दीन-हीन, मूक, असमर्थ, असहाय जन्तुओ की हत्या—यह नरक का द्वार है।[24]

ये बेचारे मूक प्राणी अशरणभूत है। इनका कोई नाथ नहीं। ये सहायक विहीन अपने अशुभ कर्मो की बेडियो से जकडे हैं। इनका कितनी निर्ममता से घात मनुष्य करता रहता है। इनके मास का लोलुप बनकर कैसे-कैसे इन दीन-हीन पशुओ की गर्दन पर छुरियॉ चलाकर अपना उदर-पोषण करता है। केवल अपनी जिह्वालोलुपता से इतना जबरदस्त प्राणघात हिंसा घोर कृत्य ।

हिताहित के विवेक से शून्य अज्ञानी हिसक बुद्धि से, कषाय से, प्रेरित होकर अपने मनोरजन के लिए, रति[ग] के लिए, मौज-शोक के लिए क्रुद्ध होकर प्राणियो का हनन करता है, लुब्ध होकर प्राणियो का हनन करता है, मुग्ध होकर

(क) आश्रव-जिसके द्वारा आत्मा मे कर्म-परमाणु प्रविष्ट होते है, उसे आश्रव कहते है।
(ख) अनुपशांत-हिसक।
(ग) रति-विषयसुख।

प्राणियो का हनन करता है। अर्थ के लिए प्राणियो का घात करता है, काम के लिए प्राणियो का घात करता है, बलि आदि चढाने मे धर्म मानकर प्राणियो का घात करता है। वह इस घोरतम पाप कर्म का फल भोगने के लिए आयु समाप्त होने पर नरक[क] मे पैदा होता है।[25]

नरक गति, जिसका नाम श्रवण करते ही रोगटे खडे हो जाते है, उसकी वज्र की बनी दीवारो मे जरा-सा भी छिद्र नहीं है। वहाँ से बाहर निकलने का कोई द्वार नहीं। वहाँ की भूमि अत्यन्त कठोर है। भयकर दुर्गन्ध निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। सदैव भीषण अधकारमय बने वे नरकावास बडे ही बीभत्स लगते हैं। पीव और रुधिर के निरन्तर बहने से वहाँ पर सदैव कीचड बना रहता है। तलवार से भी अधिक तीक्ष्ण वहाँ की भूमि का स्पर्श है। वहाँ किसी को कोई शरण देने वाला नहीं। अनाथ बने वे नैरयिक जीव निरन्तर असह्य वेदना से सत्रस्त रहते हैं।[26] पन्द्रह परमाधामी[ख] देव भीषण वेदनाएँ उन नारकी जीवो को देकर आनन्द प्राप्त करते हैं। वे परमाधामी देव इस प्रकार वेदना देते हैं।

1 अम्ब (परमाधामी)- ये नारको को ऊपर उछालकर नीचे पटकते हैं।
2. अम्बरीष—छुरी आदि शस्त्रो से नारको के शरीर के टुकडे-टुकडे कर भाड मे पकाते हैं।
3 श्याम—नारको को लातो, घूसो से मारकर जहाँ उन्हे वेदना मिलती है, उन स्थानो मे पटक देते हैं।
4 शबल—नारक जीवो की आँते, नसे, कलेजे को बाहर निकालकर फेक देते हैं।
5 रुद्र—भाले आदि नुकीले शस्त्रो मे नारको को पिरो देते है।
6 उपरुद्र—ये भयकर असुर नारको के अगोपागो को फाड देते हैं।
7 काल—ये नारको को कडाही मे पकाते हैं।
8 महाकाल—ये नारको के मास के खण्ड-खण्ड करके उन्हे जबरदस्ती खिलाते हैं।
9 असिपत्र—ये तलवार जैसे तीक्ष्ण पत्ते नारको के शरीर पर गिराते हैं और उनके टुकडे कर डालते हैं।
10 धनुष—तीक्ष्ण धनुष-बाण फेंककर नारको के शरीर का छेदन करते हैं।
11 कुम्भ—ये नारको को कुम्भियो मे पकाते हैं।

(क) नरक-जिसमें से सुख निकल गया है ऐसा दु ख भोगने का स्थान
(ख) परमाधामी-नारकी के देवो को दु ख देने वाले देव

12. बालु–ये नारको को गर्म रेत मे चूने की तरह भुनते हैं।
13. वैतरणी–ये मास, रुधिर, पीव वाली, पिघले तॉबे और शीशे आदि उष्ण पदार्थो से उबलती-उफनती वैतरणी नदी मे नारको को फेक देते हैं और उन्हे उस नदी मे तैरने के लिए विवश करते है।
14. खरस्वर–ये तीक्ष्ण कॉटो वाले शाल्मली वृक्ष पर नारको को चढाकर उन्हे इधर-उधर खींचते हैं।
15. महाघोष–घोर यातना से बचने के लिए इधर-उधर भागते नारको को बाडे मे बद कर देते हैं।

कितना दुःसह दुःख नारक जीवो को मिलता है। परमाधामी देव कभी उन्हे तेल के कडाह मे तलते, हैं तो कभी रोटी जैसे सेकते हैं तो कभी पशु की तरह घसीटते हैं, लेकिन वहॉ कोई उनको बचाने मे समर्थ नहीं होता।

जिन पारिवारिकजनो के लिए मनुष्य हिंसा करता है, वे पारिवारिकजन वहॉ एक क्षण भी उन्हे शाति नहीं पहुॅचा सकते।

नरक की घोर वेदना से हताहत हुआ वह नैरयिक भयंकर रुदन करता हुआ चिल्लाता है। हे स्वामिन ! हे भ्राता ! हे बाप ! हे तात ! मै मर रहा हूॅ। मैं दुर्बल हूॅ। मैं व्याधि से पीडित हूॅ। मुझे ऐसा दारुण दुःख मत दो। मुझे छोड दो। थोडा-सा विश्राम लेने दो। मैं प्यास से मर रहा हूॅ। मुझे थोडा-सा पानी दे दो। लेकिन, हा हा कोई रखवाला नहीं।

उन्हे पानी की जगह उबलता गर्म शीशा पिलाते हैं। वे क्रन्दन करते हैं, रोते हैं तो नरकपाल[क] कुपित होकर उनको धमकाते हैं और चिल्लाते हैं–इसे पकडो, मारो, छेदो, भेदो, चमड़ी उधेडो, नाक-कान काटो ।

कितनी दुःसह वेदना पल्योपम[ख] और सागरोपम[ग] तक भोगते हैं और कई जीव मरकर तिर्यंच योनियो मे पैदा होते हैं। वहॉ भी उन्हे दारुण कष्टो का सामना करना पडता है। वे पराधीन बने दुःख सहते हैं। गायादि के दूध नहीं देने पर घर से बाहर निकाल देते हैं। कत्लखानो मे बेच देते हैं, जहॉ पर उनकी निर्ममतापूर्वक हत्या की जाती है।

कई पुण्यहीन प्राणी नरक से निकलकर मनुष्य जन्म प्राप्त करते है, लेकिन

(क) नरकपाल-नरक की रक्षा करने वाला, परमाधामी
(ख) पल्योपम-चार कोस के कुएँ को युगलिको के बाल से ठसाठस भरने पर, 100 वर्ष से एक बाल निकालने पर जितने समय मे वह कुआँ खाली हो, वह एक पल्योपम होता है।
(ग) सागरोपम-दस कोटाकोटि पल्योपम को इतने से ही गुणा करने पर एक सागरोपम होता है।

उन्हे सर्वत्र निन्दा, अपमान और तिरस्कार ही मिलता है। वे अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगो से सदैव पीडित बने रहते हैं। अपना उदर-पोषण करने मे भी सामर्थ्यवान नहीं बनते।[27]

अस्तु ! हे भव्यात्माओ यह हिंसा का भीषण फल-विपाक है, जो भव-भवान्तरो तक जीव को भोगना पडता है। यह अल्प सुख और भीषण दु खवाला है। यह महाभयानक, दारुण, कठोर, भयकर असाता पैदा करने वाला है। बहुत लम्बे काल तक भोगने पर इससे छुटकारा मिलता है। यह घृणारहित, नृशंस, भयानक, त्रासजनक एव अन्याय रूप करुणाहीन मनुष्यो का कार्य है। यह मरण और दीनता का जनक है। अतएव इस हिसा का त्याग कर परम अहिंसा धर्म का सेवन करना चाहिए।[xix]

अहिसा समस्त प्राणियो के लिए शरणभूत है। यह सुख का द्वार है। यही उत्तम पुरुषो द्वारा आचरणीय है। इसी का अनुपालन कर उत्तम मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। अतएव धैर्य एव विवेक सम्पन्न होकर अहिंसा की आराधना करने वाला अत्यन्त आनन्द को उपलब्ध कर लेता है।[28]

भगवान् महावीर की धाराप्रवाह दिव्य देशना चल रही है। विशाल जन-समूह, देव-समूह, तिर्यंच[क], पशु-पक्षी एकाग्रचित्त से देशना को श्रवण करने मे निरत है। अपूर्व शाति का निर्झर प्रवाहित हो रहा है।

मेला . यज्ञ का मध्यम पावा की वह धर्म-धरा, जहॉ एक ओर सर्वज्ञ महाप्रभु महावीर के पदार्पण से धर्ममय बन गयी वहीं दूसरी ओर धनाढ्य सोमिल ब्राह्मण द्वारा यज्ञ का आयोजन करवाने से सैकडो विद्वानो की सम्मिलन नगरी बन गई है।

मध्यम पावा का निवासी सोमिल ब्राह्मण उस समय का ख्यातिप्राप्त धनाढ्य गृहस्थ था। उसने एक दिन अपने मन मे चितन किया कि मुझे यहॉ पर विराट् यज्ञ का आयोजन करवाना है।[29] उसमें सुदूर प्रान्तों से उच्चकोटि के विद्वान पण्डितो को बुलाकर एक यज्ञ मेला-सा लगाना है। यही चितन कार्य रूप मे परिणत करने के लिए सोमिल कटिबद्ध हो गया। इसके लिए खूब छानबीन करने लगा। अनेक व्यक्तियो से सम्पर्क साधकर दूर-दूर रहने वाले विद्वान पडितों का एक सूचीपत्र तैयार किया और मन में निश्चय किया कि ऋतुराज बसत मे ही यह यज्ञ मेला लगवाना है। विचार-विमर्श के पश्चात् उसने वैशाख शुक्ला एकादशी का दिन निर्धारित किया कि इसी दिन विराट् यज्ञ का आयोजन करवाऊँगा।[30] तिथि निर्धारण करने के पश्चात् उसने विद्वान् पण्डितो को निमत्रण भेजना प्रारम्भ किया।

(क) तिर्यच-पशु-पक्षी आदि

उसने विद्वत् सूचीपत्र मे सर्वप्रथम यज्ञानुष्ठान के आचार्य पद पर नियोजित करने के लिए इन्द्रभूति गौतम का नाम चयन किया और सर्वप्रथम उन्हे ही निमत्रण भेजा। इन्द्रभूति गौतम का जन्म राजगृह नगर के समीपस्थ गोबर[xx] गॉव मे ई पू 607 मे गौतम गोत्रीय ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। ज्येष्ठा नक्षत्र मे जन्मे इन्द्रभूति गौतम के पिता का नाम वसुभूति एव माता का नाम पृथ्वी था। इनके दो सहोदर छोटे भ्राता क्रमश अग्निभूति और वायुभूति थे।

इन तीनो भाइयो ने गुरुकुल मे रहकर वेद[क]-वेदाग[ख] और उपाग[ग] का सम्यक् अध्ययन किया और स्वल्प वय[घ] मे ही अपनी विनयशीलता एव विलक्षण मेघावी प्रतिभा से विशिष्ट विद्वत्ता को प्राप्त कर लिया। विद्वत्ता प्राप्त करने के पश्चात् अनेक बार विद्वद् गोष्ठियो मे जाकर अनेक विद्वानो को वाद मे पराजित कर यशोकीर्ति अर्जित की। चहुँ ओर इनकी यशोगाथा प्रसरित होने से अनेक छात्र अध्ययन करने के लिए आने लगे। तीनो भाई अलग-अलग छात्रो को अध्यापन करवाते थे। तीनो भाइयो के पास वर्तमान मे 500-500 छात्र अध्ययनरत थे।[31]

इसी समय सोमिल ब्राह्मण का निमत्रण मिला कि मध्यम पावा मे वैशाख शुक्ला एकादशी को विराट् यज्ञ मेला करवाना चाहता हूँ। आप अपने शिष्य परिवार सहित पधारे। आपके तत्त्वावधान मे ही यज्ञ करवाना चाहता हूँ। आप पधार कर इस यज्ञ मे आचार्य पद को ग्रहण करे। इन्द्रभूति ने इस निमत्रण को विद्वत्ता की कसौटी मानकर स्वीकार कर लिया। इन्द्रभूति के साथ सोमिल आर्य ने अग्निभूति एव वायुभूति को भी निमत्रण भेजा। उन्होने भी इस निमत्रण पर अपनी स्वीकृति जाहिर कर दी।

इसके पश्चात् सोमिल आर्य ने कोल्लाक सन्निवेश में व्यक्तभूति एव सुधर्मा नामक दो उद्भट[ङ] विद्वानो, जो 500-500 शिष्यो के आचार्य थे, निमत्रण भेजा। व्यक्त के पिता का नाम धनदेव एव माता का नाम वारुणी था। ये भारद्वाज गोत्रीय थे। वेद-वेदाग के प्रखर ज्ञाता, वर्तमान मे 500 शिष्यो को अध्यापन करवा रहे थे। इन्होने सोमिल आर्य के निमत्रण को प्राप्त कर अपनी सहज स्वीकृति प्रदान की। सुधर्मा भी धम्मिल एव भद्दिला के पुत्र अग्निवैश्यायन गोत्रीय थे। विनय की प्रतिमूर्ति सुधर्मा का ज्ञान अतीव निर्मल था और इन्होने भी अपने गुरुकुल मे छात्रो को अध्ययन करवाना प्रारम्भ किया। वर्तमान मे 500 छात्रो को सुन्दर शैली से अध्ययन

(क) वेद-ऋगवेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद।
(ख) वेदांग-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष।
(ग) उपांग-मीमासा, न्याय, धर्म-शास्त्र एव पुराण।
(घ) स्वल्प वय-छोटी उम्र।
(ङ) उद्भट-विशिष्ट।

करवाने का कार्य करते थे। सोमिल आर्य का निमत्रण पाकर इन्होने भी सहज स्वीकृति प्रदान की।

सोमिल ने तदनन्तर अपना निमत्रण मौर्य सन्निवेश मे मण्डित व मौर्य पुत्र को प्रेषित किया। मण्डित धनदेव एव विजयादेवी के आत्मज तथा मौर्यपुत्र मौर्य एव विजयादेवी के अगजात[क] थे। दोनो वेद, वेदाग, उपाग के ज्ञाता थे। दोनो 350-350 छात्रो को अध्ययन करवाते थे। सोमिल आर्य के निमत्रण पर दोनो ने हर्षान्वित होकर स्वीकृति प्रदान की।

तदनन्तर सोमिल आर्य ने मिथिला नगरी मे गौतम गोत्रीय देव एव जयन्ति के पुत्र, 300 छात्रो के आचार्य अकम्पित को निमत्रण भेजकर उनकी स्वीकृति प्राप्त की।

इसके पश्चात् कोसला निवासी हारित गोत्रीय अचलभ्राता वसु एव नन्दा के नन्द[ख] जो 300 छात्रो को अध्ययन करवाने मे निपुण थे, उन्होने भी सोमिल के निमत्रण को स्वीकार किया।

तदनन्तर वत्सभूमि के तुगिय सन्निवेश मे कौण्डिन्य गोत्रीय दत्त एव वरुणादेवी के आत्मज, 300 शिष्यो के अध्यापक मैतार्य को एव राजगृह मे कौण्डिन्य गोत्रीय 300 छात्रो के अध्यापक बल एव अतिभद्रा के पुत्र प्रभास[32] को सोमिल ने यज्ञ के लिए निमत्रित कर स्वीकृति प्राप्त की।

अन्य अनेक उद्भट विद्वानो को निमत्रण भेजकर सोमिलाचार्य ने स्वीकृति प्राप्त कर ली। उस यज्ञ की कई दिनो से बडी जोर-शोर से तैयारी चल रही थी। सब निमत्रित विद्वान यथासमय अपने शिष्य समुदाय सहित उस विराट् यज्ञ मेले मे भाग लेने हेतु आ गये थे। सभी उत्सुकता से वैशाख शुक्ला एकादशी का बेसब्री से इतजार कर रहे थे।

गणधर समागम :-

अनेक अरमानो को मन मे सजोये इन्द्रभूति विविध प्रकार से यज्ञ को सफल बनाने के लिए चितनशील थे। उनके इस चितन को कार्यरूप मे परिणत करने हेतु यह वैशाख शुक्ला एकादशी का दिन अपनी दिव्य आभा को लेकर मध्यम पावा मे अवतरित हुआ। इन्द्रभूतिजी यज्ञ मण्डप मे अनेक विद्वानो के साथ आये और वेद मत्रो का उच्चारण करते हुए आहुतियाँ देने लगे। विशाल जन-समूह अत्यन्त निमग्नता से इस यज्ञ के कार्य को उत्सुकता से देख रहा

(क) अंगजात-पुत्र
(ख) नन्द-पुत्र

था। इधर यज्ञ का कार्य बहुत जोरो से चल रहा था, उधर आकाश मण्डल मे यत्र-तत्र-सर्वत्र देव विमान दिखाई देने लगे।

तभी इन्द्रभूति ने सगर्व सोमिलार्य से कहा–"देखो आर्य ! यज्ञ की महिमा देखकर ये देव-विमान[क] हमारे यहाँ अवतरित हो रहे है।"[33]

सभी मण्डप की जय-जयकार करने लगे। खचाखच भरा यज्ञ मण्डप जय-जयकारो से गुजित हो उठा। सब टकटकी लगाकर आकाश की ओर निहारने लगे, लेकिन देखकर हतप्रभ रह गये । यह क्या ? विमान इधर आते-आते रुक गये । तब इन्द्रभूति ने पूछा–क्या पावा मे और कोई ऐंद्रजालिक आया हुआ है?

सोमिल ने कहा–जनश्रुति है कि महावीर नामक कोई सर्वज्ञ आये हैं और आज उनका समवसरण हो रहा है।

इन्द्रभूति–महावीर सर्वज्ञ क्या मुझसे बडा इस दुनिया मे कोई विद्वान है? वह तो मायावी है, मायावी ! उसने देवो को भी अपने वश मे करके भ्रमजाल मे डाल दिया है। देव आये थे यज्ञ मण्डप मे, लेकिन उस मायावी ने भ्रमित कर दिया। अभी जाता हूँ, उस मायावी के मायाजाल की धज्जियाँ उडाकर आता हूँ। यो कहकर इन्द्रभूति गौतम अपने 500 शिष्यो सहित चल पडे।[34]

इन्द्रभूति के कदम तीव्रता से समवसरण की ओर गतिमान हो रहे हैं। मन उससे भी तीव्र चल रहा है कि कब उस मायावी को देखूँ और कब परास्त करूँ!, लेकिन अहकारी कभी किसी को परास्त नहीं कर सकता। वह या तो स्वय ही पराजित होकर चरणो मे गिरता है या अपने सम्पूर्ण जीवन के सद्गुण अहकार की आग मे झोक देता है। इन्द्रभूति के अहकार को भी चुनौती है।

पथ मे गमन करते हुए स्वय की विजय का दम्भ मन मे कुलाचें[ख] भर रहा था। दभ मे अपने ज्ञान को प्रशसनीय मानते हुए न जाने कब पथ समाप्त हो गया, पता ही नहीं चला।

वह चलते-चलते भगवान् के समवसरण के समीप पहुँचता है। समवसरण की दूर से ही आभा देख कर दाँतो तले अगुली दबाने लगता हैं। अरे ! यह तो बाहर से ही अत्यन्त आकर्षक लग रहा है तो फिर भीतर का तो कहना ही क्या.. .. ?

कदम बढ रहे हैं। आवेग शात बन रहे हैं। शनै -शनै समवसरण मे प्रवेश

(क) विमान-पुण्य करने वाले जिनका विशेष भोग करते है, विमान है।

(ख) कुलाचे-उछाले

करता है। समवसरण मे प्रवेश करते हुए अपने प्रतिद्वन्दी को देखने के लिए नेत्र विस्फारित थे, कर्ण लालायित थे, वचन निसृत होने को आतुर थे। पद अविलम्ब द्रुतगति से गतिमान थे। तभी सहसा भगवान् महावीर सिहासन पर विराजमान दृष्टिगत हुए। भगवान् के मुख-मण्डल के अपरिमित तेज को देखकर चितन करता है—ऐसा भव्य मुख-मण्डल, ऐसी दिव्य ज्योति मैने कही भी, कभी भी नहीं देखी । हो सकता है ये सर्वज्ञ हो।

इन्द्रभूति का चितन चल रहा है, तभी भगवान् ने इन्द्रभूति को सम्बोधित करके कहा—इन्द्रभूति गौतम ! (इन्द्रभूति अपना नाम श्रवण कर) ओह ! यह मेरा नाम भी जानता है? मेरा नाम मेरा नाम मैं तो ख्यातिप्राप्त विश्वप्रसिद्ध विद्वान हूँ। तब मेरा नाम तो यह जानता ही होगा। लेकिन यह मेरे मन मे रहे हुए सशय को जाने और उसे छिन्न कर डाले तब जानूँ, यह सर्वज्ञ है।

तभी भगवान् ने इन्द्रभूति से कहा—गौतम ! तुम्हारे मन में आत्मा के अस्तित्व को लेकर सशय है। वेद वाक्यो का सम्यक् अर्थ नहीं समझने से तुम्हारे मन मे सदेह पैदा हो रहा है कि आत्मा नामक कोई पदार्थ है या नहीं? इसके लिए तुम यह मानते हो कि यदि आत्मा नामक पदार्थ होता तो वह प्रत्यक्ष क्यो नहीं दिखता?

लेकिन तुम्हारा यह मानना ठीक नहीं है, क्योकि प्रत्येक जीव को यह अनुभूति होती है कि मैं हूँ। ऐसा ज्ञान जीवो को होता है, अजीव पदार्थो को नहीं। बस, यही अस्तित्वबोध, आत्मा की सिद्धि करता है। जैसे कुम्हार मिट्टी से घडा बनाता है, उस घट का निर्माता कुम्हार है, वैसे ही शरीर का निर्माता आत्मा है।

ससार मे अनन्त आत्माएँ हैं और उनका पृथक्-पृथक् अस्तित्व है। एक आत्मा सर्वव्यापी नहीं है अपितु आत्मा तो शरीर-व्यापी है। इसी कारण अलग-अलग आत्माओ के पृथक्-पृथक् पुण्य-पाप आदि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। यह आत्मा अजर, अमर तथा अविनाशी तत्त्व है।

यह आत्मा पचभूतों[क] से पैदा नहीं होती, क्योकि पचभूत जड एव आत्मा चेतन है। जड से कभी भी चैतन्य की उत्पत्ति सभव नहीं है। इसलिए आत्मा नामक एक चैतन्य पदार्थ लोक मे विद्यमान है।

वेद मे जो यह वाक्य आया है—"विज्ञान धन एव भूतेभ्यो समुत्थाय तान्येवानु विनश्यति न प्रेत्य सज्ञा अस्ति।"[35] इसका तात्पर्य है कि पदार्थ से पैदा होने वाला ज्ञान पदार्थ को देखकर उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है, पूर्वकालीन

(क) पंचभूत-पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, आकाश।

ज्ञान नहीं रहता अर्थात् जैसे किसी व्यक्ति ने घडे को देखा तो उसको ज्ञान पैदा होगा कि यह घडा है। उसके पश्चात् उसने कपडे को देखा तो वह घडे सम्बन्धी ज्ञान उस समय नहीं रहकर कपडे सम्बन्धी ज्ञान पैदा हो जायेगा कि यह कपडा है। इस वाक्य का यही अर्थ है।

वेद मे भी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारते हुए कहा है–"अस्तमिते आदित्य याज्ञवल्क्य ! चन्द्रमस्यस्तमिते, शान्तेऽग्नौ, शातायावाचि, कि ज्योतिरेवाय पुरुष ? आत्म ज्योति रेवाय सम्राड्ति होवाच।" अर्थात् हे याज्ञवल्क्य जब सूर्य अस्त हो जाता है, जब चन्द्र अस्त हो जाता है, अग्नि शात हो जाती है, वचन शात हो जाता है, तब पुरुष मे कौनसी ज्योति होती है? हे सम्राट् आत्म ज्योति होती है।" इस वेदवाक्य मे आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। अत हे गौतम ! आत्मा नामक पदार्थ जगत् मे विद्यमान है। तुम्हे सशय नहीं करना चाहिए।

वीतराग परमात्मा महावीर की वाणी को श्रवण कर इन्द्रभूति गौतम का सशय दूर हुआ, अधकार समाप्त हुआ और विनयपूर्वक प्रभु की पर्युपासना करते हुए बोले–भगवन् मैं अह से ग्रसित अत्यन्त तुच्छ विचार लेकर आपको पराजित करने हेतु यहाँ उपस्थित हुआ। सूर्य के सामने टिमटिमाता दीया बनकर उसकी ज्योति को धूमिल करने चला। तिनका बनकर रत्नाकर[क] की अथाह जलराशि पर प्रभुत्व जमाने लगा। कषाय कलुषित बनकर निष्कषायी, निर्मल परमात्मा को जीतने चला, लेकिन जिसने राग-द्वेष आदि विकारो को परास्त कर दिया, उसे कौन परास्त कर सकता है ! अत मैं अपने अपराध की क्षमायाचना चाहता हूँ। आप सरीखे भव्य कल्पवृक्ष के दर्शन कर मैं ससार से विरक्त होकर शिष्य समुदाय सहित श्रीचरणो मे दीक्षित होकर समर्पित बनना चाहता हूँ। आप मुझे अपनी नेश्राय मे शिष्य रूप मे स्वीकार करने का अनुग्रह करावे।

तब भगवान् महावीर ने इन्द्रभूति एव उनके शिष्यों की भावना को केवलज्ञान के आलोक से जाना। उसी समय सयम यात्रा के निर्वाह के लिए कुबेर नामक देवता ने उन्हे धर्मोपकरण प्रदान किये। धर्मोपकरण चारित्र पालन मे सहायक हैं, ऐसा जानकर उन्होंने देव प्रदत्त धर्मोपकरणो को ग्रहण कर लिया।[36] स्थानाग, आचाराग एव छेद सूत्रों[ख] में तथा अन्य अनेक स्थानो पर आगमो में साधक को धर्मोपकरण ग्रहण करने एव उन्हे यतना[ग] से रखने का विधान परिलक्षित होता है। अत जो वस्त्र रखने में परिग्रह मानते हैं उनकी मान्यता शास्त्रोक्त प्रकरण से मेल नहीं खाती।[37]

(क) रत्नाकर-समुद्र
(ख) छेदसूत्र-दशाश्रुत स्कन्ध, वृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथसूत्र
(ग) यतना-विवेक

इन्हीं धर्मोपकरणो को ग्रहण कर इन्द्रभूति आदि सभी ने प्रभु महावीर के पास सयम ग्रहण कर अपना जीवन समर्पित कर दिया। इधर इन्द्रभूति तो अहकार का परित्याग कर विनयधर्म की आराधना मे लग गये, उधर यज्ञ-मण्डप मे इन्द्रभूतिजी का बेसब्री से इतजार हो रहा है कि इतनी देर हो गई, अभी तक क्यो नहीं लौटे? उसी पथ पर टकटकी लगाकर अनिमेष नेत्रो से अग्निभूतिजी देख रहे हैं और चितन कर रहे हैं कि मेरे अग्रज, सहोदर भ्राता उस पाखण्डी को पछाडकर आने ही वाले होगे। इतजार करने मे समय निरन्तर व्यतीत हो रहा है। मन ऊहापोह मे लगा है। ओह ! क्या विवाद लम्बा हो गया है? या लगता है वह पाखण्डी बडा धूर्त है, उसने मेरे भैया को ठग लिया है ! अब क्या यहॉ रहकर ही उनकी प्रतीक्षा करूँ? नहीं नहीं बहुत विलम्ब[क] हो जायेगा भैया कहीं अकेले न पड जाये . वह पाखण्डी कहीं उन्हे परास्त न कर दे मुझे अपने भैया का सहयोग करना चाहिए विपत्ति मे भाई के भाई काम न आया तो वह भाई किस काम का? लगता है वह पाखण्डी बडा धूर्त है, उसने अपने इन्द्रजाल मे भैया को फॅसा लिया होगा, क्योकि मेरे भैया बडे ही सरल और विनीत प्रकृति वाले हैं लेकिन मैं मैं उसके मायाजाल मे फॅसने वाला नहीं हूँ। मैं जाता हूँ मैं जाता हूँ

ऐसा चितन करते हुए अग्निभूति भी अपने 500 शिष्यो सहित भगवान् को परास्त करने चल पडे।[38]

विचारो में डूबे हुए, कब समवसरण आ गया, अग्निभूति को पता ही नहीं चला। यकायक जब भगवान् महावीर को अपने सामने सिहासन पर बैठे देखा तो देखते ही.. .. अरे ! यह भव्य मुख-मण्डल ! ऐसा ओजस्वी, तेजस्वी, सौम्य वदन[ख] कभी देखा ही नहीं। वे प्रभु को देखते ही अभिभूत होकर निहारते ही रहते हैं। निहारते-निहारते विस्मृत हो गये कि वे किस कारण यहॉ समुपस्थित हुए थे। उनके अधर[ग] खुल ही नहीं पा रहे थे। वाणी मूक बन गयी। मन तल्लीन! तभी भगवान् ने उन्हें सम्बोधित करते हुए फरमाया—अग्निभूति ! तुम्हारे हृदय मे कर्म के विषय मे सदेह है। वेद वाक्यो का सम्यक् अर्थ नहीं जानने के कारण तुम कर्मो के विषय मे सदेह करते हो कि कर्म है या नहीं? लेकिन तुम्हारा यह सदेह व्यर्थ है। ज्ञानियो ने अपने केवलज्ञान में कर्म की सत्ता को प्रत्यक्ष देखा है।

(क) विलम्ब-देर
(ख) वदन-मुख
(ग) अधर-होंठ

तुम यह सोचते हो कि कर्म तो मूर्तिमान (रूपी)[क] हैं, उनका अमूर्त (अरूपी)[ख] आत्मा के साथ कैसे सम्बन्ध हो सकता है? अमूर्त आत्मा को मूर्त कर्म कैसे सुख-दु ख दे सकते हैं? किन्तु तुम्हारा यह चितन निरर्थक है, क्योकि जैसे तुम्हारी अगुली रूपी है, दिखाई देती है, लेकिन अगुली को फैलाने आदि की क्रिया अमूर्त है, दिखाई नहीं देती, फिर भी अगुली का फैलने आदि की क्रिया के साथ सम्बन्ध होता है, इसी प्रकार अमूर्त आत्मा के साथ भी मूर्त कर्मो का सम्बन्ध होता है।

जैसे मूर्त शराब अमूर्त आत्मा का उपघात करती है और मूर्त औषधि अमूर्त आत्मा का अनुग्रह लाभ करती है, वैसे ही मूर्त कर्म भी अमूर्त आत्मा का अनुग्रह एव उपघात करते हैं। कर्म की विचित्रता से ही प्राणियो को सुख-दु ख की अनुभूति होती है। व्यक्ति कर्म से ही महान और कर्म से ही शैतान बन जाता है। कर्म से ही एक भाई राजा व दूसरा भाई भिखारी बनता है।

इस ससार मे कोई सुखी, कोई दु खी, कोई अच्छा, कोई बुरा बनता है उसमे कर्म ही कारण है। ससार की विचित्रता कर्म से ही सभव है। यह ससार कर्मकृत है, ईश्वरकृत नहीं। क्योकि ईश्वर तो सर्वज्ञ है। वह वीतराग होने से किसी को सुखी या किसी को दु खी क्यो बनायेगा? अत कर्म की सत्ता को तुम्हे स्वीकार करना ही चाहिए।

वेद वाक्यो का सम्यक् ज्ञान नहीं होने से तुम्हे कर्म के विषय मे सदेह हो रहा है। तुमने वेद मे पढा "पुरुष एवेद सर्व यद् भूत यच्च भाव्य उतामृतत्वस्येशान'। यदन्नेनातिरोहति तदेजति, तद नैजति, तद दूरे तद् अन्तिके यदनन्तरस्य सर्वस्य यत् सर्वस्यास्य बाहयत ।"[39] इसका तुम यह अर्थ करते हो कि आत्मा ही है, जो इस ससार मे चेतन-अचेतन रूप दिखाई देता है, जो भूतकाल मे था, जो भविष्य मे है, जो अमरण भाव या मोक्ष का प्रभु है, जो अन्न से वृद्धि प्राप्त करता है, जो चलता है, जो अचल है, जो दूर है, जो निकट है, जो इन चेतन-अचेतन पदार्थो के मध्य है, जो इन सब पदार्थो से बाह्य है, वह सब केवल पुरुष है, आत्मा है। इस वेद वाक्य से तुम यह समझते हो कि आत्मा के अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है, लेकिन तुम्हारा मानना सगत नहीं, क्योकि इस वाक्य मे अतिशयोक्तिपूर्वक पुरुष (आत्मा) की महिमा गाई है।

लेकिन इतने मात्र से कर्म का खण्डन नहीं होता। स्वय वेदो मे कर्म की

(क) मूर्तिमान-जिसमे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हो।
(ख) अमूर्त-जिसमे वर्ण, गध, रस, स्पर्श नहीं हो।)

सत्ता स्वीकार की गई है। वहॉ कहा है- 'पुण्य पुण्येन, पाप पापेन कर्मणा' अर्थात् पुण्यकर्म से पुण्य और पापकर्म से पाप मिलता है। इस प्रकार तुम्हारे मन मे सदेह होता है कि कर्म है या नहीं? परन्तु हे अग्निभूति ! अब तुम्हारा सशय दूर हो गया होगा।

तब अग्निभूति ने प्रभु चरणो मे वदन कर कहा—भते ! मै अब कर्म की सत्ता को निस्सदेह स्वीकार करता हूॅ तथा आपकी जो पूर्व मे अविनय आशातना की उसके लिए क्षमायाचना करता हूॅ। आपकी सर्वज्ञता को अनुमान एव व्यवहार से दृष्टिगत कर मैं आपश्री के चरणो मे दीक्षित होना चाहता हूॅ।

तब भगवान् ने अग्निभूति एव उसके 500 शिष्यों को प्रव्रज्या देकर दीक्षित किया।[40]

अग्निभूति प्रभु-चरणो मे समर्पित हो गए यह समाचार वायुभूति के कर्ण-कुहरों[क] तक पहुॅचे। तब चितन की चॉदनी मे झलकने लगा कि जिन सर्वदर्शी सर्वज्ञ प्रभु के चरणो मे इन्द्रभूतिजी, अग्निभूतिजी सर्वस्व समर्पण कर अपने जीवन के स्वर्णिम क्षणो को धन्य बना रहे हैं, उनकी पर्युपासना करके मैं भी अपने जीवन को निष्पाप बना डालूॅ और मेरे मन मे जो सशय है वह भी मिटा डालूॅ। तो मैं भी जाता हूॅ मै भी जाता हूॅ चितन के साथ कदम भी चल पडे। अपने शिष्य परिवार सहित विचारधारा मे डूबे हुए ही समवसरण मे प्रविष्ट हुए। जैसे ही उन्होने प्रभु चरणो मे प्रणति[ख] की, भगवान् ने उनको सम्बोधित करते हुए कहा—"वायुभूति गौतम !" भगवान् की अमृत वाणी से निसृत कर्णप्रिय शब्दो का सम्बोधन सुना, भगवान् का अप्रतिम सौन्दर्य देखा और समवसरण की भव्य छटा को दृष्टिगत कर वे स्तब्ध हो गए। आश्चर्यचकित होकर मानो सब-कुछ भूलकर निर्निमेष प्रभु को ही निहारने लगे। तब प्रभु ने फरमाया—वायुभूते ! तुम्हारे मन मे सुदीर्घकाल से सशय चल रहा है कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् हैं या एक ही। तुम्हारे इस सशय का कारण वेद वाक्य है। तुमने वेद वाक्य पढे, लेकिन उनका सम्यक् अर्थ नही जाना इसलिए तुम सदेहग्रस्त हो। तुम ऐसा चितन करते हो कि जैसे बुलबुला जल मे से उठकर जल मे ही समाप्त हो जाता है वैसे ही जीव शरीर मे से पैदा होकर शरीर मे ही नष्ट हो जाता है।[41] परन्तु वायुभूते! जीव और शरीर वस्तुत पृथक्-पृथक् हैं, क्योकि शरीर जड है ओर चैतन्य आत्मा उपयोग लक्षण वाला, ज्ञान गुण वाला है।[42] जड से कभी चैतन्य की उत्पत्ति नहीं होती।[43] जैसे रेत से तेल नही निकलता वैसे ही जड से चेतन पेदा नहीं होता है। अत शरीर के नष्ट होने पर उसमे से आत्मा निकल

(क) कर्ण कुहरो-कानो तक (ख) प्रणति-प्रणाम

जाती है। साथ ही जैसे ऑख देखने का कार्य करती है, कान सुनने का, नाक सूॅघने का, जीभ चखने का तथा शरीर स्पर्श का अनुभव करता है। लेकिन इन सबका अनुभव करने वाला, स्मरण करने वाला आत्मा ही है। वही आत्मा इन्द्रियो का निर्माण करता है। इससे भी सिद्ध होता है कि जीव व शरीर अलग-अलग हैं। तुम ऐसा विचार करते हो कि जैसे गुड, फूल आदि मे मदशक्ति नही है, लेकिन उनको मिलाने पर उनके समुदाय मे मदशक्ति उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु और आकाश मे चैतन्य शक्ति नहीं है, लेकिन इनको मिलाने से चैतन्य शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

लेकिन तुम्हारा यह मानना उचित नहीं है, क्योकि गुड मे और फूल आदि मे थोडी-थोडी मादक शक्ति होती है। उनको मिलाने पर विशेष मादक शक्ति पैदा हो जाती है। परन्तु जड पदार्थो मे थोडी-सी भी चैतन्य शक्ति नहीं है तब उनको मिलाने पर चैतन्य शक्ति पैदा नहीं हो सकती है।[44] वेद में जो यह कहा है—विज्ञान धनएव एतेभ्य उसका अर्थ तो यह है कि किसी भी पदार्थ को देखने से जो ज्ञान होता है, वह उस पदार्थ के हटने पर हट जाता है। वेदो मे स्पष्ट कहा है—स्वर्ग कामी जुहुयात् स्वर्ग की इच्छा से यज्ञ करो। जब आत्मा परलोक मे जाती नहीं, फिर स्वर्ग की इच्छा क्यो होगी? अतएव आत्मा परलोक जाती है। वह जड पदार्थो से भिन्न है। भगवान् द्वारा ऐसा कहने पर वायुभूति बोले—प्रभो ! मेरा सशय दूर हो गया है। अब मैं आपके सान्निध्य मे सयम अगीकार करना चाहता हूँ।

भगवान् ने वायुभूति व उसके 500 शिष्यो की भावना जानकर उन्हे प्रव्रज्या प्रदान की।[45]

विशाल यज्ञ-मण्डप मे से तीन महाविभूतियो के समवसरण मे प्रविष्ट होकर सर्वज्ञ प्रभु से समाधान प्राप्त कर अपने जीवन को सयम के परिवेश मे सुसज्जित कर लिया। उनकी प्रव्रज्या[क] के समाचार यज्ञ-मण्डप मे स्थित व्यक्तभूति को कर्णगोचर हुए। उन्होंने भी चितन किया कि अब मुझे भी समवसरण मे जाकर उस महापुरुष के दर्शन करना चाहिए जिसने स्वल्प समय मे 1503 साधुओ को दीक्षित कर दिया।

इस प्रकार विचार करते हुए व्यक्तभूति अपने शिष्य समुदाय सहित यज्ञ-मण्डप से निकले और शनै -शनै समवसरण मे प्रवेश किया। प्रभु का यह अत्यत पुण्य प्रभा से सवलित[ख] भव्य दीदार देखकर अत्यत आकृष्ट बने निर्निमेष नेत्रो से

(क) प्रव्रज्या-दीक्षा, पाप हटकर शुद्ध चरण योगो मे प्रवचन गमन करना प्रव्रज्या है।
(ख) संवलित-युक्त

देखते ही रहे। वे मानो सब कुछ विस्मृत हो गए। तब भगवान् ने उन्हे सम्बोधित करके कहा—व्यक्त भारद्वाज ! तुम्हारे मन मे बहुत समय से सशय चल रहा है। उसका कारण है वेद मे परस्पर विरोधी वाक्यो का तुमने श्रवण किया, लेकिन उनका सम्यक् अर्थ नहीं जाना। तुमने वेद का एक वाक्य श्रवण किया, "स्वपनोपम वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरजसा विज्ञेय ।" अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्न सदृश है। यह ब्रह्मविधि (स्पष्ट) रूप से जानने योग्य है। इस वाक्य को पढकर तुमने यह चितन कर लिया कि सारा ससार स्वप्न के समान है। किन्तु दूसरी जगह तुमने वेद वाक्य को श्रवण किया—"द्यावा पृथिवी आपो देवता" अर्थात् पृथ्वी देव है, जल देव है, इससे पदार्थों का अस्तित्व सिद्ध होता है। इससे तुम्हारे मन मे सशय हो गया कि यह दिखने वाला ससार काल्पनिक है या इसमे किसी पदार्थ की सत्ता है? हे व्यक्त ! मैं तुम्हे सम्यक् अर्थ बतला दूँगा जिससे तुम्हारा सशय दूर होगा। जो पदार्थ तुम्हे ऑखो से प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहे हैं, उन्हे तुम स्वप्नवत् कैसे मान लोगे? जैसे इस लोक मे तुम अपना स्वय का अस्तित्व मानते हो वैसे ही पृथ्वी, अप्, वनस्पति, जो साक्षात् दिखलाई देते हैं, उनका अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए। वायु का भी हमे स्पर्श से ज्ञान होता है। सभी पदार्थों का कोई आधार होना चाहिए और वह आधार है आकाश[क] (खाली जगह)।

इस प्रकार प्रत्यक्ष दिखने वाले जीव और अजीवो का स्वरूप तुम्हे स्वीकार करना चाहिए। वेद मे ससार को स्वप्नवत् बतलाया इसका अर्थ यह नहीं कि ससार मे पदार्थो का अभाव है, लेकिन इसका यह अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति सासारिक पदार्थो के आकर्षण मे आसक्त न बन जाए। इसी उद्देश्य से ससार को असार जानकर मानव निर्मोही बनकर ससार से विरक्त बने और शाश्वत सुख-धाम मोक्ष को प्राप्त करे।

भगवान् के ऐसा फरमाने पर व्यक्तभूति ने कहा—भते ! मेरा सशय सर्वथा छिन्न हो गया है। मैं आपके पावन सान्निध्य मे चारित्र अगीकार करना चाहता हूँ।

भगवान् ने व्यक्तभूति के विरक्तिपरक भावो को जानकर 500 शिष्यो सहित उन्हे जिन-धर्म मे दीक्षित कर दिया। व्यक्तभूति के समाचारो का बेताबी से इतजार कर रहे थे—सुधर्मा। वे जानना चाहते थे कि व्यक्तभूति लौटेगा या समर्पित बनेगा। तभी उन्हे यज्ञ-मण्डप मे समाचार मिले कि व्यक्तभूति ने 500 शिष्यो सहित भगवान् महावीर की धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार कर लिया है।[6]

यह श्रवण कर उन्होने सोचा कि अब मुझे भी प्रभु को वदन-नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करनी चाहिए। वे भी इसी उद्देश्य को लेकर समवसरण की ओर भक्तियुक्त कदमो से चलने लगे।

(क) आकाश-सभी द्रव्यों का आधारभूत द्रव्य (खाली जगह)

प्रभु दर्शनो की ललक को मन मे सजोए न जाने कब पथ की इतिश्री हो गई, पता ही नहीं चल पाया। वे भव्य आभा वाले समवसरण मे प्रविष्ट हुए और प्रभु के अतिशयसम्पन्न आभामण्डल को देखकर स्तब्ध रह गए। तभी भगवान् ने उन्हे सम्बोधित करते हुए कहा–सुधर्मन् अग्निवेश्यायन ! तुम्हारे मन मे एक सशय व्याप्त है। तुमने एक वेद वाक्य श्रवण किया–"पुरुषोमृत सन् पुरुषत्वमेवाश्नुते पशव पशुत्वम्" अर्थात् पुरुष मरकर पुरुष होता है व पशु मरकर पशु होता है, लेकिन दूसरी जगह वेद मे कहा है कि "शृगालो वै एष जायते य स पुरीषो दह्यते" अर्थात् जिसको मल सहित जलाया जाता है, वह शृगाल बनता है। इस प्रकार वेद वाक्यो से तुम्हे सदेह हो रहा है कि जो इस लोक मे मनुष्य है वह मरकर क्या मनुष्य ही बनता है या तिर्यंच आदि बन सकता है?

सुधर्मन् ! जो तुम यह सोचते हो कि मनुष्य मरकर सदैव मनुष्य ही बनता है, तुम्हारा यह सोचना ठीक नही है, क्योकि कई लोग मनुष्य गति मे दान, शील, तप आदि की श्रेष्ठ आराधना करते हैं और विशेष पुण्य का अनुबध करने से वे मनुष्य नहीं, देव योनि को प्राप्त करते हैं अन्यथा दान आदि निष्फल हो जाएगे। चूँकि कर्मानुसार योनि प्राप्त होती है, इसलिए जो जैसा करता है उसको वैसी ही गति प्राप्त हो जाती है। वेद मे जो कहा है कि पुरुष मरकर पुरुष होता है उसका तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य इस भव मे सज्जन, विनयी, दयालु और अमत्सर[क] प्रकृति का होता है, वह मनुष्य नाम गोत्र कर्म का बधन करता है। ऐसा मानव मृत्यु आने पर कालधर्म को प्राप्त कर मनुष्य गति मे जाता है, लेकिन सभी मनुष्य, मनुष्य गति मे नहीं जाते। इसी प्रकार जो तिर्यच माया के कारण तिर्यंचनामगोत्र[ख] का उपार्जन करता है, वह पुन पशु योनि को प्राप्त करता है, सभी नहीं। इस प्रकार जीव की कर्मानुसार गति होती है। वेद मे भी यही कहा गया है कि पुरुष भी शृगाल रूप मे पैदा होता है।

भगवान् के इस प्रकार फरमाने पर सुधर्मा स्वामी का सशय दूर हुआ। वे प्रभु चरणो मे निवेदन करते हैं-भते ! मुझे आपश्री के चरणो मे प्रव्रजित करने की कृपा करावे। तब भगवान् ने सुधर्मा एव उनके 500 शिष्यो की भावना को जानकर उन्हे प्रव्रजित किया।[47]

मडित पुत्र ने, सुधर्मा एव उनके 500 शिष्यो के द्वारा प्रव्रज्या अगीकार कर ली गई है, ऐसा श्रवण किया तब उनके मन के महासागर मे प्रभु को वदन-नमस्कार करने एव पर्युपासना-उपासना करने के भाव जागृत हुए और उन्हीं भावो मे अवगाहन करते हुए वे यज्ञ-मण्डप से निकल कर समवसरण की ओर बढने लगे। समवसरण मे प्रविष्ट होकर प्रभु के चरणो मे नमस्कार किया।

(क) अमत्सर- ईर्ष्या-रहित (ख) तिर्यंचनामगोत्र - तिर्यंचगति में जाने योग्य नाम गोत्र कर्म

तब भगवान् ने फरमाया–मडिक वसिष्ठ ! तुम्हारे मन मे सदेह है कि जीव के बध और मोक्ष होता है, कि नहीं। विभिन्न प्रकार के वेद वाक्यो को श्रवण कर तुम्हारा मन सदेहग्रस्त हो गया। वेद मे एक वाक्य आया "सएष विगुणो विभुर्न बध्यते ससरति वा, न मुच्यते मोचयतिवा, न वा एष बाह्यमभ्यन्तर वा वेद" अर्थात् यह आत्मा सत्त्वादि गुण-रहित विभु है। उसे पुण्य पाप का बध नहीं होता। वह कर्म से मुक्त नहीं होता, दूसरो को कर्म से मुक्त नहीं करता। वह बाह्य अथवा आभ्यन्तर, कुछ भी नहीं है। इससे तुम समझते हो कि जीव को कर्मबध नहीं होता। वेद मे दूसरी जगह वाक्य है–नहवै सशरीरस्य प्रिया प्रिययोर पहतिरस्ति, अशरीर वा वसत प्रियाप्रिये नस्पृशत" अर्थात् सशरीरी जीव के प्रिय-अप्रिय होता है और अशरीरी का प्रिय-अप्रिय नहीं होता। इससे तुम समझते हो कि ससारी जीव के कर्मबध होता है और मोक्ष होने पर कर्मबध नहीं होता है।

अत दोनो प्रकार के वाक्यो का सम्यक् अर्थ नहीं जानने के कारण तुम्हारे मन मे सदेह व्याप्त है कि वस्तुत जीव के बध या मोक्ष होता है या नहीं?

लेकिन मडिक ! ससारी जीवो को राग-द्वेष के कारण कर्मो का बध अवश्यमेव होता है। कर्म बधन का कारण राग-द्वेष हैं। जब तक कर्मबध का कारण विद्यमान रहेगा, कर्मबध होता ही रहेगा और राग-द्वेष नष्ट होने पर जीव कर्म-विमुख बन जायेगा। कर्म-विमुख जीव के कर्म का बधन नहीं होता। जैसे बीज जलने पर वृक्ष नहीं उगता वैसे ही कर्म नष्ट होने पर सिद्ध जीव के कर्मो का बधन नहीं होता है। मडिक, तुम इस बात को समझो कि ससारी आत्मा के कर्मबध होता है, सिद्ध आत्मा के नही।

जब यह आत्मा मिथ्यात्वादि के सम्पर्क मे रहता है, तब वह भीषण कर्मो का बध कर लेता है और उन्हीं कर्मो के कारण चतुर्गति रूप ससार मे दारुण दु ख का अनुभव करता रहता है। तत्पश्चात् कदाचित् उसे किसी दिव्य (चारित्र) आत्मा के ससर्ग से सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र की प्राप्ति हो जाए तो वह सम्यक् पुरुषार्थ कर भीषण बधे हुए कर्मो को नष्ट कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त बन जाता है।[48]

यद्यपि जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है, तथापि जैसे अनादि काल से सोना मिट्टी के साथ खदान मे है, उसको अग्नि आदि मे तपाने पर मिट्टी पृथक् हो जाती है, सोना पृथक्। वैसे ही अनादिकालीन जीव और कर्म का सम्बन्ध भी अनादि होने पर सम्यक् पुरुषार्थ से पृथक् किया जा सकता है।

वेद मे "स एष विगुणो " कहा गया है। इसमे जीव का स्वरूप बतलाया गया हे कि मुक्त जीव के बधन-मोक्ष नहीं होता है और "नहीं वै " इस

वेदवाक्य द्वारा प्रतिपादित किया है कि ससारी जीव जो राग-द्वेष युक्त हैं, उनके ही कर्मबध होता है।

इस प्रकार भगवान् के मुख से तर्कसगत वेद-वाक्यो का अर्थ श्रवण कर मडिक का सशय विनष्ट हुआ। उन्होने प्रभु चरणो मे अपनी निवेदना प्रस्तुत की—भते ! आप जैसे महान ज्ञानी भगवत की शरण पाकर मैं धन्य हो गया हूँ। अब मैं आपके चरणो मे प्रव्रजित होकर सर्वतोभावेन समर्पित बनना चाहता हूँ।

भगवान् ने मडित एव उनके शिष्यो का समर्पण जानकर मडिक को 350 शिष्यो सहित जैन भागवती दीक्षा प्रदान की।[49]

मडिक पुत्र अब मुनि अवस्था को प्राप्त कर चुके है और उनके मुनि जीवन स्वीकार करने के समाचार पूरे नगर मे तुरन्त लोगो के मुख से प्रसारित होने लगे। उस समाचार को यज्ञ-मण्डप मे स्थित मौर्यपुत्र ने भी श्रवण किया। तब उनके मन मे प्रभु को नमस्कार एव पर्युपासना की भावना जागृत हुई। इसी शुभ भावना से अपने अतेवासियो सहित प्रभु के समवसरण की ओर बढने लगे।

समवसरण मे प्रविष्ट होकर भगवान् के भव्य दीदार को देखकर हतप्रभ रह गए। इतनी विशिष्ट आभा वाला मानव मैंने पहली बार दृष्टिगत किया है। वे प्रभु के अप्रतिम सौन्दर्य को निहारने लगे। तभी भगवान् ने नाम गोत्र से सम्बोधित करते हुए फरमाया—मौर्यपुत्र काश्यप ! तुम्हारे मन मे सदेह है कि देव है या नहीं है। तुमने एक वेद वाक्य श्रवण किया—"ए एष यज्ञायुधो यजमानोऽजसा स्वर्गलोक गच्छति" यज्ञ करने वाला यजमान निश्चित रूप से स्वर्ग मे जाता है। इससे तुमने चितन किया कि देवो का अस्तित्व है। लेकिन तुमने दूसरा वेद वाक्य श्रवण किया—"को जानाति मायोपमान् गीर्वाणानिन्द्रयम-वरुण-कुबेरादीन" अर्थात् माया सदृश इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि देवो को कौन जानता है? इससे तुमने चितन किया कि देव नहीं है। अत तुम सशयग्रस्त हो कि देव है अथवा नहीं?

परन्तु हे मौर्यपुत्र ! देवो का अस्तित्व तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी समवसरण मे वैमानिक, ज्योतिष्क, भवनपति एव वाणव्यतर, चारो जाति के देव हैं। साथ ही मनुष्य यहाँ विशिष्ट पुण्य का उपार्जन करता है, वह उस पुण्य को कहाँ भोगेगा? उसके पुण्य भोगने का स्थान ही देवगति है। वेद मे भी यज्ञ करने से देव भव की प्राप्ति बतलाई है।[50] साथ ही वेद मे यह भी कहा है कि "इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि माया सदृश हैं।" इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि जैसे माया अनित्य है, वैसे ही देव भव भी अनित्य हे। वे भी देवायु को भोगकर पुन मनुष्य अथवा तिर्यंच वनते हैं। इस प्रकार देवो की सत्ता तुम्हे माननी चाहिए।

भगवान् की गम्भीर गिरा[क] को सुनकर मौर्यपुत्र का सशय निरस्त हुआ और उन्होने भगवान् से सयम ग्रहण करने हेतु तत्परता प्रदर्शित की।

भगवान् ने मौर्यपुत्र एव उनके 350 शिष्यो का समर्पण जानकर अपने धर्मसघ मे दीक्षित किया।[51]

सात उपाध्यायो को अपने-अपने परिवार सहित दीक्षित हुआ जानकर अकम्पितजी ने चितन किया कि मुझे भी समवसरण मे जाकर प्रभु की पर्युपासना करनी चाहिए। ऐसा चितन कर अकम्पितजी प्रभु के समवसरण की ओर शिष्य समुदाय सहित चल दिए।

समवसरण मे प्रवेश करने पर प्रभु को देखते ही वे विनय से प्रणत होकर पर्युपासना करने लगे।

तब भगवान् ने उनके नाम गोत्र से सम्बोधित करते हुए कहा—हे अकम्पित गौतम ! तुम्हे नरक के बारे मे सदेह है, क्योकि एक वेद वाक्य मे कहा है—"नारको वै एष जायते य शूद्रान्नमश्नाति।" अर्थात् जो ब्राह्मण शूद्र का अन्न खाता है, वह नरक मे जाता है। इस वेद वाक्य से तुम नरक की सत्ता स्वीकार करते हो तथा अन्य वेद वाक्य मे कहा है—"न ह वै प्रेत्य नारका ।" अर्थात् जीव मरकर नारक नहीं होता। इससे तुम सोचते हो कि नरक नहीं है। अत तुम्हारे मन मे सशय चल रहा है कि नरक है अथवा नहीं?

किन्तु हे अकम्पित ! नरक तुझे तो प्रत्यक्ष दिखलाई दे रहा है। साथ ही जो मनुष्य या तिर्यंच प्राणी भयकर पाप कर्म करते हैं तो उस पाप भोगने का अवश्यमेव कोई स्थान है और वह स्थान है नरक, जहाँ निरन्तर भीषण कष्टो की यात्रा गतिमान है।

वेद मे जो कहा है—"न ह वै प्रेत्य नारक ।" इस वाक्य का यह अर्थ है कि परलोक मे मेरु आदि के समान नरक शाश्वत नहीं है। जो उत्कृष्ट पाप नहीं करते वे नरक मे नहीं जाते।

भगवान् के सत्य वचनो को सुनकर अकम्पित का सशय दूर हुआ। उन्होने निवेदन किया—भते ! आपश्री की सन्निधि से मेरा सशय दूर हुआ है। मैं आपके ही चरणो मे प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

अकम्पितजी द्वारा निवेदन किये जाने पर भगवान् ने उनको 350 शिष्यो सहित सामायिक चारित्र प्रदान किया।[52] अष्ट उपाध्यायो के दीक्षा के समाचार अचलभ्राता के कर्णकुहरो मे गुजित हुए तब उन्होने भी विशुद्ध मति से विचार

(क) गिर- वाणी

किया कि मुझे भी भगवान् को नमस्कार करके उनकी पर्युपासना करनी चाहिए। तब वे भी यज्ञ-मण्डप से निकल कर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवान् महावीर के समवसरण की ओर चल पडे। समवसरण के करीब पहुँचकर उसकी भव्य प्रभा को देखकर दाँतो तले अगुली दबाने लगे। ओह ! भूमण्डल पर ऐसा अद्वितीय समवसरण हमने कभी नहीं देखा। समवसरण ही जब इतना भव्य है तो इसमे विराजमान भगवान् तो भव्यातिभव्य होगे ही।

इन्ही विचारो मे आकठ डूबे हुए वे समवसरण मे प्रविष्ट हुए और प्रभु को नमस्कार करके उनकी मनमोहक सूरत को निहारने लगे। तब भगवान् ने उन्हे सम्बोधित करके कहा—अचलभ्राता हारित ! तुम्हे पुण्य व पाप की सत्ता मे सदेह है। तुमने वेद के एक वाक्य को श्रवण किया—"पुरुष एवेद ग्नि सर्वं।" अर्थात् पुरुष (आत्मा) के अतिरिक्त किसी भी तत्त्व की सत्ता नहीं है। इसी कारण तुम्हे पुण्य-पाप के विषय मे सदेह है।

लेकिन तुम्हारा यह सदेह निरर्थक है, क्योकि जगत् मे पुण्य-पाप का फल तो प्रत्यक्ष ही दिखलाई देता है। एक ही प्रकार के अन्न के खाने से एक व्यक्ति को सुख, दूसरे को दु ख पैदा होता है। दो सहोदर भाइयो मे भी एक विशाल राज्य का सम्राट् बन जाता है। एक भिखारी बनकर गलियो मे चक्कर लगाता है। यह सब पुण्य व पाप का ही फल है।

वेद मे भी स्वर्ग की कामना से यज्ञ करने की बात कही है। लोक मे भी दान से पुण्य व हिसा से पाप माना जाता है। अत पुण्य-पाप, दो स्वतत्र तत्त्व है। वेद मे जो यह कहा है—"पुरुष ।" इसका तात्पर्य पुण्य-पाप का निषेध करना नहीं, अपितु आत्मा को शाश्वत[क] बताना है।

भगवान् के ऐसा कहने पर अचलभ्राता का सशय दूर हुआ और उन्होने प्रभु के चरणो मे अपनी विनय प्रज्ञप्ति प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया—भते ! मैं आपश्रीजी के चरणो मे सयम अगीकार करना चाहता हूँ। तब भगवान् ने उनके भावो को आत्मसात् करते हुए उनके 300 शिष्यो सहित उन्हें प्रव्रज्या प्रदान की।[53]

अचलभ्राता की दीक्षा के समाचार मिलते ही मैतार्य ने चितन किया, मैं भी उन भगवान् के दर्शन, वदन व पर्युपासना करके स्व-जीवन को धन्य बनाऊँ। इसी भावना के साथ वे यज्ञ-मण्डप से अपने शिष्य परिवार सहित समवसरण की ओर चल पडे। समवसरण की दिव्य-भव्य प्रभा का अवलोकन कर चित्रलिखित रह गए। उत्साही कदमो से समवसरण के भीतर प्रवेश किया और भक्ति-भाव से

(क) शाश्वत- सतत, स्थायी, नित्य

प्रभु को वदन-नमस्कार किया और उनकी पर्युपासना करने लगे।

तब प्रभु ने उन्हे सम्बोधित करके कहा–मैतार्य कोण्डिन्य ! तुम्हे पर
के विषय मे सदेह है कि परलोक है अथवा नहीं। लेकिन जगत् मे अनेक
सुख-दु ख आदि प्राप्त करते हुए देखे जा रहे है। कोई प्राणी इस भव मे
काम नहीं करता फिर भी उसे निरन्तर बुरा फल मिलता है। ये सारे सुख-
एक भव के कर्मानुसार नहीं, अनेक भव के कर्मानुसार मिलते हैं। आत्
शाश्वत है, वह कर्मानुसार जन्म-मरण करती है। इसी से परलोक की
होती है। साथ ही अनेक प्राणियो को अपने पूर्वजन्म की स्मृति आती है।
परलोक की सत्ता स्वत सिद्ध है।

तुम वेद का वाक्य–"विज्ञान "श्रवण कर सोचते हो कि आत्मा
मे पैदा होती है और शरीर के समाप्त होने पर समाप्त हो जाती है। लेकिन
सोचना ठीक नहीं है, क्योकि जड शरीर से चैतन्य आत्मा का निर्माण
होता।[54] वेद मे यह भी कहा गया है–"स्वर्गकामे जुहुयात" अर्थात् स्वर्ग
कामना से यज्ञ करो। यदि परलोक नहीं तो फिर स्वर्ग की कामना कैसी?
तुम्हे परलोक के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिए। प्रभु की अमृत दे
सुनकर मैतार्य का सशय दूर हुआ और वे प्रभु चरणो मे निवेदन करते हैं–
अब मैं सशयातीत होकर चरणो मे समर्पित होना चाहता हूँ।

भगवान् ने उनकी भावना को जानकर 350 शिष्यो सहित दीक्षित कि

10 उपाध्यायो को दीक्षित हुआ जानकर प्रभास ने सोचा कि अब मुझे
भगवान् के पास जाकर उनकी वदना एव पर्युपासना करनी चाहिए। इसी वि
को कार्यरूप मे परिणत करते हुए वे यज्ञ-मण्डप से समवसरण तक पहुँच
समवसरण के भीतर प्रवेश करके उन्होने भगवान् का भव्य आभामण्डल देख
वदन-नमस्कार किया एव एकाग्र बनकर प्रभु की पर्युपासना की। तब भगवा
'प्रभास कौण्डिन्य!' कहकर उन्हे सम्बोधित किया एव फरमाया कि
निर्वाण–मोक्ष के विषय मे सदेह है कि मोक्ष* है या नहीं। क्योकि वेद मे
वाले विभिन्न वाक्यो से तुम्हारी मति मे विभ्रम पैदा हो गया है।

वेद का एक वाक्य है–"जरामय वैतत सर्वं यदग्निहोत्रम्" अर्थात् वृद्धावस्
मरण पर्यन्त स्वर्गदायक अग्निहोत्र यज्ञ करना चाहिए। इससे तुम यह समझते हो
यज्ञ से स्वर्ग ही मिलता है, निर्वाण नहीं। अत निर्वाण नामक कोई स्थान नहीं है

इसके अतिरिक्त वेद का अन्य वाक्य है–"सैषा गुहा दुरावगाहा" अ
निर्वाण प्राप्त करना अत्यत कठिन है। इससे तुम समझते हो कि निर्वाण

(*) मोक्ष — कर्मों से सर्वथा रहित

कलने का श्रेष्ठतम उपदेश दिया। मोह की जजीरो को तोडकर की ओर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त किया। कर्म-बधन से ी ओर प्रयाण[क] का पथ प्रदर्शित किया। वीरागनाओ के लिए स्कर है, ऐसा निरूपण किया। सयम अनन्त आत्मिक सुख को इस सयम-मार्ग पर बढकर अनेक आत्माओ ने स्व-पर कल्याण त किया है। अतएव इसे अविलम्ब स्वीकार करना चाहिए, ऐसा भु महावीर ने दिया।

देशना को श्रवण कर चन्दनबाला सहित अनेक राजकुमारियॉ ससार ई और उन्होंने प्रभु चरणों में निवेदना प्रस्तुत की–"भगवन्! हम आपश्रीजी से विरक्त होकर सयम मार्ग अगीकार करना चाहती हैं।"

उनकी प्रशस्त भावना को जानकर उन्हे तीन करण[ख], तीन योग[ग] से । का त्याग करवाकर सामायिकचारित्र[घ] प्रदान किया और अपने से महासती चन्दनबालाजी की योग्यता को देखकर उन्हे साध्वी खा घोषित किया।[60]

। महावीर के विराट् चितन ने सामाजिक वातावरण मे एक नई क्रान्ति किया। जिस समय भगवान् महावीर ने साध्वीश्री चन्दनबाला को की प्रमुखा बनाकर उन्हे श्रमण[xxi] वर्ग के बराबर का दर्जा दिया उस किसी धर्म या सम्प्रदाय मे नारियो को इस प्रकार अधिकार देने की लक्षित नहीं होती।

। प्राचीनकालीन वैदिक सस्कृति मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि ऋषि की दो पत्नियॉ थी–गार्गी और मैत्रेयी। जब याज्ञवल्क्य संन्यास ने लगे तो उन्होने दोनो पत्नियो से पूछा–मैं तुम्हे क्या दूँ? गार्गी ने रे पास देने ... या। सम्पत्ति है? याज्ञवल्क्य बोले–एक ... कर तुम अजर-अमर पद को प्राप्त ... है। गार्गी ने कहा–मुझे आत्मिक ... भी नहीं।

तेन ऽह कि क ... र्गत् जिस ... । उस सामग्री ... । प्रयोजन?

करना, कर ... मोदन करना
पापकारी
टो दीक्षा

को निरस्त करने का स्तुत्य कार्य किया। उनका चारित्र अगीकार करना इस बात को सूचित करता है कि सदैव मनुष्य को सत्य-मार्ग पर पदाधान करना चाहिए। उन्होने तत्कालीन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य समाज मे जो भेदरेखा थी, उसे मिटाकर मानव को मानव के समीप लाने का उपक्रम किया।[56]

इससे मध्यम पावा मे परस्पर सामजस्य मे वृद्धि होने लगी और विद्वान ब्राह्मणो की दीक्षा के समाचारो को श्रवण कर अनेक नर-नारियो के समूह समवसरण मे पहुँचने लगे। देव-देवियो मे भी हलचल मची थी। अनेक देव-देवी आकाश मण्डल से मध्यम पावा की ओर प्रस्थान कर रहे थे।

चंदना का समर्पण :

उसी समय कौशाम्बी नरेश शतानीक के घर पर पलने वाली चम्पा की राजकुमारी चन्दनबाला ने आकाश मार्ग मे अद्भुत नजारा देखा। बहुरगी मणियो की झिलमिलाहट से चमचमाते हुए दिव्य देव विमान आकाश-मण्डल मे यत्र-तत्र-सर्वत्र चमक रहे थे। वे विमान मध्यम पावा की ओर बढ रहे थे। तभी यकायक चन्दनबाला ने चितन किया—अरे, निरभ्र[क] आकाश मे आज इतने देव विमान! मध्यम पावा की ओर जा रहे हैं। क्या है पावा मे क्या भगवान् को केवलज्ञान हो गया लगता है तभी इतने देव भूमण्डल पर आ रहे हैं मुझे भी भगवान् के समवसरण मे जाना है लेकिन जाऊँ तो जाऊँ कैसे .. जल्दी कैसे पहच् .. क्या भगवान् की कृपा से कोई देव सहायता कर सकता है मुझे भी जाना है प्रभु को प्राप्त करना है । चन्दनबाला एकाग्र मन से प्रभु महावीर का स्मरण कर रही थी। तभी आकाश-मार्ग से गमन करते हुए एक देव का उपयोग लगा। देखा, एक राजकुमारी निरन्तर प्रभु को पाने की अभीप्सा लिए उन्हीं मे आकठ डूबी है। उस राजकुमारी को मुझे अपने विमान मे बिठाकर समवसरण मे ले जाना चाहिए। उस देव ने यह सोचकर विमान की गति को विराम दिया और दिव्य शक्ति से चन्दना को उठाकर अपने विमान मे बिठलाकर समवसरण मे ले जाकर छोड दिया। ऐसा उल्लेख त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र मे मिलता है।[57] गुणचन्द्र विरचित महावीर चरिय मे ऐसा वर्णन मिलता है कि देवी उसे हाथ पकड कर समवसरण मे ले जाती है।[58] लेकिन कई आधुनिक ग्रथो (मधुकरजी का तीर्थंकर चारित्र) मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान् के केवलज्ञान के समाचारो को श्रवण कर चन्दनबाला शीघ्रता के साथ भगवान् महावीर के दर्शन करने के लिए निकल पडी।[59]

देवी ने चन्दनबाला को प्रभु के समवसरण मे पहुँचा दिया। प्रभु ने ससार

(क) निरभ्र-बादल रहित स्वच्छ आकाश

के कीच से निकलने का श्रेष्ठतम उपदेश दिया। मोह की जजीरो को तोडकर आत्म-साधना की ओर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त किया। कर्म-बधन से कर्म-विमुक्ति की ओर प्रयाण[क] का पथ प्रदर्शित किया। वीरागनाओ के लिए सयम ही श्रेयस्कर है, ऐसा निरूपण किया। सयम अनन्त आत्मिक सुख को देने वाला है। इस सयम-मार्ग पर बढकर अनेक आत्माओ ने स्व-पर कल्याण का पथ प्रदर्शित किया है। अतएव इसे अविलम्ब स्वीकार करना चाहिए, ऐसा उद्घोष महाप्रभु महावीर ने दिया।

इस भव्य देशना को श्रवण कर चन्दनबाला सहित अनेक राजकुमारियाँ ससार से विरक्त हो गई और उन्होंने प्रभु चरणो में निवेदना प्रस्तुत की–"भगवन्! हम आपश्रीजी की अमृतवाणी से विरक्त होकर सयम मार्ग अगीकार करना चाहती हैं।"

प्रभु ने उनकी प्रशस्त भावना को जानकर उन्हे तीन करण[ख], तीन योग[ग] से सावद्य[घ] योगो का त्याग करवाकर सामायिकचारित्र[ङ] प्रदान किया और अपने केवलालोक से महासती चन्दनबालाजी की योग्यता को देखकर उन्हे साध्वी सघ की प्रमुखा घोषित किया।[60]

भगवान् महावीर के विराट् चिंतन ने सामाजिक वातावरण मे एक नई क्रान्ति का सूत्रपात किया। जिस समय भगवान् महावीर ने साध्वीश्री चन्दनबाला को श्रमणी वर्ग की प्रमुखा बनाकर उन्हे श्रमण[xxi] वर्ग के बराबर का दर्जा दिया उस समय अन्य किसी धर्म या सम्प्रदाय मे नारियो को इस प्रकार अधिकार देने की परम्परा परिलक्षित नही होती।

यद्यपि प्राचीनकालीन वैदिक सस्कृति मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियाँ थी–गार्गी और मैत्रेयी। जब याज्ञवल्क्य संन्यास ग्रहण करने लगे तो उन्होने दोनो पत्नियो से पूछा–मैं तुम्हे क्या दूँ? गार्गी ने पूछा–तुम्हारे पास देने के लिए क्या-क्या सम्पत्ति है? याज्ञवल्क्य बोले–एक आत्मिक सुख की सम्पत्ति है, जिसे ग्रहण कर तुम अजर-अमर पद को प्राप्त कर सकती हो और दूसरी भौतिक सम्पत्ति है। गार्गी ने कहा–मुझे आत्मिक सुख की सामग्री चाहिए। भौतिक सुख-सामग्री नहीं।

याज्ञवल्क्य ने पूछा–क्यो?

गार्गी ने कहा–येन अमृतत्व न स्याम तेन ऽह कि कुर्याम्। अर्थात् जिस भौतिक सामग्री को प्राप्त कर अमरता नहीं मिलती उस सामग्री से मुझे क्या प्रयोजन?

(क) प्रयाण- गमन
(ख) करण- करना, करवाना और अनमोदन करना
(ग) योग- मन, वचन काया
(घ) सावद्य- पापकारी
(ङ) सामायिकचारित्र- पाँच चारित्रों में प्रथम चारित्र (छोटी दीक्षा)

तब गार्गी[61] के इस उत्तर को सुनकर उसे भी सन्यास प्रदान वि

इस उद्धरण से सभवत प्राचीनकाल मे वैदिक परम्परा मे सन्यास स्वीकृत की गई, ऐसा लगता है, परन्तु किसी भी सन्यस्त नारी को पु के बराबर दर्जा, मिला ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।

परवर्तीकाल मे तो वैदिक आचार्यो ने स्त्री को धर्म करने मे प लिया और इसी कारण अनेक स्थानो पर साधु जीवन से गृहस्थ धर्म बतला दिया। आचार्य वशिष्ठ ने अपने धर्म सूत्र मे इसी बात का उल्ले हुए कहा है–"चतुर्णामाश्रमाणा तु गृहस्थश्च विशिष्यते।" अर्थात् ब्रह्मचर वानप्रस्थ और सन्यास–इन चार आश्रमो मे गृहस्थ आश्रम सर्वश्रेष्ठ है। यम ने तो स्मृति चन्द्रिका व्यवहार मे स्त्री के सन्यास ग्रहण का प्रब किया है।[63] अत्रिस्मृति मे स्त्री के संन्यास को पाप कर्म तक बतला दि प्रकार परवर्ती वैदिक परम्परा मे धार्मिक मच पर नारी को पुरुष वर्ग व का दर्जा नहीं मिला।

बौद्ध परम्परा मे भी बुद्ध ने जब धर्मसघ की स्थापना की थी तब उन्होने भिक्षु सघ की ही स्थापना की थी।[65] पॉच वर्ष तक उन्होने अप एक भी स्त्री को दीक्षा प्रदान नहीं की। लेकिन पॉच वर्ष पश्चात् उन गौतमी ने, बुद्ध से निवेदन किया कि भते ! आप मुझे प्रव्रजित करे। पर उसे अस्वीकार किया।[66] गौतमी ने स्वय ही केश कर्तन करवाकर व वस्त्रो को धारण कर लिया और अन्य स्त्रियो को भी अपने साथ लेव भी केश कर्तन करवा दिये, काषायिक[क] वस्त्र धारण करवा दिये। वे स विहार कर बुद्ध के पास गयीं[67] और पुन दीक्षा देने का अनुरोध किय बुद्ध को यह बात नहीं जॅची। तब आनन्द भिक्षु ने बुद्ध से कहा कि ए आप अपने सिद्धान्तानुसार नारी को अर्हत पद के योग्य बतलाते हैं, दू उन्हे प्रव्रजित नहीं करते, आपको स्त्रियो को दीक्षा देनी चाहिए।[68]

तब गौतम बुद्ध ने अनिच्छा से गौतमी को दीक्षा प्रदान की औ आनन्द से कहा–आनन्द ! जहॉ स्त्रियॉ प्रव्रजित होती हैं, उस धर्मसघ मे स्थायी नहीं रहता।[69] इस प्रकार बौद्ध परम्परा मे स्त्रियो को पुरुष व अधिकार नहीं थे।

जैन परम्परा मे प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि[ख] पर्यन्त एक ही परिलक्षित हो रही है। यहॉ धर्मसघ मे साधु और साध्वी को समान अधिव हैं। भगवान् ऋषभदेव ने धर्मसघ की स्थापना के दिन ब्राह्मी-सुन्दरी को

देकर उनको साध्वीप्रमुखा का दर्जा दिया था।[70] और उसी परम्परानुसार भगवान् महावीर ने भी नारियो को दीक्षा देकर उन्हे पुरुष साधु के समान अधिकार दिये।

वेदो मे जहॉ स्त्रियो को सम्पूर्ण वेदो को पढने का अधिकार नहीं था, वहॉ जैनियो मे मात्र चौदह पूर्वो[xxii] को पढने का अधिकार नहीं दिया गया, क्योकि पूर्वो मे विशिष्ट लब्धियो का प्रयोग होने से स्त्रियॉ कोमल स्वभाव से उनका दुरुपयोग कर सकती थीं। इसलिए उनको पूर्व[xxiii] पढने का अधिकार नहीं था। लेकिन शेष सभी आगम पढने का अधिकार है। साथ ही विशेषता भी है कि नारी जाति को जो सम्मांन महावीर ने दिया वह अन्य कही भी परिलक्षित नहीं होता। उन्होने अपने चतुर्विध सघ के चार पायो (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) मे से दो पायो का स्थान नारी वर्ग को दिया। इस प्रकार नारियो को ऊँचा उठाने का कार्य करके प्रभु महावीर नारी जाति के उद्धारक बन गये।

संघ स्थापना और तीर्थंकरत्व साध्वी चन्दनबाला की दीक्षा के पश्चात् जो व्यक्ति साधु जीवन के महापथ पर आरूढ नहीं हो सके उनको भगवान् महावीर ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण करवाकर श्रावक एव श्राविका का अलकरण दिया।

इस प्रकार साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध [71]"संघतीथ[xxiv]" की स्थापना करके प्रभु महावीर "तीर्थङ्कर"[72] की वास्तविक उपाधि को सार्थक कर रहे थे।

चतुर्विध सघ की स्थापना के पश्चात् भगवान् ने इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वानो को तीन पद बतलाये–1 उप्पन्ने इवा, 2 विगमे इवा और 3 धुवे इवा। अर्थात् पदार्थ उत्पन्न होता है, नष्ट होता है किन्तु अपने स्वरूप मे, ध्रुव रूप मे स्थित रहता है। जैसे किसी व्यक्ति ने सोने का कगन तुडवाकर चैन बनवाई। इसमे कगन नष्ट हो गया, चैन उत्पन्न हुई लेकिन सोना इन दोनो मे स्थित रहा। यही अवस्था प्रत्येक पदार्थ मे होती है। इन्द्रभूति आदि ने भगवान् से इन तीन पदो को श्रवण कर सम्पूर्ण द्वादशागी को आत्मसात् कर लिया।[73] तत्पश्चात् भगवान् ने इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वानो को गणधर[xxv] पद पर प्रतिष्ठित किया और सबको अपने-अपने शिष्य सौंप कर उन्हे अध्ययन करवाने का दायित्व दिया। ग्यारह गणधरो के नौ गण[xxvi] बने। प्रथम सात गणधरो की सूत्र-वाचना पृथक्-पृथक् प्रारम्भ हुई, परन्तु अष्टम-नवम गणधरो की एवं दसम-एकादश गणधरो की सूत्र वाचनाऍ सम्मिलित हुई। इस प्रकार ग्यारह गणधरो की नौ वाचनाऍ चलने लगी।[74]

मध्यम पावा परिपूर्णरूपेण धर्मनगरी बन गई है। त्रिपथ, चतुष्पथ और राजमार्गो पर जगह-जगह एकमात्र भगवान् महावीर की चर्चा हो रही हे कि कल क्या दृश्य था, वेशाख शुक्ला एकादशी का ! वह मनोरम दृश्य, जिसमे एक ही दिन मे विपुल मात्रा मे भव्यजनो ने भागवती दीक्षा अगीकार कर सभी के मन को

मुग्ध बना दिया है। भगवान् महावीर की दिव्य वाणी का प्रभाव भव्यजनो के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। श्रमण समुदाय, श्रमणी समुदाय, श्रावक और श्राविकाएँ मध्यम पावा मे सर्वत्र परिलक्षित हो रहे हैं। कोई साधक [क]समिति-गुप्ति[ख] का पालन करता हुआ गोचरी[ग] जा रहा है तो कोई भिक्षाचर्या करके पुन लौट रहा है। कोई [घ]अचित्त-प्रासुक[ङ] या धोवन पानी[xxvii] की गवेषणा कर रहा है तो कोई एषणीय[च] पानी लेकर लौट रहा है। पावा का कण-कण धर्ममय बन गया और अपश्चिम तीर्थंकर महावीर अपनी उत्कृष्ट पुण्य प्रकृति तीर्थंकर नाम कर्म का वेदन (अनुभव) कर रहे हैं।

तीर्थंकर[छ] शब्द जैन वाड्मय का पारिभाषिक शब्द है। जैन धर्म में सस्थापक को तीर्थंकर की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ तीर्थ कहलाता है। इसी चतुर्विध सघ रूपी तीर्थ की रचना करने वाले को तीर्थंकर कहते हैं। यह तीर्थंकर पद अनादि काल से चला आ रहा है। भूतकाल मे अनत तीर्थंकर हो गये। भविष्य मे भी अनत तीर्थंकर होंगे और महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा इस भूमण्डल पर सदैव तीर्थंकर विद्यमान रहते हैं।

तीर्थंकर भगवान् पन्द्रह कर्मभूमिज क्षेत्रो मे ही होते हैं। पॉच भरत[xxviii], पॉच ऐरावत[xxix] एव पॉच महाविदेह, इन पन्द्रह क्षेत्रो मे तीर्थंकर होते हैं। पाँच भरत एव पॉच ऐरावत मे तो तीसरे-चौथे आरे मे ही तीर्थंकर होते हैं, लेकिन महाविदेह क्षेत्र मे सदैव चतुर्थ आरक के समान काल रहने से प्रत्येक काल मे तीर्थंकर पाये जाते हैं।[75] लोक मे तीर्थंकर कम से कम बीस होते हैं और अधिक से अधिक 170 होते हैं। इस जगती पर पॉच महाविदेह हैं, उनमे बत्तीस विजयो (क्षेत्रों) मे तीर्थंकर हो सकते हैं। कम से कम एक महाविदेह मे चार और अधिक से अधिक बत्तीस हो सकते हैं। जब एक महाविदेह मे चार तीर्थंकर होते हैं तो (5X4=20) पॉच महाविदेह मे 20 तीर्थंकर हो जाते हैं। जब अधिक से अधिक प्रत्येक महाविदेह मे बत्तीस तीर्थंकर होगे तो पॉच महाविदेह मे (32X5) 160 तीर्थंकर हो जायेगे। उस समय एक-एक भरत तथा एक-एक ऐरावत मे एक-एक तीर्थंकर अवश्य होगे। अतएव पॉच भरत मे 5, पॉच ऐरावत मे 5 तथा महाविदेह मे 160, इस प्रकार अधिक से अधिक कुल 170 तीर्थंकर होते हैं। जब-जब भूमण्डल पर मनुष्यो की सख्या उत्कृष्ट होती है तब-तब 170 तीर्थंकर होते हैं।

(क) समिति- जिसके द्वारा साधक सम्यक प्रवृत्ति में है वह ईर्यादि के भेद से पाँच प्रकार की है।
(ख) गुप्ति- मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना
(ग) गोचरी- आधाकर्मादि दोष रहित भिक्षा (घ) अचित्त- जीव रहित
(ङ) प्रासुक- प्राण रहित, (अजीव) (च) एषणीय- दोष रहित
(छ) तीर्थंकर- जो तीर्थ/गणधरों को तैयार करते है वे तीर्थंकर है (आ.चू.1, पृ.85)

अभी वर्तमान मे भगवान् अजितनाथजी के समय 170 तीर्थंकर हुए क्योकि उस समय मनुष्यो की उत्कृष्ट सख्या थी।[76]

एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर से कभी भी मिल नहीं सकता क्योकि ऐसा ही शाश्वत नियम है।[77] प्रत्येक तीर्थंकर अर्थ रूप से वही वाणी फरमाते हैं लेकिन सूत्र रूप मे अलग-अलग गुम्फन होता है। सूत्रो की रचना गणधर करते हैं।[78] तीर्थंकर भगवान् के महान् पुण्यवानी का उदय होता है। वे पूर्वभव मे बीस बोलो की आराधना करने से तीर्थंकर[xxx] बनते हैं। वे बीस बोल[xxxi] इस प्रकार है-

1 अरिहन्त भगवान् की भक्ति, उनके गुणो का चितन, उनकी आज्ञा का पालन करने से उत्कृष्ट रसायन (भाव) आये तो तीर्थंकर नाम कर्म का बधन होता है।
2. सिद्ध भगवान् की भक्ति और उनके गुणो का चितन करने से।
3 निर्ग्रन्थ प्रवचन रूप श्रुत ज्ञान मे अनन्य उपयोग रखने से।
4 गुरु महाराज की भक्ति, आहारादि द्वारा सेवा और उनके गुणगान करने एव आशातना टालने से।
5 जाति स्थविर (60 वर्ष की उम्र वाले), श्रुत स्थविर (स्थानाग, समवायाग के धारक), प्रवज्या स्थविर (20 वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले) की भक्ति करने से।
6 बहुश्रुत (शास्त्र-ज्ञाता) मुनिराज की भक्ति करने से।
7 तपस्वी मुनिराज की भक्ति करने से।
8 ज्ञान की निरन्तर आराधना करने से।
9 समकित का निरतिचार पालन करने से।
10 गुणज्ञ रत्नाधिको का तथा ज्ञानादि का विनय करने से।
11 भावपूर्वक उभयकाल प्रतिक्रमण करने से।
12. मूल गुण-उत्तर गुणो का निर्दोष रीति से शुद्धतापूर्वक पालन करने से।
13 सदा सवेग भाव रखने से अर्थात् शुभ ध्यान करते रहने से।
14 तपस्या करते रहने से।
15 भक्तिपूर्वक सुपात्र दान देने से।
16 आचार्यादि[क] दस की वैयावृत्य करने से।
17 सेवा तथा मिष्ट भाषणादि के द्वारा गुरु आदि को प्रसन्न रखने से तथा स्वय समाधिभाव मे रहने से।

(क) अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय स्थविर, कुल, गण, चतुविध संघ, स्वधर्मी और क्रियावान।

18 नवीन ज्ञान का अभ्यास करते रहने से।

19 श्रुत ज्ञान की भक्ति तथा बहुमान करने से।

20 प्रवचन की प्रभावना करने से।

इन बीस बोल की उत्कृष्ट आराधना करने से तीर्थंकर,[79] मध्यम आराधना से गणधर तथा जघन्य आराधना से आचार्यादि पदवी प्राप्त करता है। प्रभु महावीर ने भी इन सबकी आराधना कर तीर्थंकर पद को प्राप्त किया। तीर्थंकर[xxxii] भगवान् का अतिशय प्रभाव रहता है। आतिशयिक प्रभाव के द्योतक उनके चौंतीस अतिशय इस प्रकार हैं –

1 अवस्थित केश–श्मश्रु रोम, नख, केश आदि अशोभनीय रूप से नहीं बढना।

2. निरोग–निर्मल शरीर होना।

3 गाय के दुग्ध के समान रक्त-मास होना।

4 श्वासोच्छ्वास पद्म-कमल की सुगध के समान सुगन्धित होना।

5 आहार-निहार चर्म-चक्षुओ से अदृष्ट होना, लेकिन विशेषता यह है कि अवधिज्ञानी तीर्थंकर भगवान् के आहार-निहार को अपने ज्ञान से देख सकता है।

6 आकाश मे धर्म-चक्र का चलना।

7 आकाश मे गमन करते हुए तीन छत्रो का रहना।

8 आकाश मे अत्यन्त स्वच्छ स्फटिक मणि के समान प्रकाशमान श्वेत चामरो का ढोलना।

9 आकाश के समान अत्यन्त स्वच्छ पाद-पीठयुक्त स्फटिक सिहासन का होना।

10 आकाशगत उच्च अनेक लघुपताकाओ से परिमण्डित अभिरमणीय इन्द्रध्वजा (शेष ध्वजाओ की अपेक्षा अति महान् होने से इसे इन्द्रध्वजा कहा है) भगवान् के आगे चलना।

11 जहॉ तीर्थंकर भगवान् विराजते हैं वहाँ तत्क्षण पत्र, पुष्प, पल्लव से युक्त छत्र, ध्वजा, घटा और पताका से युक्त देवनिर्मित श्रेष्ठ अशोक वृक्ष होना।

12. मस्तक के पीछे दिव्य तेजोमण्डल होना।

13 तीर्थंकर भगवान् जहॉ विचरण करते हो वहॉ वहु समरमणीय भूमि भाग होना।

14 तीर्थंकर भगवान् के जहॉ चरण पडते हैं, वहॉ कॉटो का अधोमुख हो जाना।

15 ऋतुओ का सुख-स्पर्श वाली होना अर्थात् ऋतुएँ शारीरिक क्षमता के अनुकूल होना।

16 सर्वतक वायु के चलने से एक योजन तक की भूमि साफ (सुथरी) स्वच्छ होना।

17 सुगन्धित जल की वर्षा होने से भूमि रजरहित होना।

18 जल एव भूमि पर खिलने वाले पॉच वर्ण वाले अचित्त पुष्पो की घुटनो प्रमाण वर्षा होना।

19 अमनोज्ञ शब्द, वर्ण, गध, रस और स्पर्श का अभाव होना।

20 मनोज्ञ शब्द, वर्ण, गध, रस और स्पर्श का सद्भाव होना।

21 धर्मोपदेश देते समय एक-एक योजन तक फैलने वाला, हृदय को प्रिय लगने वाला स्वर होना।

22. अति सुकोमल अर्धमागधी भाषा मे धर्मोपदेश देना।

23 भगवान् द्वारा उपदेश देने पर यह भाषा आर्य, अनार्य देशोत्पन्न मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी समझ जाते हैं, क्योकि ऐसा अतिशय होने से यह भाषा सब जीवो की अपनी-अपनी भाषा रूप परिणत हो जाती है।

24 अनादिकालीन, भवान्तर एव जन्म-जात निकाचित वैर वाले वैमानिक, ज्योतिषी, भवनपति, व्यन्तर, मनुष्य आदि भगवान् के समवसरण मे प्रभु की सन्निधि मे प्रशात चित्त होकर धर्म श्रवण करते है।

25 अन्यतीर्थिक भी आकर भगवान् को वदना करते हैं।

26 अन्यतीर्थिक भी भगवान् के समीप आकर निरुत्तर हो जाते है।

27 जिस-जिस देश मे भगवान् विचरण करते है, उस-उस देश मे 25 योजन तक ईति अर्थात् धान्य के लिए उपद्रवकारी प्रचुर मूषकादि प्राणियो का अभाव होता है।

विशेष -

19 काला गुरु प्रवरुक तुरुष्क आदि सुगधित द्रव्यो की धूप से सुगधित तीर्थंकर भगवान् के बैठने का स्थान होना।

20 तीर्थंकर भगवान् के दोनों तरफ दो यक्ष का अतिशय अलकारों को धारण कर चँवर वीजते रहना। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जो 19वॉ तथा 20वॉ अतिशय बतलाया है वह वृद्द वाचना मे नही है। अत दूसरे प्रकार से 19वॉ तथा 20वॉ अतिशय[xxiii] बतलाते हैं।

28 महामारी, हैजा, प्लेगादि का उपद्रव नहीं होता।
29 स्वदेश के राजा और सेना का भय नहीं होता।
30 परचक्र, शत्रु, राजा और सेना का भय नहीं होता।
31 अतिवृष्टि का अभाव होता है।
32 अनावृष्टि का अभाव होता है।
33 दुष्काल का अभाव होता है।
34 भगवान् का जहॉ पदार्पण होने वाला हो, वहॉ उनके पदार्पण से पहले ही ईति, भीति, महामारी, स्वचक्र तथा परचक्र का भय समाप्त हो जाता है।

इन चौंतीस अतिशयो में दूसरे से पचम पर्यन्त चार अतिशय भगवान् के जन्म से होते है तथा इक्कीस से चौंतीस पर्यन्त एव आभामण्डल–ये पन्द्रह अतिशय चार कर्मो के क्षय से केवलज्ञान होने पर होते हैं। तीर्थकर भव की अपेक्षा होने वाले अतिशयो के अतिरिक्त शेष 6 से 20 तक 12वे अतिशय को छोडकर 14 अतिशय देवकृत होते हैं।[80]

भगवान् महावीर के 34 ही अतिशय प्रकट हो गये। इस उत्कृष्ट पुण्य प्रकृति का उपभोग प्रभु कर रहे हैं।

उनके सत्य वचन के पेतीस अतिशय कहे गये हैं –

1 सस्कारत्व –तीर्थंकर भगवान् सस्कारयुत् वचनो का प्रयोग करते हैं।
2 उदात्तत्व–भगवान् ऐसे उच्च स्वर से बोलते हैं कि एक योजन बैठी परिषद उनका उपदेश भली-भॉति श्रवण कर लेती है।
3 उपचारोपेतत्व–भगवान् के वचन तुच्छता रहित होते है।
4 गम्भीर शब्दत्व–प्रभु की वाणी मेघ गर्जना के समान गम्भीर होती है।
5 अनुनादित्व–जैसे गुफा मे बोलने से प्रतिध्वनि उठती है, वैसी भगवान् की वाणी की प्रतिध्वनि उठती है।
6 दक्षिणत्व–भगवान् के वचन सरलता से युक्त होते हैं।
7 उपनीत रागत्व–मालकोशादि राग से युक्त वचन होते हैं।
ये सात अतिशय शब्द की अपेक्षा से जानने चाहिए। अन्य सारे वाणी के अतिशय अर्थ की अपेक्षा से जानने चाहिए।
8 महार्थत्व–वचन महान् अर्थ वाले होते हैं।
9 अव्याहतपौर्वापर्यत्व–भगवान् के वचन परस्पर अविरोधी होते हैं।
10 शिष्टत्व–भगवान् के वचन शिष्टता युक्त होते हैं।
11 असदिग्धत्व–असशय युक्त वचन होते हैं।

12 अपहतान्योत्तरत्व–भगवान् के वचनो मे कोई दोष नहीं निकाल सकता।
13 हृदयगाहिता–भगवान् के वचन श्रोताओ को मनोहर लगते हैं।
14 देशकालाव्यतीत्व–भगवान् के वचन तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार होते हैं।
15 तत्त्वानुरूपत्व–सार्थक और सम्बद्ध पूर्वापर सम्बन्ध युक्त वचन बोलना।
16 अप्रकीर्ण प्रसृतत्व–सारयुक्त वचन बोलना।
17 अन्योन्य प्रगृहीत–परस्पर अपेक्षा रखने वाले पदो और वाक्यों से युक्त होना।
18 अभिजातत्व–वक्ता की शालीनता होना।
19 अतिस्निग्ध मधुरत्व–अतिस्निग्ध मधुर वचन होना।
20 अपरकर्मबोधित्व–मर्मभेदी वचन न होना।
21 अर्थधर्माभ्यासानपेतत्व–अर्थ और धर्म के अनुकूल वचन होना।
22 उदारत्व–तुच्छता रहित एव उदारता युक्त होना।
23 परनिन्दात्मोत्कर्ष विप्रयुक्तत्व–स्व-प्रशसा और पर-निन्दा से रहित होना।
24 उपगतिश्लाघत्व–जिन्हे श्रवण कर श्रोता प्रमुदित होवे।
25 अनपनीत्व–कारक आदि व्याकरण के दोषरहित वचन होना।
26 उत्पादिताच्छिन्न कौतुहलत्व–जिन्हे श्रवण कर श्रोताओ को कौतुहल बना रहता है।
27 अद्भुतत्व–अद्भुत वचन होना।
28 अनतिविलम्बितत्व–धारा-प्रवाह बोलना।
29 विभ्रम-विक्षेप–रोष-भयादि से रहित वचन बोलना।
30 अनेक जाति सश्रयाद्विचित्रत्व–वस्तु के स्वरूप का वर्णन करने वाले वचन होना।
31 आहितविशेषत्व–सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा विशेषतायुक्त वचन होना।
32 साकारत्व–पृथक्-पृथक् वर्ण, पद, वाक्य के आकारयुक्त वचन होना।
33 सत्त्वपरिगृहीतत्व–साहस से परिपूर्ण वचन होना।
34 अपरिखेदित्व–खिन्नता रहित वचन होना।
35 अत्युच्छेदित्व–इच्छित अर्थ की सम्यक् सिद्धि करने वाले वचन होना।[31]

तीर्थंकर भगवान् का जीवन निर्दोष होता हे। वे अठारह दोषरहित होते हैं –

1 मिथ्यात्व–वस्तु के अयथार्थ स्वरूप पर श्रद्धा होना मिथ्यात्व है। भगवान् क्षायिक समकिती होने से मिथ्यात्व दोषरहित होते हैं।
2 अज्ञान–भगवान् केवलज्ञान से युक्त होते हैं। ज्ञानावरणीय कर्म सर्वथा

क्षय होने से वे अज्ञानरहित होते हैं।

3 मद–सर्वगुणसम्पन्न भगवान् मदरहित होते हैं।

4 क्रोध–भगवान् क्रोधरहित होते है।

5 माया–अत्यन्त सरल स्वभावी तीर्थंकर भगवान् मायारहित होते हैं।

6 लोभ–तृष्णारहित सतोष-सागर मे रमण करने वाले तीर्थंकर भगवान् होते हैं।

7 रति–इष्ट वस्तु की प्राप्ति से होने वाली खुशी रति कहलाती है। वीतराग भगवान् राग-द्वेष से रहित होने से वे रति-रहित होते हैं।

8 अरति–अनिष्ट वस्तु के सयोग से होने वाली अप्रीति अरति है। अरिहत राग-द्वेष रहित होने से दु खरहित होते है।

9 निद्रा–अरिहतो को दर्शनावरणीय कर्म नहीं होता, अत उन्हे नीद नहीं आती।

10 शोक–मोह विजेता भगवान् शोकरहित होते है।

11 अलीक–तीर्थंकर भगवान् मिथ्याभाषण से रहित होते हैं।

12. चौर्य–मालिक की आज्ञा बिना किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करते।

13 मत्सरता–तीर्थंकर भगवान् ईर्ष्या भावरहित होते हैं।

14 भय–तीर्थंकर भगवान् अत्यन्त बलशाली होते है।

15 हिसा–दया के सागर तीर्थंकर प्रभु हिसा से रहित होते हैं।

16 प्रेम–तीर्थंकर भगवान् तन, धन, स्वजनादि के प्रेम से रहित होते हैं।

17 क्रीडा–मोह कर्मरहित तीर्थंकर भगवान् गाना, बजाना, रोशनी, मण्डप आदि क्रीडाओ से रहित होते हैं।

18 हास्य–सर्वज्ञ प्रभु अपने केवलज्ञान में सभी वस्तुओं को हथेली पर रखे ऑवले की तरह स्पष्ट जानते, देखते हैं। इसलिए वे हास्यरहित होते हैं।

भगवान् महावीर चार घाति कर्मो का क्षय करने से बारह गुणधारी बन गये। वे बारह गुण इस प्रकार हैं –

1 अणासवे–आश्रव कर्म-द्वार को कहते हैं। तीर्थंकर भगवान् इस आश्रव से रहित होते हैं।

2. अममे–ममत्त्व भावरहित होते है।

3 अकिचणे–अकिचन परिपूर्ण साधुता सहित।

4 छिन्नसोए–शोकरहित।

5 निरुवलेवे–द्रव्य दृष्टि से निर्मल देहधारी तथा भाव दृष्टि से कर्मबध

के हेतुरूप उपलेप से रहित।

6 ववगय पेम राग दोस मोहे–प्रेम, राग, द्वेष एव मोहरहित।

7 निग्गथस्स पवयण देसए–निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेष्टा।

8 सत्थनायको–धर्म-शास्त्र के नायक।

9 अणंतनाणी–अनंत ज्ञान सहित।

10 अणतदसी–अनत दर्शन सहित।

11 अणत चरित्ते–अनत चारित्र सहित।

12 अणत वीरिय सजुत्ते–अनत बलवीर्य सयुक्त।[82]

भगवान् महावीर सदैव अनेक गुणो से समन्वित अर्धमागधी भाषा मे ही उपदेश फरमाते थे, क्योकि प्राणी अपने-अपने रूप मे यह भाषा समझ लेते थे।[83] विभग अद्ध कथा पृष्ठ 387 पर कहा है कि बालको को बचपन मे कोई भाषा न सिखाई जाये तो वे स्वय मागधी भाषा बोलने लगते हैं। ऐसा विद्वानों का अभिमत है।

बौद्ध विद्वान वाग्भट्ट ने भी ऐसा उल्लेख किया है कि हम उसी वाणी को नमस्कार करते हैं जो सबकी अर्धमागधी है, जो सभी भाषाओ को अपना परिणाम दिखाती है और जिसके द्वारा सभी-कुछ जाना और समझा जा सकता है।[84] इससे बौद्ध धर्म मे भी अर्धमागधी को सब भाषाओ का मूल माना है, यह सिद्ध होता है।

जर्मन विद्वान रिचार्ड पिशल ने अर्धमागधी के अनेक रूपो का विश्लेषण किया है।[85] जिनदास महत्तर ने अर्धमागधी का लक्षण बतलाते हुए कहा है कि मगध के आधे भाग मे बोली जाने वाली अथवा अठारह देशी भाषाओ मे नियत भाषा को अर्धमागधी कहा है।[86]

उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला मे गोल्ल, मध्यप्रदेश, कनार्टक, अन्तरवेदी मगध, अन्तखेदी, कीर, ढवक, सिधु, मरु, गुर्जर, लाट, मालवा, ताइय, कौशल, मरहट्ठ और आन्ध्र प्रदेशो की भाषाओ को देशी भाषा[xxxiv] कहा है।[87]

वृहत्कल्प भाष्य मे मगध, मालव, महाराष्ट्र, लाट, कर्णाटक, द्रविड गौड, विदर्भ इन आठ देशो की भाषाओ को देशी भाषा[xxxv] कहा है।[88]

नवागी टीकाकार अभयदेव सूरि ने व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका मे अर्धमागधी का लक्षण निरुपित करते हुए कहा है कि इसमे कुछ लक्षण मागधी के तथा कुछ लक्षण प्राकृत के पाये जाते हैं, इस कारण इसे अर्ध मागधी कहते हैं।[89]

इस प्रकार अर्ध मागधी विशिष्ट भाषा होने से प्रभु महावीर ने अर्ध- मागधी भाषा मे ही अपनी धर्मदेशना प्रवाहित की।

सभी तीर्थकर केवलज्ञान होने के पश्चात् प्रथम देशना मे ही अर्ध-मागधी भाषा में अत्यन्त आह्लादकारी, मर्मस्पर्शी प्रवचन देकर अनेक भव्यात्माओ को सयम पथ पर आरूढ करके, अनेक भव्यात्माओ को श्रावक व्रत ग्रहण करवाकर चतुर्विध सघ की सस्थापना करते हैं। लेकिन भगवान् महावीर के लिए यह सिद्धात लागू नहीं हुआ।

श्वेताम्बर परम्परा मे स्थानाग[90] आदि आगमो मे तथा आवश्यक निर्युक्ति,[91] विशेषावश्यक भाष्य,[92] त्रिशष्टिशलाकापुरुषचारित्र[93] आदि आगमेतर साहित्य मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान् महावीर की प्रथम देशना मे मात्र देव उपस्थित थे। वहॉ कोई भी मनुष्य नहीं था, इसलिए प्रथम देशना को अभाविता परिषद के रूप मे माना है। अभाविता का तात्पर्य इसमे किसी ने कोई व्रत अगीकार नहीं किया।[94]

आचार्य गुणचन्द्र ने अपने ग्रंथ महावीर चरिय मे भगवान् महावीर के प्रथम समवसरण को अभाविता परिषद के रूप मे माना है, फिर भी इस प्रथम परिषद मे मनुष्य उपस्थित थे, ऐसा स्वीकार किया है।[95]

आचाराग टीकाकार शीलाक ने चउवन्नमहापुरुषचरिय मे अभाविता परिषद का कोई उल्लेख तक नहीं किया। उन्होने ऋजुबालिका के तट पर ही प्रथम देशना मे इन्द्रभूति आदि की दीक्षा का उल्लेख किया है।

आचाराग मे भगवान् की प्रथम देशना देवो के समक्ष हुई–यही उल्लेख मिलता है[96] और स्थानाग मे प्रथम देशना खाली जाने से इसे आश्चर्य रूप माना है। अतएव भगवान् महावीर ने चतुर्विध सघ की स्थापना वैशाख शुक्ला एकादशी को की, यही आगमिक मान्यता स्वीकार करने योग्य है।

इस प्रकार वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन भगवान् महावीर तीर्थ के सस्थापक होने से तीर्थकर की सज्ञा से अभिहित किये जाते थे।

तीर्थकर शब्द का प्रयोग जैनो की तरह बौद्धो ने भी किया है। उनके लकावतार सूत्र मे तीर्थंकर शब्द मिलता है।[97] उनके दीघनिकाय तथा सामञ्जफल सूत्र मे 16 तीर्थकरो का उल्लेख मिलता है।[98] वैदिको मे भी तीर्थंकर की जगह अवतार माने है।[99] यद्यपि बौद्धो और वैदिको ने तीर्थंकर या अवतार की कल्पना की है, लेकिन तीर्थंकर शब्द की प्राचीनता जैन इतिहास मे मिलती है।

जेन धर्म मे चौबीस तीर्थकरो का सबसे प्राचीन उल्लेख दृष्टिवाद के मूल प्रथमानुयोग मे था लेकिन वर्तमान मे वह लुप्त हो गया है।[100] अद्य सबसे प्राचीन उल्लेख समवायाग[101], कल्पसूत्र[102], आवश्यक चूर्णि[103], आवश्यक निर्युक्ति[104], आवश्यकवृत्ति[105], चउप्पन्नमहापुरिषचरिय[106], त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र[107] आदि ग्रथो मे मिलता है। अंगसूत्र गणधर सुधर्मा स्वामी प्रणीत हैं। भगवान् महावीर को ई पू 557 मे केवलज्ञान तथा 527 मे निर्वाण हुआ।[108] अत समवायाग का रचनाकाल भी ई पू 557 से 527 तक ही है।[109]

अत स्पष्ट है कि बौद्धो के चौबीस बुद्ध एव वैदिको के चौबीस अवतारो से जैनो के चौबीस तीर्थकरो का उल्लेख प्राचीन है।[xxxvi] यही कारण है कि चौबीस तीर्थकरो की जितनी सुव्यवस्थित सामग्री जैनियो मे मिलती है, वैसी बौद्धो या वैदिक वाड्मय के अवतारो की नहीं मिलती।[110]

साथ ही अपश्चिम तीर्थकर भगवान् महावीर ने स्थान-स्थान पर ऐसा उल्लेख भी किया है कि जैसा भगवान् पार्श्वनाथ ने कहा है, वैसा मै भी कहता हूँ।[111] परन्तु बुद्ध ने यह नहीं कहा कि पूर्वबुद्ध[112] ने ऐसा कहा और मै भी ऐसा कहता हूँ। अपितु गौतम बुद्ध ने सर्वत्र यही कहा कि मैं ऐसा कहता हूँ। इससे भी स्पष्ट है कि बुद्ध के पूर्व बौद्ध धर्म की कोई परम्परा नहीं थी[xxxvii] जबकि भगवान् महावीर के पूर्व तेईस तीर्थकरो की परम्परा थी।

इन तीर्थकर भगवतो की महिमा आगम साहित्य से लेकर आज भी निरन्तर परिलक्षित होती है। चतुर्विंशति स्तव (लोगस्स) मे प्रागइतिहासकारो ने तथा गणधरो[113] ने तथा शक्रस्तव (णमोत्थुणं) मे स्वय प्रथम देवलोक के इन्द्र ने तीर्थकर भगवान् के दिव्य गुणो का वर्णन करते हुए उनकी महिमा का बखान किया है।[114] इसके पश्चात् अनेक स्त्रोतो मे तीर्थंकर भगवंतो की महिमा का सुष्ठु दिग्दर्शन उपलब्ध होता है, जिनका आज भी जन-जन मे प्रचलन है।

तीर्थंकर भगवान् के नाम के साथ नाथ शब्द कब से जुडा, यह भी उल्लेखनीय है। वैसे नाथ, स्वामी या मालिक प्रभु को कहते हैं। उत्तराध्ययन की वृहदवृत्ति मे शान्त्याचार्य ने योग, क्षेम के विधाता को नाथ कहा है।[115] अप्राप्त की प्राप्ति योग और प्राप्त वस्तु का रक्षण क्षेम हे। उत्तराध्ययन के अनाथ अध्ययन मे स्वय एवं दूसरो का सरक्षण करने वाले को नाथ कहा हे।[116] नाथ की ऐसी ही परिभाषा बोद्ध साहित्य मे भी उपलब्ध होती है।

दीघनिकाय मे क्षमा, दया, सरलता आदि सद्‌गुणो को धारण करने वाले को नाथ कहा है।[117] इन सब विश्लेषणो से नाथ शब्द स्वामी, मालिक या प्रभुत्व का सूचनकर्ता हे। सुप्रसिद्ध दिगम्बराचार्य यतिवृषभ ने तिलोयपणत्तिग्रन्थ मे तीर्थकरो के नाम के साथ नाथ शब्द का प्रयोग किया हे यथा 'भरणी रिक्खम्मि से तिणाहो य'।[118] तीर्थकरो के नाम के साथ नाथ शब्द का प्रयोग पचम गणधर सुधर्मा स्वामी ने किया। व्याख्याप्रज्ञप्ति मे लोगनाहेण अर्थात् 'लोक के नाथ' कहकर भगवान् को सम्बोधित किया है। शक्रस्तव मे भी लोगनाहेण शब्द मिलता हे इसी का अनुसरण करते हुए तीर्थकर भगवतो के नाम के साथ नाथ या स्वामी शब्द जुड गया और भगवान् महावीर को भी भगवान् महावीर स्वामी कहकर सम्बोधित किया जाने लगा।

भगवान् महावीर अपने तीर्थंकर नाम कर्म का वेदन (भोग) करने के लिए, सम्पूर्ण जगत् के जीवो की रक्षा के लिए, दया-रूप, अहिंसा-रूप प्रवचन फरमाने लगे।[119] वे अपने भव्य प्रवचन से भव्यात्माओ को जीव हिंसा से निवृत्त बनाने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। उन्हे जहाँ भी लगा कि कोई भव्य आत्मा ससार सागर तैर कर पार करने वाली है, वहाँ वे पाद-विहार करते हुए पधार जाते और अपने पावनतम उपदेश से उन्हे ससार के मोह-कीच से निकालकर सर्वविरति चारित्र (दीक्षा) या देशविरति श्रावक धर्म अगीकार करवाते।

वे अनेक भव्यात्माओ को सयम के पथ पर आरूढ करवाने हेतु, अनेक भव्यात्माओं का उद्धार करने हेतु ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए राजगृह नगर पधार गये।[120]

मगधेश श्रेणिक की पूर्व झलक :–

उस समय राजगृह नगर अत्यन्त समृद्धिशाली नगर था। वहाँ के लोग बडे धनाढ्य थे। धनाढ्य होने के साथ-साथ वहाँ के लोग दयालु प्रकृति के भी थे। वहाँ के सरलमना, भद्रपरिणामी लोग साधुओ को अत्यन्त उदारतापूर्वक भिक्षा बहराते थे। राजा श्रेणिक वहाँ का परमप्रतापी नरेश था।

श्रेणिक राजा के पिता प्रसेनजित अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के धनी थे। वे तो स्वय भरत क्षेत्र के कुशाग्रपुर नगर मे राज्य करते थे। पुण्य-भोगी प्रसेनजित अपने मधुर व्यवहार से दूर-दूर तक ख्यातिप्राप्त था। सुदूर प्रान्तो तक उसका कोई शत्रु नजर ही नहीं आता था। उसका सैन्य-समूह राज्य की शोभा मे चार चॉद लगाने हेतु था। दृढधर्मी[क], प्रियधर्मी[ख] राजा प्रसेनजित भगवान् पार्श्वनाथ का बारह व्रतधारी श्रावक था।

उसने अनेक राजकन्याओ के साथ परिणय सूत्र मे बधकर अनेक पुत्रो का पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। उसकी धारिणी रानी की कुक्षि से ही राजगृह के परम प्रतापी राजा श्रेणिक का जन्म हुआ, जो कि पूर्वभव मे भी राजा ही था। उनका पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार मिलता है।

भरत क्षेत्र मे बसन्तपुर नामक नगर था। उस बसन्तपुर नगर मे राजा जितशत्रु राज्य करता था। उसकी अमरसुन्दरी नामक पटरानी थी, जिसने समय आने पर एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम सुमंगल रखा गया। वह सुमगल अत्यन्त रूपवान एव पराक्रमशाली राजकुमार था। उसके अग-प्रत्यग से सौन्दर्य फूट-फूटकर वह रहा था। राजसी परिवार मे अत्यन्त प्यार और दुलार से वह

(क) दृढधर्मी–धर्म मे दृढ, अगीकृत व्रतो का यथावत पालन करने वाला
(ख) प्रियधर्मी–धर्म में श्रद्धा रखने वाला, धर्म प्रेमी

शनै-शनै निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा था। अपनी मधुर किलकारियो से राजभवन के भव्य प्रागणो को अनुगुजित कर रहा था। अपनी बालसुलभ चेष्टाओ से सभी के आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बना हुआ था।

जिस समय जितशत्रु के यहॉ सुमगल का जन्म हुआ उसी समय वहॉ के मत्री के यहाँ पर भी एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ, जिसका नाम सेनक रखा गया। वह सेनक भी शनै-शनै वृद्धि प्राप्त करने लगा और एक दिन उसने राजकुमार सुमगल से अपनी मित्रता स्थापित करली।

राजकुमार सुमगल ने अपने पूर्वभव मे शुभ नाम कर्म का बधन किया जिसके फलस्वरूप उसे सुडौल एव सुन्दर आकृतिवाला, आकर्षक अगोपाग वाला गात्र मिला, लेकिन सेनक ने पूर्वभव मे अशुभ नाम कर्म का उपार्जन किया जिसके परिणामस्वरूप उसे अशुभ आकार-प्रकार वाला शरीर मिला। उसकी इस शरीराकृति को देखकर हमउम्र के लोग प्राय हॅसी उडाया करते थे। उसके मित्र तो उपहास करते ही थे, परन्तु उसका अनन्य मित्र सुमगल तो जब देखो तब उसका उपहास करता ही रहता था। निरन्तर उपहास पात्र बनने से सेनक के मन मे ससार से विरक्ति के भाव पैदा हो गये और चितन किया कि इस प्रकार हर समय हॅसी उडने से मेरा मन खिन्न बना रहता है, फिर इस ससार मे रहने से लाभ क्या? अच्छा है, मैं तपस्वी बनकर अपने अशुभ कर्मो को तोडने का प्रयास करूॅ। इस प्रकार चितन कर एक दिन वह वहाँ से निकल चला। शहर से वन की ओर प्रयाण कर दिया। जब वह जगल से गुजर रहा था, तो उसने वन मे एक कुलपति तापस को देखा और उसके पास जाकर निवेदन किया—मैं ससार से उद्विग्न बनकर आपके चरणो मे आया हूॅ। आप मुझे तापस दीक्षा देकर अनुगृहीत करे। तब कुलपति तापस ने उसके भावो को जानकर तापस दीक्षा दी। सेनक ने तापस दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् उष्ट्रिका व्रत ग्रहण किया और उत्कृष्ट तपश्चर्या करता हुआ विचरण करने लगा।

विचरण करते-करते एक बार वह बसन्तपुर नगर मे आया, जहॉ उसका मित्र सुमगल राजगद्दी पर आसीन हो चुका था। वह तपस्वी वहॉ बसन्तपुर के बाहर आश्रम मे तपश्चर्या करते हुए रहने लगा। पूरे नगर मे उस तपस्वी की उत्कृष्ट तपश्चर्या की ख्याति फैल गई और अनेक लोग नित्य-प्रति उसके दर्शन हेतु आने लगे।

एक बार लोगो ने उस तपस्वी से पूछा कि आप कहॉ के निवासी हो? आपको वैराग्य कैसे आया? तब उस तपस्वी ने कहा कि मै आपके नगर मे मत्री

का पुत्र था। मेरा अनन्य मित्र राजकुमार सुमगल मेरा रूप देखकर बहुत उपहास करता था। उसके उपहास को घोर अपमान समझकर मेरा मन बडा खिन्न हुआ और ससार से उदासीन रहने लगा। तभी मेरे भीतर मे वैराग्य के अकुर प्रस्फुटित हुए और मै विरक्त बनकर तापस धर्म मे दीक्षित बन गया। लोगो ने इस बात को श्रवण किया और बात एक कान से दूसरे कान तक हवा की तरह फैलने लगी।

शनै -शनै बात राजा सुमगल के कानो तक भी पहुँच गई। तब राजा सुमगल ने विचार किया कि मेरा मित्र तापस जीवन स्वीकार कर उत्कृष्ट तपश्चर्या कर रहा है। मास-मास क्षपण की तपस्या कर रहा है। मुझे भी उसके दर्शन करना चाहिए और पारणे का निमत्रण देना चाहिए।

ऐसा विचार कर वह सुमगल, सेनक तपस्वी के पास जाता है। उन्हे विधिवत् प्रणाम करता है और निवेदन करता है कि इस बार मासक्षपण का पारणा मेरे यहाँ करना है। राजा सुमगल के स्नेहाभिषिक्त आग्रहभरे निमत्रण को तपस्वी ने स्वीकार कर लिया। राजा सुमगल अत्यन्त हर्षित होता हुआ राजभवन को लौट गया।

सेनक अपनी तपश्चर्या मे लीन था। वह मास-मास क्षपण की तपस्या करता और एक दिन उसी के यहॉ पारणा करता जिसका निमत्रण वह पहले ही स्वीकार कर लेता। यदि सयोग से वहॉ पारणा नहीं होता तो पुन बिना पारणा किये मासक्षपण धारण कर लेता, लेकिन दूसरे घर पारणे के लिए नहीं जाता था। अभी भी वह तपश्चर्या मे लीन था। पारणे के लिए उसको इस बार राजभवन मे जाना था। राजा सुमगल भी प्रतिदिन गिन-गिन कर उसके पारणे की बाट जो रहा था। समय अपनी गति से बढ रहा था। तपस्वी के मासक्षपण पूर्ण हुआ और वह पारणे के लिए राजभवन की ओर प्रस्थित हुआ।

इधर तपस्वी पारणे के लिए राजभवन की ओर जा रहा है और उधर राजा सुमगल का स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया। राजा का स्वास्थ्य अस्वस्थ होने से द्वारपाल ने राजभवन के द्वार बद करवा दिये। उसे पता नहीं था कि आज कोई तपस्वी पारणा करने के लिए आयेगे। जैसे ही सेनक तपस्वी राजभवन के समीप पहुँचा, देखा राजभवन के द्वार बद है और कोई भी वहॉ मौजूद नहीं था जो तपस्वी को पारणे के लिए उसे भीतर ले जा सके।

सेनक तपस्वी उस स्थिति को देखकर पुन लौट गया और पारणा किये बिना पुन मासक्षपण धारण कर लिया और जरा भी सुमगल पर क्रोध नहीं करता हुआ निष्कपाय भाव से तपश्चर्या मे लीन हो गया।

इधर राजा सुमगल दूसरे दिन स्वस्थता को प्राप्त हुआ और उसके स्मृति पटल पर आया कि मैंने तपस्वी को मासक्षपण के पारणे का निमत्रण दिया था, परन्तु कैसा सयोग कल उनके पारणा था और कल ही मेरा स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया था, फलस्वरूप तपस्वी आये होगे जरूर आये होगे . किसी ने ध्यान नही दिया. जरूर वे भूखे ही वापिस लौट गये होगे उनका तो पारणा भी नहीं हुआ होगा। राजा सुमगल ने द्वारपाल को बुलाया और पूछा–क्या कोई तपस्वी आया था?

द्वारपाल–हॉ, हुजूर।

राजा–महल मे नहीं आया?

द्वारपाल–राजन्! आपका स्वास्थ्य खराब होने से राजभवन के द्वार बद थे, उन्हे देखकर वह वापिस लौट गया।

राजा–बहुत बुरा हुआ। उनके मासक्षपण का पारणा था। मैंने निमत्रण दिया था, पारणा करने का। वह तपस्वी भूखा ही रह गया हाय मै कितना हतभागी । कहकर राजा शोकमग्न हो गया।

कुछ समय पश्चात् राजा ने चितन किया–मुझे अब उन तपस्वी के चरणो मे जाकर क्षमायाचना करनी चाहिए। ऐसा विचार कर राजा सुमगल तपस्वी के पास गया। अत्यन्त ग्लानि का अनुभव करते हुए दबे शब्दो से उसे प्रणाम किया और सकरुण वाणी से निवेदन किया–तपस्विन्! मैंने अत्यन्त शुद्ध भावो से आपको निमत्रण दिया था, लेकिन लेकिन मेरे घोर अशुभ कर्मो का उदय आया कि जिस दिन आपके पारणा था उसी दिन मेरा स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया। द्वारपाल ने द्वार बद कर दिये और मैं आपको पारणा नहीं । मेरे कारण आपके आहार-पानी मे जबरदस्त अन्तराय लगी है। मै आपसे हार्दिक क्षमायाचना करता हूँ और निवेदन कर रहा हूँ प्रार्थना कर रहा हूँ कि इस बार पारणा मेरे राजभवन के प्रागण मे करने की कृपा करावे।

राजा के भावभरे आमत्रण को तपस्वी ठुकरा नहीं सका। उसने राजा से कहा–आपकी भावना के मद्देनजर मुझे आपका हार्दिक निमत्रण स्वीकार्य है। तपस्वी की वाणी को श्रवण कर राजा बडा हर्षित-प्रमुदित होता है और अत्यन्त प्रसन्नता के साथ तपस्वी का यथायोग्य सम्मान और अभिवादन कर राजमहलो मे लौट जाता हे।

राजा सुमगल बेताबी से तपस्वी का इतजार कर रहा है। एक-एक दिन

अगुलियो पर गिन रहा है और मन मे अरमान सजा रहा है, तपस्वी आयेगा, मैं बहुत दूर तक पॉव-पॉव चल कर उसकी अगवानी हेतु जाऊँगा। भक्तिभाव से राजप्रागण मे लाऊँगा और स्वय बैठकर उसका पारणा करवाऊँगा उसके लिए विशिष्ट भोजन बनवाऊँगा। इस प्रकार कल्पनालोक मे राजा सुमगल विहरण कर रहा था। निरन्तर तपस्वी के आगमन मे पलक-पॉवडे बिछाये था, लेकिन कर्म की गति बडी विचित्र है। निरन्तर इतजार करते-करते जिस दिन तपस्वी के पारणे का दिन आया, नृप के ख्वाबो का ताजमहल चरमरा कर ढह गया और नृपति अस्वस्थ बन गया। द्वारपाल ने द्वार बद करवा दिये। तपस्वी पारणे के लिए निकला, पॉव-पॉव चला। दो मास से निरन्तर तपश्चर्या मे लीन था। शरीर क्लान्त[क], मन शात और शनै -शनै मजिल की ओर चलने लगा। लेकिन जैसे ही राजभवन तक पहुँचा तो देखा, द्वार बद है। कुछ समय इधर-उधर देखा लेकिन देवयोग से कोई दिखाई न दिया जो तपस्वी को पारणे के लिए राजभवन के प्रागण तक ले जा सके। शात-प्रशात अनुद्विग्न[ख] मन से पुन तपस्वी अपने आश्रम मे लौट आया और मासक्षपण का प्रत्याख्यान कर लिया। तपस्वी अपनी तपश्चर्या मे तल्लीन है। भूख-प्यास को प्रशात भाव से सहन करते हुए अकाम निर्जरा करते हुए अपनी साधना मे सलग्न है।

दूसरे दिन भूपति स्वस्थ होता है। जैसे ही स्वस्थ बनता है, उसी समय उसे तपस्वी के पारणे की स्मृति आती है। तुरन्त द्वारपाल को बुलाता है। महाराज द्वारा आमत्रित किये जाने पर द्वारपाल आता है और कहता है—महाराज की जय हो ! आपका क्या आदेश है?

राजा—कल तपस्वी आया था?

द्वारपाल—महाराज ! आपका स्वास्थ्य अस्वस्थ था, इसलिये मैंने द्वार बद करवा दिये। आये भी होगे, लेकिन पुन लौट गये होगे।

राजा—ओह ! बहुत बुरा हुआ। मैं स्वय तपस्वी के पास जाता हूँ।

राजा अत्यन्त लज्जित होकर स्वय तपस्वी के पास पहुँचता है। भारी कदमो से चलकर पश्चात्ताप की भयकर आग मे जलता हुआ अत्यन्त विनम्रता से तपस्वी को प्रणाम करता हे और दबे शब्दो से बोलता है— महात्मन् ! आप जैसे धैर्यशील तपस्वी आत्मा की मैंने अत्यधिक अविनय-आशातना की है। मेरे कारण दो माह से आप निराहार हैं ओर तीसरा माह भी आहार रहित निकालना पडेगा।

(क) क्लान्त-थका हुआ (ख) अनुद्विग्न-संताप रहित

धिक्कार है मुझे धिक्कार है . यद्यपि मेरी उत्कृष्ट भावना थी कि आप मेरे यहाँ पारणा करे, लेकिन अन्तराय घोर अन्तराय। मै आपको एक पारणा भी न करा सका। कैसा हतभागी कि मेरे कारण तीन माह निराहार रहना पडेगा। ओह अब क्या करूँ क्या करूँ ।

राजा सुमगल का हार्दिक पश्चात्ताप देखकर सेनक तपस्वी का हृदय मोम की तरह पिघलने लगा। उसके मन मे करुणा का सागर लहराने लगा। राजा की भावना ने उसे सोचने को मजबूर बना दिया और सरल हृदय से उसने धरणीधर[क] से कहा—राजन् ! अब भी समय है। इस बार पारणा आपके यहाँ कर सकता हूँ। राजा बडा एहसान मानता है और कहता है—आपका अनुग्रह जीवनपर्यन्त नहीं भूल पाऊँगा। तपस्वी की सरलता को दिल मे स्थान देकर नृपति वहाँ से चल देते है।

राजभवन मे आकर प्रतिदिन इंतजार करता है कि वह दिन धन्य होगा जिस दिन मैं तपस्वी को अपने महलो मे पारणा करवाऊँगा। अपने हाथो से परोसूँगा, उनका खूब स्वागत-सत्कार करूँगा। ऐसा चितन करते-करते उसे स्मृति मे आता है कि पूर्व मे जब भी तपस्वी आया, द्वार बद मिला। इस बार द्वारपाल को सचेत करता हूँ। राजा द्वारपाल को सचेत करता है कि अमुक दिन तपस्वी के पारणा है। उस दिन तुम किसी भी परिस्थिति मे द्वार बद नहीं करोगे। द्वारपाल ने कहा—महाराज की जैसी आज्ञा। अब राजा सुमंगल अत्यन्त उत्सुकता से तपस्वी के पारणे का इतजार कर रहे हैं, परन्तु विधि का विधान अकथनीय है। जैसे ही पारणे का दिन आता है, महाराज अस्वस्थ बन जाते हैं।

पूरे राजभवन मे महाराज के अस्वस्थ होने से खलबली मच जाती है। द्वारपाल सोचता है कि जब भी तपस्वी के पारणे का दिन आता है तब राजा अस्वस्थ बन जाता है। वह यह बात राजकर्मचारियो तक पहुँचाता है। राजकर्मचारी अकारण तपस्वी पर आवेशित बन जाते हैं। जैसे ही तपस्वी आता है, सब आवेशजनित तो थे ही, क्रोधान्ध बन कर तपस्वी को सर्प की तरह घसीटते हुए नगर से बाहर फेक देते हैं। तब अकारण तपस्वी के साथ इस प्रकार व्यवहार होने से वह बडा क्षुब्ध हो जाता है और क्रोध मे आकर निदान[ख] करता है कि यदि मेरी तपस्या का फल हो तो आगामी भव मे मैं इस राजा को मारने वाला बनूँ। मैंने तो राजा का इतना सम्मान किया और राजकर्मचारियो ने इतना अपमान!

(क) धरणीधर-राजा (ख) निदान-तप के फल की पहले से याचना करना, एक शल्य

बस, आगामी भव मे इस राजा को मार डालूँगा। ऐसा निदान कर वह तपस्वी मृत्यु को प्राप्त कर अल्पऋद्धि वाला व्यन्तर देव बनता है।

इधर राजा भी स्वस्थ होने पर खूब पश्चात्ताप करता है। कुछ समय पश्चात् राज्य का परित्याग कर वह तापस बनता है और वह भी मरकर व्यन्तर देव बनता है। राजा सुमगल देवायुष्क पूर्ण कर राजा प्रसेनजित की महारानी धारिणी की कुक्षि मे जन्म धारण करता है। समय आने पर महारानी धारिणी[121] एक पुत्र रत्न को जन्म देती है, जिसका नाम श्रेणिक रखा जाता है। राजकुमार श्रेणिक पॉच धायो द्वारा पालन किया हुआ क्रमश तरुण अवस्था को प्राप्त होता है।[122]

गूंज उठी किलकारियाँ

इसी समय, उसी नगर मे नाग नामक रथिक रहता था। वह प्रसेनजित के चरणो मे सदैव श्रद्धावनत था। स्वभाव से उदार एव पर-नारी के लिए सहोदर के समान उस नाग रथिक की वृत्ति थी। उसके सुलसा नामक भार्या थी। उसको विवाह किये सुदीर्घ काल व्यतीत हो गया, लेकिन एक भी सतान पैदा नहीं हुई। शनै -शनै पति-पत्नी चिताग्रस्त रहने लगे। नाग रथिक[क] कई बार विचार करता कि जिस ऑगन मे बच्चो की किलकारियॉ सुनाई न पडे, वह सूना घर-ऑगन किस काम का? मैंने व्यर्थ ही विवाह किया। इससे तो अविवाहित रहता तो भी अच्छा था। ऐसा चिंतन कर वह मोह मे झूलने लगा। नयनो से अश्रु छलकने लगे और मोतियो की माला की तरह कपोलों[ख] पर ढुलकने लगे। तभी सुलसा वहॉ पर आई और उसने देखा कि पतिदेव आर्तध्यान[ग] कर रहे हैं। उन्हे इस प्रकार रुदन करते हुए देखकर पूछा—प्रिय ! क्या बात है? मुझसे क्या अपराध हो गया? या किस बात की कमी आपको महसूस हो रही है? किस दुश्चिन्ता से आपका मन व्याकुल बन रहा है?

(तब सुलसा के मधुर वचनो को श्रवण कर) नाग ने कहा—प्रिये ! मुझे ओर किसी बात का दु ख नहीं है। एकमात्र सतान के अभाव मे मुझे जीवन भारभूत लग रहा है।

सुलसा (अत्यन्त उदारता से)—प्रियतम ! इतनी-सी बात से आप क्यो दु खी बन रहे है? इसके लिए तो आप दूसरा विवाह कर सकते हैं।

नाग—प्रिये ! मैंने जब तुमसे विवाह किया था, तब मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारे अतिरिक्त सभी स्त्रियो को मॉ एव बहिन तुल्य मानूँगा। आज मैं केवल

(क) रथिक–रथ पर मवारी करने वाला, रथ का स्वामी (ख) कपोल–गाल
(ग) आर्तध्यान–चिंता, इष्ट वियोग, अनिष्ट के संयोग से होने वाला ध्यान।

अपनी छोटी-सी कामनापूर्ति के लिए शील की मर्यादा का खण्डन नहीं करूँगा। शीलधर्म की अत्यधिक महत्ता है। शीलधर्म को खोने पर जीवन के समस्त सद्‌गुण चले जाते हैं इसलिए ऐसा करना तो दूर रहा पर मैं सुनना भी नहीं चाहता। मैं तो एकमात्र यही कामना करता हूँ कि तुम कोई ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे तुम पुत्रवती बन जाओ और तुम्हारे से उत्पन्न पुत्र का पालन-पोषण कर मै अपने अरमानो को पूर्ण कर सकूँ।

सुलसा–स्वामिन् ! मैं अन्य किसी देव की आराधना करने वाली नहीं हूँ। मै तो मात्र अरिहतोपासिका हूँ। केवल जिन-शासन के दो देव–अरिहत और सिद्ध की भक्ति करने वाली हूँ क्योकि उन्हीं की आराधना ही मनोवाछित फलदायी होती है।

नाग गाथापति[क]–चाहे किसी की भी आराधना करो, मुझे तो सतान चाहिए, केवल सतान।

सुलसा–ठीक है। ऐसा ही उपाय करूँगी। यो कह कर सुलसा आयम्बिल आदि तपश्चर्या करती हुई अपनी आत्मा को भावित करती हुई आराधना करने लगी।

इधर सुलसा की तपश्चर्या का प्रभाव प्रथम देवलोक के इन्द्र शक्रेन्द्र तक भी पडा और उन्होने एक बार देवो के समक्ष सुलसा की प्रशसा करते हुए कहा कि भरतक्षेत्र मे सुलसा श्राविका अत्यन्त दृढधर्मी, प्रियधर्मी है। उसको केवली-प्ररूपित धर्म से कोई देव, दानव या मानव भी डिगा नहीं सकते।

इन्द्र के मुखारविन्द से सुलसा की प्रशसा श्रवण कर एक देव अत्यन्त विस्मित हुआ और सुलसा की परीक्षा लेने के लिए वह भूमण्डल पर अवतरित हुआ। सुलसा उस समय भगवत्स्मरण कर रही थी। उस देव ने मुनि का रूप बनाया और निस्सही-निस्सही उच्चारण किया।

सुलसा ने जैसे ही निस्सही श्रवण किया, वह झट से उठी और देखा, एक साधु सामने खडे हैं। मुनिराज को देखकर वह अत्यन्त हर्षित हुई। उसने मुनि को भाव-सहित वदन किया और पूछा–आपका आगमन किस हेतु हुआ हे? तव उस मुनि रूपधारी देव ने कहा–श्राविके ! मुझे लक्षपाक तेल की आवश्यकता हे और किसी वैद्य ने कहा, वह तुम्हारे घर मिल सकता है। मैं एक रोगी साधु के लिए वह तेल लेने आया हूँ।

सुलसा ने कहा–ओह ! आज मेरा परम सौभाग्य है कि मुनि के उपयोग मे

(क) गाथापति–सद्‌गृहस्थ

आने से मेरा तेल बनाना सफल हो जायेगा। ऐसा कहती हुई वह अत्यन्त हर्ष भाव से तेल का घडा लेने गई। उसने घडा उठाया और मुनि को बहराने[क] के लिए ला रही थी। तब मुनि रूपधारी देव ने अपनी शक्ति से वह घडा उसके हाथ से छुडवा दिया। घडा छूटते ही गिर पडा और फूटकर सारा तेल जमीन पर बिखर गया। तब वह दूसरा घडा लाई। वह भी देव ने छुडवा दिया, वह भी फूटा और पूरा तेल जमीन पर बिखर गया, परन्तु सुलसा को किञ्चित मात्र भी खेद नहीं हुआ। अब वह तीसरा घडा लेने गई तब देवता ने उसे भी छुडवा दिया और तेल जमीन पर बिखर गया। तब सुलसा ने सोचा–ओह ! मै कितनी अल्पपुण्या हूँ। मेरे द्वार पर मुनि पधारे और मैं तेल न बहरा सकी तेल न बहरा सकी वह अत्यन्त ग्लान[ख] भाव का अनुभव करने लगी। सुलसा की इस भावना को जानकर देवता ने अपना रूप प्रकट कर दिया और कहा–अरे ! मै तो तुम्हारी परीक्षा लेने आया था, क्योकि देवताओ मे शक्रेन्द्र ने तुम्हारी दृढ धार्मिकता की प्रशसा की थी। उस समय मुझे विश्वास नहीं हुआ था, लेकिन आज मैंने परीक्षा करके देख लिया कि तुम वास्तव मे दृढधर्मी व प्रियधर्मी श्राविका हो। मैं तुमसे अतीव प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कोई वरदान माँगो। तब सुलसा ने कहा–मुझे और कोई वरदान नहीं चाहिए, लेकिन मेरे पति को सतान प्राप्ति की इच्छा है। तब देव ने उसे दिव्य बत्तीस गुटिकाएँ दी और कहा–ये जितनी गुटिकाएँ है, उतने ही तुम्हारे पुत्र होगे और तुम इनको खा लेना जिससे तुम पुत्रवती बन जाओगी। तुझे जब भी कोई आवश्यकता हो, तब तुम स्मरण कर लेना, मैं उपस्थित हो जाऊँगा। तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगा। ऐसा कहकर देव अतर्धान हो गया।

देव के जाने के पश्चात् सुलसा ने विचार किया कि बत्तीस गुटिका यदि बार-बार खाऊँगी तो बत्तीस बालको का पालन-पोषण करना मेरे लिए दुरूह हे, अतएव ऐसा करती हूँ कि बत्तीस गुटिकाएँ[ग] एक साथ खा लेती हूँ ताकि बत्तीस लक्षण वाला एक ही कुमार उत्पन्न हो जायेगा। अपनी मति से ऐसा विचार करके उसने बत्तीस गुटिकाएँ एक साथ ग्रहण कर लीं। भवितव्यता अति बलवान होती है। एक साथ बत्तीस गुटिकाएँ खाने से उसके उदर मे बत्तीस पुत्रो का एक साथ जन्म हुआ। इतने बालक एक साथ गर्भ मे पलने से उसे अतिपीडा का अनुभव होने लगा। पीडा असहनीय बन गई तब उसने देव का स्मरण किया। देव उपस्थित हुआ। सुलसा ने देव से कहा–मुझे बत्तीस गुटिकाएँ खाने

(क) बहराना-देना (ख) ग्लान–खेद (ग) गुटिका-गोली

से असह्य पीडा हो रही है। देव ने पूछा–तुमने बत्तीस गुटिकाएँ एक साथ क्यो खाई? खैर ! भवितव्यता बलवान है, अब तो एक साथ बत्तीस पुत्रो का जन्म होगा। असहनीय प्रसव पीडा होगी। एक कार्य करता हूँ कि मै तुम्हारी गर्भजन्य पीडा को हरण किए लेता हूँ, लेकिन तुम्हे एक साथ बत्तीस पुत्रो को तो जन्म देना ही होगा। ऐसा कहकर देव ने पीडा का सहरण कर लिया और देव अतर्धान हो गया। सुलसा सुखपूर्वक गर्भ का वहन करने लगी और समय आने पर उसने बत्तीस पुत्रो को एक साथ जन्म दिया। बत्तीस कुमार घर मे धाय माँ के द्वारा पालन-पोषण किए जाते हुए एक साथ बडे होने लगे।[123] उनकी उम्र राजा श्रेणिक के बराबर थी और समय आने पर वे सभी अपनी योग्यता से श्रेणिक के अगरक्षक बन गए।

प्रज्ञा परीक्षण : नन्दा परिणय :

इधर राजकुमार श्रेणिक भी अपने गुणो की शोभा से निरन्तर सभी का मन मोहने लगे। एक समय राजा प्रसेनजित ने श्रेणिक की योग्यता के मद्देनजर विचार किया कि अब मुझे परीक्षा करनी चाहिए कि मेरे किस पुत्र मे राज्य सँभालने की कितनी योग्यता है। तब एक दिन उसने सब पुत्रो को एक साथ बिठाकर खीर का थाल परोस कर उनके सामने रखा। जैसे ही कुमार भोजन करने लगे, राजा प्रसेनजित ने शिकारी कुत्ते छोड दिए। उनको देखकर अन्य सभी राजकुमार उठकर चल दिए, परन्तु बुद्धिनिधान श्रेणिककुमार एकाकी ही बैठा रहा। उसने अपनी पैनी प्रज्ञा से हल निकाल लिया। दूसरी थाली मे थोडी-थोडी खीर वह उन कुत्तो को डालता रहा। जब वे कुत्ते उस खीर को चाटते तो श्रेणिक अपनी थाली मे खीर खाने लगता। उसे देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने चितन किया कि यह श्रेणिककुमार ही राज्य का भार वहन करने के योग्य है।

समय अपनी गति से चलता रहा। एक दिन राजा प्रसेनजित के मन मे पुन राजकुमारो की परीक्षा लेने का विचार प्रादुर्भूत[क] हुआ। तव राजा ने सव कुमारो को एकत्रित करके मोदक के भरे हुए बद करडक और पानी के भरे हुए घडे दिए और राजकुमारो से कहा–इन करडक व घडो को खोले विना तुम्हे पानी पीना है व लड्डू खाना है। उस समय श्रेणिक के अतिरिक्त कोई भी राजकुमार उनको खोले विना लड्डू खाने या पानी पीने मे समर्थ नहीं वना। तव

(क) प्रादुर्भूत-पैदा

श्रेणिक ने करडक को इतना हिलाया कि लड्डू चूर-चूर हो गए। तत्पश्चात् सलियो से उस घडे मे छिद्र कर दिए। लड्डू का चूरा निकलने लगा। उसे श्रेणिक ने खाया और पानी के घडे मे छेद करके बूद-बूद करके निकलने वाले जल को एकत्रित करके पीया। श्रेणिक की कुशाग्र बुद्धि को देखकर उस समय राजा प्रसेनजित ने उसे ही राज्य सत्ता सम्भलाने का निश्चय किया।

इसी बीच एक बार कुशाग्र नगर मे लगातार अग्नि का उपद्रव होने लगा। घर-घर मे आग लगने लगी। तब राजा प्रसेनजित ने अवसर को पहिचानकर घोषणा करवाई कि इस नगर मे अब जिसके भी घर मे अग्नि लगेगी, उस गृहस्वामी आदि को रोगी ऊँट की तरह घर से बाहर निकलना पडेगा। सभी लोग अतिसतर्कता से रहने लगे, लेकिन एक दिन रसोइये के प्रमाद से नृपति के घर मे अग्नि लग गई। वह अग्नि निरन्तर बढने लगी। तब राजा ने अपने राजकुमारो को आज्ञा दी कि मेरे इस राजभवन से जो वस्तु तुम ले जाना चाहो ले जाओ, क्योकि यह राजभवन तो मेरी घोषणानुसार मुझे छोडना ही पडेगा। तब सब कुमारो ने अपनी रुचि अनुसार हाथी, घोडे, रत्नादि ग्रहण कर लिए। लेकिन श्रेणिककुमार ने मात्र एक भभावाद्य को ग्रहण किया।

राजा प्रसेनजित ने श्रेणिक से पूछा—श्रेणिक, तुमने केवल भभावाद्य को क्यो ग्रहण किया?

श्रेणिक ने कहा—पिताश्री ! भभावाद्य राजाओ का जय चिह्न है। यह भूपतियो की दिग्विजय के लिए श्रेष्ठ मगल है। अतएव इस वाद्य की रक्षा करनी चाहिए।

श्रेणिक की बुद्धिमत्ता को श्रवण कर राजा ने प्रसन्न होकर उसका नाम भभासार रख दिया। अब राजा प्रसेनजित ने अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहते हुए राजभवन मे आग लगने पर कुशाग्रपुर नगर का परित्याग कर दिया और वहाँ से एक कोस दूर छावनी बनाकर रहने लगे। जब नृपति राजभवन त्याग कर जाने लगे तब लोगो ने पूछा—राजन् ! आप कहाँ जा रहे हो? राजा ने बडी विचक्षण प्रज्ञा से उत्तर दिया कि मैं राजगृह अर्थात् राजा के घर जा रहा हूँ। तब उसी छावनी के स्थान पर समय आने पर राजा ने राजगृह नगर बसाया और वहाँ पर रमणीय महल, किला आदि बनवाये। वहीं पर सुखपूर्वक रहने लगा। राजा प्रसेनजित ने एक दिन विचार किया कि अब राज्य का भार किसी सुयोग्य राजकुमार के कधो पर डालना चाहिए। तब उसने सभी कुमारो की योग्यता पर दृष्टिपात किया, लेकिन श्रेणिक के अतिरिक्त उन्हे राज्य सत्ता सँभालने मे कोई योग्य नहीं लगा। इसी बात को दृष्टि मे रखते हुए राजा ने श्रेणिक की योग्यता को गुप्त रखना ठीक समझा। क्योकि अन्य

राजकुमार श्रेणिक की योग्यता को नहीं जानते थे। इसी गुत्थी को सुलझाने के लिए राजा ने श्रेणिक के अतिरिक्त सभी को पृथक्-पृथक् राज्य दे दिया और मन मे विचार किया कि श्रेणिक को राजगृह नगरी[xxxviii] दे दूँगा। सब कुमार अपने-अपने राज्य का राज करने लगे, लेकिन श्रेणिक को कुछ नही मिलने पर उसने अपने पौरुष का घोर अपमान समझा। इस अपमान की गरज से वह राजगृह से निकलकर घूमता-घूमता वेणातट नगरी मे आया।[124] सोचा, इधर-उधर घूमने से तो कही काम की तलाश करनी चाहिए। इसी हेतु वह बाजार मे गया। वहाँ भद्र नामक सेठ की दुकान पर पहुँच गया। उस दिन वेणातट नगर मे एक विशाल महोत्सव का आयोजन था और बहुत-से ग्राहक दुकान पर अनेक वस्तुएँ लेने के लिए कतारबद्ध खडे थे।

ग्राहको की अत्यधिक भीड से परेशान सेठ को खिन्नता पैदा हो गई। श्रेणिक ने श्रेष्ठि की खिन्नता को देखा और अवसर का लाभ उठाने के लिए वह सेठ का हाथ बँटाने लगा। सेठ ने कुछ राहत महसूस की और उस दिन श्रेणिक की पुण्यवानी से दिन-भर प्रचुर द्रव्य उपार्जन किया। जब दुकान बद करने का समय आया तो भद्र सेठ ने श्रेणिक से पूछा कि तुम किस पुण्यवान गृहस्थ के अतिथि बनकर आये हो? श्रेणिक कुमार ने कहा—मैं आपका अतिथि बनकर आया हूँ। तब भद्र सेठ ने चितन किया कि आज यामा मे एक स्वप्न देखा था कि मेरी इकलौती पुत्री नदा को योग्य वर मिल गया है। लगता है, वह आज साक्षात् आ गया है। ऐसा चितन कर श्रेष्ठि ने कहा—मै तुम्हारे जैसे पुण्य पुरुष का सान्निध्य प्राप्त करके धन्य हो गया हूँ। चलो घर की ओर चलते हैं। यो कहकर श्रेष्ठि श्रेणिक को साथ लेकर घर की दिशा मे प्रयाण करता है।

श्रेष्ठि के घर पहुँचने पर श्रेणिक का खूब सत्कार हुआ। उसे आदर सहित स्नानादि करवाया, उत्तम वस्त्र पहनाए और पूर्ण सम्मान के साथ उसे भोजन करवाया गया। उत्तम शयन कक्ष की व्यवस्था करवाई गई और आदर सहित वह श्रेणिक श्रेष्ठि के घर पर रहने लगा। समय व्यतीत होने पर एक दिन श्रेष्ठि ने श्रेणिक से कहा—तुम सुलक्षण, पुण्यवान पुरुष हो। मेरी हार्दिक तमन्ना हे कि में अपनी पुत्री का हाथ तुम्हे सौंप दूँ।

श्रेणिक ने कहा—आपने अभी तक मेरे कुल को जाना नही। अनजान कुल वाले को पुत्री कैसे दे रहे हो?

श्रेष्ठि ने कहा—भद्र पुरुष ! तुम्हारे व्यवहार से ही तुम्हारे कुल का परिचय मिल गया है। तुम्हारे व्यवहार से में अत्यन्त प्रभावित हूँ। मंने दृढ निश्चय कर लिया हे कि म अपनी पुत्री तुम्हे ही दूँगा।

श्रेणिक मौन रहे। मौन को स्वीकृति मानकर श्रेष्ठि ने विवाह का मुहूर्त निकलवाया और बहुत धूमधाम से अपनी पुत्री का विवाह श्रेणिक के साथ सम्पन्न किया।

श्रेणिक का अभिषेक :

श्रेणिक अपनी नवोढा[क] पत्नी नदा के साथ भोगो मे अनुरक्त रहने लगा। श्रेणिक वेणातट मे, ससुराल मे आनन्द से समययापन कर रहा है और इधर राजा प्रसेनजित को रोग ने घेर लिया। उसे अब लगा कि राज्य तो मुझे श्रेणिक को ही देना है, तब उसने श्रेणिक को खोजने के लिए अनेक सेवको को चहुँ दिशाओ मे भेजा। सेवक घूमते-घूमते वेणातट नगरी पहुँच गए और आखिरकार उन्होने श्रेणिक को खोज लिया। श्रेणिक ने सेवको को देखते ही पूछा—तुम यहाँ कैसे आये हो? तब सेवक बोले—आपके पिता प्रसेनजित व्याधि से ग्रस्त हैं। उन्होने आपको बहुत याद किया है। वे अब आपके बिना एक दिन भी रहने मे समर्थ नहीं है। तब श्रेणिक ने अपनी सगर्भा पत्नी नदा को सारी बात समझाई ओर समझाकर वहाँ से निकला। निकलते समय दीवाल पर लिख दिया, मैं राजगृह नगर का गोपाल हूँ। यह लिखकर श्रेणिक रथ पर सवार होकर शीघ्रातिशीघ्र राजगृह पहुँच गया।

श्रेणिक को देखकर राजा प्रसेनजित अत्यन्त हर्षित हुआ। हर्ष के ऑसुओ से ऑखे छलछला आई और अत्यन्त आह्लाद सहित राजा ने सुवर्ण कलशो से श्रेणिक का राज्याभिषेक किया। तत्पश्चात् राजा ने अपना अतिम समय समीप जानकर नमस्कार मत्र का स्मरण किया और चार शरण अगीकार करते हुए मृत्यु को प्राप्त कर देवलोक की ओर प्रस्थान किया।

राजा श्रेणिक ने अपने पिता का विधिवत् अतिम सस्कार कर दिया और न्याय-नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। इधर श्रेणिक राज्यश्री का उपभोग कर रहा है, उधर नदा अपने पिता के यहाँ सुखपूर्वक गर्भ का निर्वहन कर रही हे। यद्यपि पति अपने राज्य मे चले गए, तथापि वह कर्तव्यपालन करती हुई सतान को सुसस्कारित करने मे लगी हुई हे। सादगीसम्पन्न भोजन, वस्त्र एव धार्मिक श्रेष्ठ पुस्तको का स्वाध्याय करते हुए अपनी भावी सतान को बुद्धिमान बनाने हेतु निरत हे। समय निरतर गतिमान है। एक दिन नदा को दोहद उत्पन्न होता है कि मै हस्ती पर सवार होकर प्रचुर सम्पत्ति लुटा कर, अनेक प्राणियो का उपकार करके उन्हे अभयदान, जीवनदान दूँ। इस दोहद को अपने माता-पिता

(क) नवोढा-नवविवाहिता

से निवेदन करने मे वह सलज्ज बन गई और दिन प्रति-दिन सूख-सूख कॉटा बनने लगी। आखिर एक दिन मॉ ने पूछा—क्या बात है? आजकल बडी उदास दिखाई देती हो? शरीर भी सूख रहा है। क्या कोई दोहद उत्पन्न हुआ है?

नदा ने कहा—हॉ।

मॉ ने पूछा—क्या दोहद उत्पन्न हुआ है? तब उसने अपना दोहद मॉ को बताया। मॉ ने भद्र सेठ से कहा। जब भद्र सेठ को पता लगा कि उसकी पुत्री नदा को दोहद उत्पन्न हुआ है, तब उसने पुत्री के दोहद को पूर्ण करने के लिए राजा से निवेदन किया। राजा ने बडी उदारता से नदा के दोहद को पूर्ण करने के लिए उसे हस्ती पर आरूढ करवाया और उसके हाथो मुक्त हस्त दान करवाया। दोहद पूर्ण होने पर नदा गर्भ का सुन्दर रीति से निर्वहन करने लगी। 9 मास 7½ रात्रि पूर्ण होने पर नदा ने एक सुन्दर सुकुमार पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम अभयकुमार रखा।

प्रज्ञापुण्ज अभयकुमार :

अभयकुमार मनोहर किलकारियॉ भरता हुआ, एक गोद से दूसरी गोद मे जाता हुआ वृद्धिंगत होने लगा। अभयकुमार बालवय मे ही अत्यत बुद्धिशाली था। इसीलिए मात्र 8 वर्ष की आयु मे ही वह 72 कलाओ मे निष्णात बन गया। एक बार वह समवयस्क बालको के साथ वार्तालाप कर रहा था। सयोग से एक बालक ने उसका तिरस्कार करते हुए कहा कि तू क्या बोल रहा है? अभी तक तेरे पिता के नाम का भी तुझे पता नहीं है। तब अभयकुमार के दिल को वंहुत बडी ठेस लगी। वह अपने घर आया ओर अपनी मॉ से पूछा—मातुश्री, मेरे पिता का क्या नाम है?

नदा ने कहा—भद्रसेठ।

अभयकुमार बोला—माताजी, भद्रसेठ तो आपके पिता हैं। मेरे पिता का नाम पूछ रहा हूॅ।

माता ने कहा—किसी परदेशी ने आकर मुझसे विवाह किया था। मैंने उसका नाम नहीं पूछा। परन्तु हाँ, एक वार जव तू गर्भ मे था तो एक ऊँट वाला आया और वह उन्हे ले गया।

अभयकुमार ने कहा—अच्छा, ये बताओ जव ऊँट वाला उन्हे ले गया तव उन्होने तुम्हे क्या कहा?

नदा ने कहा—मुझे यह कुछ लिखकर दे गए। अभयकुमार ने उस लिखित पत्र को माँगा। तव नदा ने वह पत्र दे दिया। अभयकुमार ने उसे पढा और

अत्यन्त खुश हआ। अपनी मॉ से कहा–माताजी, मेरे पिता राजगृह नगर के राजा है। अपन भी वहॉ चलते हैं।

मॉ ने कहा–नानाजी से पूछो, फिर चलेगे।

अभयकुमार अपने नाना के पास गया और बोला–नानाजी, मैं अपनी माँ को पिता के पास ले जाना चाहता हूॅ।

नाना ने पूछा–वत्स, तुम्हारे पिता कहॉ है?

अभयकुमार ने कहा–नानाजी, मैने मॉ के पास पिता द्वारा लिखित जो पत्र था उससे जान लिया कि मेरे पिता राजगृह के राजा हैं।

नानाजी ने अभयकुमार की प्रतिभा जानकर उसे जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। तब अभयकुमार अपनी मॉ एव सामग्री लेकर राजगृह की ओर रवाना हो गया। वह शनै -शनै चलते हुए राजगृह नगर पहुॅचा और वहाँ जाकर उद्यान मे अपना डेरा डाल दिया। उधर राजा श्रेणिक राजगृह नगर मे श्रेष्ठ मत्री की खोज मे लगा है। वह चितन कर रहा है कि कोई विशिष्ट प्रज्ञासम्पन्न, प्रतिभापुञ्ज पुरुष ही इस विशिष्ट पद को सम्हाल सकता है। मेरा राज्य सुविस्तृत है। अत राज्य की सुव्यवस्था के लिए 499 मत्री व 1 महामत्री बना देता हूॅ। उसने अपनी योजनानुसार मत्री पद के लिए 499 व्यक्ति चयनित कर लिए। अब उत्कृष्ट बुद्धिनिधान एक और व्यक्ति की खोज चल रही थी जो महामत्री पद को सम्हाल सके। राजा श्रेणिक ने एक प्रयोग किया और खाली कुएॅ मे अपनी मुद्रिका डाल दी। उपस्थित व्यक्तियो से कहा–इस कुएॅ मे बाहर खडा रहकर जो पुरुष इस मुद्रिका को निकाल देगा उसे महामत्री पद से सुशोभित किया जाएगा।

राजा की यह घोषणा सुनकर उपस्थित जनता कहने लगी–राजन् ! यह कार्य असभव हे।

उसी समय अभयकुमार वहॉ पर मुस्कराता हुआ आया ओर कहने लगा कि खाली कुएॅ मे से अगूठी निकालना क्या मुश्किल काम है? यह श्रवण कर उपस्थित जनता आश्चर्यचकित हो अभयकुमार की ओर निहारने लगी। जनता ने समझ लिया कि यह व्यक्ति अतिशय बुद्धिमान हे। तब लोगो ने कहा–आप अपने वुद्धिवल से यदि यह अगूठी निकाल दे तो महाराजा आपको प्रधानमत्री का पद दे देगे।

यह सुनकर अभयकुमार मुस्कराया। उसने गीला गोवर कुएँ मे डाला। वह गोवर अगूठी पर गिरा, तव एक जलता हुआ तृण का पूला डाला, जिससे वह गोवर शीघ्र ही सूख गया। तव अभयकुमार ने उस कुएॅ को पानी से भर दिया।

वह गोबर का कडा तैरकर ऊपर आ गया। अभयकुमार ने उसे हाथ मे ले लिया और उसमे से मुद्रिका निकाल ली। जैसे ही अभयकुमार ने मुद्रिका निकाली, वैसे ही राज्य कर्मचारियो ने यह सूचना महाराजा श्रेणिक को दी। राजा सूचना प्राप्त करके तुरन्त अभयकुमार के पास आए और उसका अत्यन्त स्नेह से पुत्रवत् आलिगन किया। समालिगन करने पर उसके प्रति राजा के हृदय मे अपार हर्ष उमड पडा। तब राजा निर्निमेष उसका दिव्य दीदार निहारने लगे और पूछा—तुम कहॉ से आए हो?

अभयकुमार ने कहा—मै वेणातट से आया हूँ।

राजा ने पूछा—उस नगर मे सुभद्र नामक विख्यात सेठ और उसकी पुत्री नदा रहती है। क्या तुम उसे जानते हो?

अभयकुमार ने कहा—हॉ।

राजा ने पूछा—वह नदा कुछ वर्षो पूर्व सगर्भा थी क्या? तुम्हे पता है उसके क्या हुआ?

अभयकुमार ने कहा—उस नदा के अभयकुमार नामक लडका हुआ था।

राजा ने पूछा—वह लड़का कैसा है?

अभयकुमार ने कहा—राजन् ! वह तो आपके सामने खडा है। राजा ने बडे प्रेम से उसे अपनी गोद मे बिठाया ओर पूछा कि तुम्हारी मॉ नदा कहॉ है?

अभयकुमार ने कहा कि मेरी मॉ नदा इस नगर के बाहर उद्यान मे है।

यह सुनकर आनन्दनिमग्न होकर राजा श्रेणिक अभयकुमार को पहले उद्यान मे भेज देता है और बाद मे स्वय नदा महारानी को राजमहल मे लाने के लिए उद्यान मे जाता है। राजा नदा को देखता है और चितन करता है कि विरह मे नदा का शरीर सूखकर कृशकाय हो गया है। मलिन वस्त्र मे लिपटी चन्द्रवदना महारानी शिथिल गात्र वाली, दीन मुख वाली दृष्टिगोचर हो रही हे। राजा स्वय उसके पास पहुँचता है ओर ससम्मान उसे राजमहल मे लाता है। अतीव सत्कार-सम्मान सहित वस्त्राभूषणो से सुसज्जित कर नदा को पटरानी की पदवी देते ह ओर शुभमुहूर्त मे धूमधान से अभयकुमार का अपनी वहिन की पुत्री सुसेना के साथ विवाह कर देते है। तत्पश्चात् अभयकुमार को प्रधानमंत्री का पद देते हैं। अभयकुमार अपनी विलक्षण प्रज्ञा से अनेक दु साध्य राजाओं को जीतता हुआ, राज्यश्री का उपभोग करता हुआ दु साध्य समस्याओं का चुटकी मे हल निकाल देता हैं। इस प्रकार अभय की प्रज्ञा से राजगृह नगर की राज्य-व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही हैं।[25]

प्रणय सुज्येष्ठा का हरण चेलना का :

अनेक परदेशी देश-विदेश की सूचनाएँ लेकर समय-समय पर राजगृह नगर पहुँचते रहते है। एक बार एक तापसी वैशाली नगर से क्षुब्ध होकर राजगृह पहुँचती है। तापसी के क्षुब्ध होने का कारण यह बना कि तापसी शौचमूलक धर्म[क] का प्रतिपालन करने वाली थी और इसी धर्म का प्रतिपादन करने के लिए वह वैशाली गई थी। वैशाली उस समय की अत्यन्त समृद्धिशाली प्रसिद्ध नगरी थी, जहाँ का राजा चेटक शत्रु राजाओ को भी सेवक बनाने वाला था। उसकी पृथा नामक महारानी थी। राजा चेटक व पृथा, दोनो जिनधर्म के प्रति दृढ निष्ठावान थे। राजा चेटक स्वय बारह व्रतधारी श्रावक था। महारानी पृथा ने अवसर आने पर क्रमश सात पुत्रियो को जन्म दिया और उन्हे जिनधर्म के प्रति अत्यन्त गहरे सस्कार देकर उनकी अस्थि-मज्जाओ मे धर्मानुराग भर दिया।

यौवन की दहलीज पर कदम रखते ही पॉच पुत्रियो को योग्य वरो के सुपर्द कर दिया। वीतिभय के राजा उदयन को प्रभावती, चम्पा के राजा दधिवाहन को पद्मावती, कौशाम्बी के राजा शतानीक को मृगावती, उज्जयिनी के राजा प्रद्योतन को शिवा और कुडग्राम के अधिपति नदीवर्धन, जो प्रभु महावीर के ज्येष्ठ भ्राता थे, उनको ज्येष्ठा को सुपर्द कर दिया।

राजा चेटक की सात पुत्रियो मे से दो पुत्रियाँ कुँवारी रह गईं–सुज्येष्ठा व चेलना। इन दोनो भगिनियो मे आपसी प्रेम अगाध था। दोनो बहने पुनर्वसु के दो तारो की तरह निरन्तर साथ-साथ रहती थीं। दोनो की धार्मिक रुचि अत्यन्त सराहनीय थी। दोनो बहने कन्या अन्त पुर मे निरन्तर स्वाध्याय आदि मे लीन रहती थी। वह तापसी वैशाली मे आकर एक बार कन्या अन्त पुर मे गई और उसने सोचा कि इन कन्याओ को कुछ भी ज्ञान नहीं है, इसलिए इनको शोचमूलक धर्म तत्त्व के बारे मे ज्ञान देना चाहिए। यही सोचकर उसने वहाँ प्रवचन देना शुरू किया कि शारीरिक शुद्धि ही मात्र धर्म रूप हे। बाकी सब अधर्म हे। तव सुज्येष्ठा ने कहा कि यह तो आश्रव का द्वार है, कर्मवध का कारण है। वह धर्म कैसे हो सकता है? सुज्येष्ठा ने अनेक प्रमाण देकर तापसी के उस शौचमूलक धर्म का खण्डन कर दिया ओर कहा कि शरीरशुद्धि मे ही धर्म होता तो फिर मेढक व मछली तो दिन-भर पानी मे रहते है, वे सवसे ज्यादा धर्मात्मा होते। इस तरह जव तापसी निरुत्तर हो गई तो उसकी दासियाँ तापसी को देख-देखकर हँसने लगी ओर उन्होने उस तापसी को कन्या अन्त पुर से वाहर निकाल दिया।

(क) शोचमूलक धर्म–वाह्य शुद्धिमूलक धर्म

इससे तापसी क्षुब्ध हो गई और उसे क्रोध आया कि इस सुज्येष्ठा को बहुत अहकार है, इसलिए इसका विवाह वहाँ करवाना चाहिए जहाँ एक राजा के अनेक पत्नियाँ हो, तो वह स्वयमेव वहाँ दु खी बन जाएगी।

क्रोधावेश मे व्यक्ति दूसरो को दु ख देने की बात सोच लेता है, लेकिन आज तक कौन किसको सुख-दु ख दे पाया है? सुख-दु ख तो कर्माधीन हैं। लेकिन तापसी का सुज्येष्ठा से वैर जागृत हो गया और उसने पिण्डस्थ ध्यान के माध्यम से सुज्येष्ठा का रूप मन मे उतार लिया और समय आने पर उसको एक चित्र का रूप दे दिया। चित्र अत्यन्त सजीव बन गया। उसी चित्र को लेकर तापसी राजगृह नगर गई और वहाँ जाकर राजा श्रेणिक को कहा—राजन्! आपके लिए मै बहुत सुन्दर कन्या का चित्र लाई हूँ जो आपके अन्त पुर मे शोभित हो सकती है। राजा ने कहा—बताओ।

तब तापसी ने वह चित्र बताया। चित्र देखते ही राजा मत्रमुग्ध हो गया। वह भान भूल गया और बोलने लगा—अहा ! इस बाला का कितना मनोहर रूप है। मयूर का आकर्षक रूप भी इसके आगे फीका नजर आ रहा है। अहा ! इस मनोहर मुख को देखकर मै मधुकर बन गया हूँ। इतना प्रियकारी, कमनीय व मत्रमुग्ध करने वाला इसका सुकोमल गात्र मुझे बरबस आकृष्ट कर रहा है। अग-प्रत्यगो से फूटने वाला यौवन उषा की भाँति मन मे आह्लाद पैदा कर रहा है। इस मृगनयनी के कमनीय कटाक्ष अद्वैत शौर्य के प्रतीक हैं। पर यह बताओ कि यह परमसुन्दरी है कौन? यह चित्र काल्पनिक हे या किसी वास्तविक कन्या का है?

इस पर तापसी ने कहा—जैसी अद्वितीय सुन्दरी वह कन्या है, उसका सोवा अश भी यह चित्र बन नहीं पाया है।

ओह ! इतनी सुन्दरी ! इतना कहते-कहते राजा का मन काम-विह्वल हो गया। कामार्त व्यक्ति भान भूल जाता है।[xxxix] वह जड को भी चेतन समझने लगता है। राजा ने भी सुज्येष्ठा के चित्र को सुज्येष्ठा समझ लिया ओर पूछता हे कि सुन्दरी ! तुम कौन हो? जब जवाब नहीं मिलता हे तो होश आता है। अरे! यह तो चित्र है। तत्पश्चात् सम्हलकर तापसी से पूछता है कि यह कमलिनी सस्पर्श सहित है या रहित? यह कौन देश को अलकृत कर रही है?

तापसी बोली—राजन् ! यह वैशाली के अधिपति हैहयवश मे उत्पन्न राजा चेटक की पुत्री सुज्येष्ठा है।[xl] यह सब कन्याओ मे निपुण हैं व आप द्वारा वरण करने योग्य है।

राजा श्रेणिक ने यह सब सुनकर उस तापसी को बहुत धन्यवाद दिया व

ससम्मान विदा किया व खुद इसी चितन मे डूब गया कि मुझे सुज्येष्ठा से विवाह करना है। दूसरे दिन राजगृह के अधिपति श्रेणिक ने एक दूत वैशाली के लिए भेजा। वह दूत वेशाली गया व राजा चेटक से कहा–राजन् ! मैं मगध से आया हूँ। आपकी सुयोग्य कन्या सुज्येष्ठा से राजा श्रेणिक विवाह करना चाहते हैं।

राजा चेटक ने कहा–क्या तुम्हारा स्वामी अनजान है? वह स्वय वाही कुल मे उत्पन्न है और हैहयवश मे उत्पन्न कन्या की इच्छा रखता है ! समान कुल की कन्या के साथ विवाह करना चाहिए।[127] इसलिए मैं श्रेणिक को अपनी पुत्री नहीं दे सकता हूँ। यह सुनकर दूत वहाँ से चला गया। राजगृह जाकर उसने सारी वार्ता राजा से यथावत् कह डाली। वार्ता सुनकर राजा को अत्यन्त विह्वलता की अनुभूति हुई। विरह मे उसका वदन म्लान होने लगा। सयोग से उसी समय अभयकुमार वहाँ पर पहुँचा और उसने पिताश्री को पूछा कि आप शोकाकुल क्यो हैं? श्रेणिक ने कहा–वत्स ! मैंने वैशाली की राजकुमारी सुज्येष्ठा का चित्रपट देखा जिसे देख मेरा मन उसे पाने हेतु लालायित बन गया। मैंने चेटक राजा से मगनी की, लेकिन उसने अपनी कन्या देने से इनकार कर दिया। अत मैं कामविह्वल हूँ।

अभयकुमार ने कहा–मै आपकी इच्छा पूर्ण करने का प्रयास करूँगा।

तब राजा आश्वस्त हो गया। तत्पश्चात् अभयकुमार पिताश्री की कामनापूर्ति के लिए मगध सम्राट् श्रेणिक का चित्रपट बनाता है ओर इस चित्रपट को लेकर वैशाली जाता है। वहाँ जाकर कन्या अन्त पुर के पास एक दुकान किराए पर ले लेता है ओर उसमे पिता का चित्र लगाता है। दुकान मे अन्त पुर की दासियो की जरूरत का सामान रख लेता है। नवीन वस्तुओ के प्रति नारियो का सहज आकर्षण होता है। जब दासियाँ सामान खरीदने आती है तो अभय उन्हे कम मूल्य मे सामान दे देता हे। धीरे-धीरे भीड बढती जाती हे। एक दिन अभयकुमार दासियो को आते हुए देखकर अपने पिता के चित्र को प्रणाम करता है। तव दासियो ने पूछ ही लिया कि जिनको तुम प्रणाम करते हो वो आखिर हैं कौन? तव अभय ने कहा–ये राजा श्रेणिक हैं जो मेरे लिए देवतुल्य हैं। अभयकुमार के ऐसा कहने पर दासियो ने उस चित्र को गौर से देखा ओर अन्त पुर मे जाकर सुज्येष्ठा को वतलाया कि एक नई दुकान मे एक राजा का वहुत सुन्दर चित्र लगा हे। वह तो तुम्हारे पति वनने योग्य हैं। यह सुनकर सुज्येष्ठा कामविह्वल हो गई। ऑखो मे ख्वावो की तरह उस चित्र को देखने की तमन्ना तैरने लगी और वह अतरग दासी से वोली–सखी ! तुम्हे वह चित्र यहाँ लाकर मुझे दिखलाना ही होगा।

दासी ने कहा–स्वामिनी ! अभी जाती हूँ। यो कहकर वह अभयकुमार की

दुकान पर गई और निवेदन किया—कुमार ! आज मैं तुमसे कुछ याचना करने आई हूँ।

अभयकुमार बोला—कहो, क्या कहना चाहती हो?

दासी (अत्यन्त मधुर स्वर में)—वह चित्रपट, जो मन को मत्रमुग्ध बना रहा है।

कुमार ने पूछा—किसको दिखाना चाहती हो?

दासी—राजकुमारी सुज्येष्ठा को।

कुमार बोला—अच्छा ले जाओ, लेकिन वापस सुरक्षित ले आना। दासी—हॉ, कुमार ऐसा ही होगा। यो कहकर दासी ने अत्यन्त गोपनीयता से चित्रपट लाकर सुज्येष्ठा को दे दिया। सुज्येष्ठा उस चित्र को देखते ही उसमे निमज्जित हो डुबकियॉ लगाने लगी। होश सम्हाल कर अपनी सखी से बोली कि यह पुरुष मेरे हृदय का सम्राट् बन गया है। इसको मैं अपना सर्वस्व अर्पण करना चाहती हूँ। अत तुम ऐसा उपाय करो जिससे कि मैं इस युवक को अपना स्वामी बना सकूँ। सखी ! तुझे वणिक् को प्रसन्न करके मेरा यह कार्य करना ही होगा।

दासी ने कहा—धैर्य धरो स्वामिनी। अभी जाती हूँ।

यो कहकर दासी चित्र लेकर पुन दुकान पर गई और कुमार से बोली—कुमार! मेरी सखी सुज्येष्ठा अपने दिल मे सम्राट् श्रेणिक को सर्वस्व मान चुकी है। वह श्रेणिक के बिना पल-पल विरहाग्नि मे जल रही है। उसे अपना जीवनसाथी श्रेणिक कैसे मिले, उसका यह मनोरथ आपको पूर्ण करना होगा।

अभयकुमार बोला—मैं थोडे समय बाद तुम्हारी सखी का मनोरथ पूर्ण करने का प्रयास करूँगा।

दासी बोली—थोडे समय बाद इतने मे तो वह विरहिणी सूखकर कॉटा हो जाएगी। अरे तुम जल्दी करो।

अभयकुमार ने कहा—मैं यहॉ से श्रेणिक के महल तक की सुरग खुदवाता हूँ और यह कार्य शीघ्र पूर्ण करने का प्रयास करता हूँ।

दासी ने कहा—ठीक है।

यो कहकर दासी चली जाती है और सारी बात सुज्येष्ठा से जाकर कहती है। सुज्येष्ठा दासी से कहती है—तुम उस युवक से कहो, बहुत जल्दी करना। मैं परिपूर्ण तैयार हूँ। दासी अभयकुमार के पास जाती हे ओर कहती है कि कुमार ! जल्दी करना, क्योकि विरह का एक पल भी बडा असह्य होता है। कुमार बतला देता है कि अमुक दिन श्रेणिक सुरग मे रथ लेकर आएगे। तब तुम्हारी स्वामिनी से कहना, तैयार रहना।

दासी ने कहा–ठीक है। सारी बात पक्की हो जाती है।

इधर अभयकुमार सुरग खुदवाने का कार्य शुरू कर देते हैं। सुज्येष्ठा निरन्तर इतजार करती है। पल-पल निकलना भारी है। दिन तो जैसे-तैसे निकल जाता है, पर रात्रि वह करवटे बदल-बदल कर थक जाती है, लेकिन विरह . वह तो विरह ही है। आखिर इतजार करते-करते वह दिन भी आ जाता है जब मगध सम्राट श्रेणिक रथ लेकर सुरग मार्ग से सुलसा के बत्तीस पुत्रो के साथ उपस्थित हो जाता है। जब सुरग के दूसरे द्वार पर श्रेणिक आया तो उसने सुज्येष्ठा को सुरग द्वार पर खडे-खडे ही देख लिया व हर्षित हुआ कि अहो ! जिसे मैंने पहले चित्र मे देखा था आज साक्षात् अप्सरा मेरे सामने खडी है। इधर सुज्येष्ठा ने भी देखा श्रेणिक आ गए हैं, वह सम्मिलन को उद्यत हुई।

मन मृग की भॉति कुलाचे भर रहा है। कदमो मे नवस्फूर्ति का सचार हो रहा है। नयनों मे अभिनव मूरत समाहित हो रही है। लेकिन जाने से पहले चितन आता है। हाय ! इतने दिन मैंने चेलना से कुछ नहीं कहा। वह मेरी कनिष्ठ भगिनी धूप-छॉव की तरह सदैव मेरे साथ रहने वाली है। उसको तो बताऊँ.. .. जल्दी से चेलना के पास जाती है और कहती है– बहिन ! मैं जा रही हूँ।

चेलना–(आश्चर्यचकित-सी) कहॉ?

सुज्येष्ठा–राजा श्रेणिक के साथ।

चेलना–श्रेणिक?

सुज्येष्ठा–हॉ, राजगृह के सम्राट् श्रेणिक को मै हृदय-सम्राट् के रूप मे वरण कर चुकी हूँ।

चेलना–श्रेणिक कहॉ है?

सुज्येष्ठा–सुरग द्वार पर खडे मेरा इतजार कर रहे हैं।

चेलना–सुरग द्वार पर? क्या तुमने जाने की पूर्ण तंयारी कर ली?

सुज्येष्ठा–हॉ, अब तुम्हे क्या करना है, जल्दी बोलो।

चेलना–मैं तुम्हारे बिना कैसे रह पाऊँगी मै भी चलती हूँ साथ मे।

सुज्येष्ठा–जल्दी कर, तू रथ मे बैठ, मैं रत्नो का पिटारा लेकर आती हूँ।

चेलना रथ मे बैठ गयी। सुज्येष्ठा गहनो का डिब्बा लेने गयी।

तभी सुलसा के बत्तीस पुत्र, जो श्रेणिक के अगरक्षक थे वे आये और बोले–महाराज जल्दी करो, शत्रु सेना हमला बोल सकती है।

चोर के पॉव कच्चे होते है, इसलिए श्रेणिक चेलना को लिए रथ रवाना कर देता है।[128]

सुज्येष्ठा रत्नो का डिब्बा लेकर सुरग-द्वार तक पहुॅचती है, लेकिन रथ जा चुका था मनोरथ मिट्टी मे मिल गया बहिन चली गयी वह एकाकी रह गयी

जोर-जोर से रोने लगी। अन्त पुर मे हलचल मच गयी। राजा चेटक को पता चला कि उसकी पुत्री रुदन मचा रही है। वह वहॉ आया और पूछा—क्या बात है, बेटी?

सुज्येष्ठा ने बतलाया कि राजगृह के सम्राट् श्रेणिक ने चेलना का हरण कर लिया।

चेटक—हरण? कैसे किया?

सुज्येष्ठा—सुरग-द्वार से।

चेटक—अभी जाता हूॅ युद्ध करने। चेटक सुरग-द्वार से जाने लगा जितने मे उसको वीरागक नामक वीर सैनिक मिला। उसने चेटक से पूछा—आप कहॉ जा रहे है?

चेटक—युद्ध करने।

वीरागक—युद्ध करने? किससे युद्ध करने?

चेटक—श्रेणिक से, जो सुरग-द्वार से चेलना का हरण कर ले जा रहा है।

वीरागक—इसके लिए मै स्वय जाता हूॅ। आप निश्चित रहिए।

वीरागक तुरन्त सुरग द्वार से युद्ध करने जा रहा है। तीव्र गति से रथ चल रहा है। घोडो की टापो से वातावरण मे धूलि[ALI] व्याप्त हो रही है। पवन वेग से घोडे निरन्तर दौड रहे हैं। दौडते-दौडते रथ, सुलसा के बत्तीस पुत्र जो अगरक्षक थे, वहॉ पहुॅचा। शत्रु अगरक्षको को देखते ही वीरागक का खून खौलने लगा। एक तीर निकाला कमान से और ऐसी वीरता से उसे छोडा कि एक ही तीर से बत्तीस अगरक्षको को धराशाही कर दिया। धरती लाशो से पट गयी। रथ निकलने का स्थान तक नहीं रहा। वीरागक ने उन शवो को एक तरफ किया और रथ निकालने की जगह बनाई। इतने मे श्रेणिक वहॉ से भाग गया, सुरग पार कर ली।

वीरागक ने रथ लौटा लिया और पूरा वृत्तान्त राजा चेटक को सुनाया। चेटक को गलती का प्रतिकार होने से तोष और पुत्री-हरण पर रोष था। लेकिन

चिंतन किया कि होनहार बलवान है। अब तो चेलना ने श्रेणिक का वरण कर ही लिया तो रोष करने से क्या लाभ? चेटक सतोष धर लेता है।

लेकिन सुज्येष्ठा ! वह सब वृत्तान्त श्रवण कर रही थी। श्रवण करते-करते विकारी मन वैरागी बन गया। सोचने लगी—ओह ! मैंने कितना कपट जाल रचा। स्वय मैंने श्रेणिक को आमन्त्रण भिजवाया और उसको एक पल निहारने के लिए कितने-कितने अरमान सँजोए। सुरग-द्वार से मेरे ही लिए श्रेणिक आया मात्र मेरे लिए परन्तु मैंने चेलना को भेज दिया और मै रत्नो मे, आभूषणो मे उलझी रही श्रेणिक ने आत्मरक्षा के लिए चेलना के बैठने पर रथ मोड लिया। मैं श्रेणिक को प्राप्त नहीं कर सकी तो मैंने उलटी चाल चली। हाय ! श्रेणिक को बदनाम करने का प्रयास किया मेरे कारण बत्तीस वीर अगरक्षक मारे गये अरे ! मेरी वासना की आग ने कितने जीवो की हत्या कर डाली। वासना . अधी होती है। वासना विवेक-विकल होती हे। वासना चेतना को आवरित कर देती है। वासना अपने जाल मे फँसाकर जीवन के समस्त सद्गुणो को धो डालती है।

इसी वासना-कामना के पाश मे जकडकर मैंने कितना जघन्य अपराध कर लिया। श्रेणिक भी नहीं मिला और युद्ध का कारण मैं बनी। माँ की गोद से लालो का हरण कर लिया। स्त्रियो की माँग का सिन्दूर पोछ दिया। घर मे दु ख की ज्वाला प्रज्वलित कर दी। अब मेरा क्या होगा इतने पापो का पिटारा मैंने बाँध लिया है। धिक्कार है मुझे ! मेरी वासना को बारम्बार धिक्कार है। अब ससार नहीं, सयम चाहिए। राग नहीं, विराग मे जीना है। सुज्येष्ठा का कामासक्त मन वैराग्य मे परिवर्तित हो गया और वह अपने पिता चेटक से बोली—पिताश्री ! मेरा मन ससार से विरक्त बन गया है। मैं भगवान् महावीर की सन्निधि मे सयम लेकर अपना जीवन सफल करना चाहती हूँ।

पिता ने सुज्येष्ठा के वैराग्य को दृष्टिगत कर उसे सयम लेने की आज्ञा प्रदान कर दी। सुज्येष्ठा भगवान् महावीर के चरणो मे पहुँची और उसने भगवान् की धर्मदेशना श्रवण कर प्रभु के मुखारविन्द से सयम अगीकार कर लिया। सयम ग्रहण करके आर्या चन्दनबालाजी की सन्निधि मे सयम-तप से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगी।

सुज्येष्ठा तो साध्वी बन गई।[129] इधर चेलना रथ मे श्रेणिक के साथ एकाकी बैठी लज्जा का अनुभव कर रही थी। इतने दिन तक कन्या अन्त पुर मे उसने किसी अनजान पुरुष से बातचीत भी नहीं की और आज भगिनी के प्रेम से रथ मे बैठ गयी। क्या विधि की विडम्बना है? जिस बहन ने श्रेणिक को हृदय-सम्राट्

बनाया वह तो कन्या अन्त पुर मे ही रह गयी और मै जिस भगिनी के बिना एक पल भी नहीं रह सकती, आज उसे छोडकर यहाँ आ गयी। अब क्या होगा मैं इस पुरुष को क्या बोलूँगी। उसका तो हृदय तीव्रगति से धक्-धक् करने लगा। यह राजा तो मेरी बहन का प्रेमी है मुझे यह नहीं अपनायेगा तो हाय मेरा क्या होगा? यह सोच चेलना के मुख-मण्डल पर हवाइयाँ उडने लगती है। राजा श्रेणिक को अभी तक पता नही था कि यह चेलना है। उसने चेलना को सुज्येष्ठा ही मान रखा था। जैसे ही उसने चेलना की तरफ देखा, उसका म्लान मुखमण्डल देखकर बोला—सुज्येष्ठा ! सुज्येष्ठा ! क्या बात है?

चेलना—राजन् ! मैं सुज्येष्ठा नहीं हूँ।

राजा—सुज्येष्ठा नहीं हो?

चेलना—हाँ राजन् ! सुज्येष्ठा तो रत्न का डिब्बा लेने गयी थी, उसने मुझे कहा कि तू चल, मै आती हूँ तो मै तो यहाँ चली आई लेकिन उसके आने से पहले आपने रथ फेर लिया। वह वहाँ रह गयी और मैं ।

श्रेणिक—धैर्य रखो देवी ! होनहार बलवान है। तुम रूप और सौन्दर्य का अप्रतिम खजाना हो। तुम सुज्येष्ठा से भी अधिक लावण्यवाली हो। मैं तुम्हारा वरण कर कृतार्थ हो जाऊँगा। श्रेणिक के वचन श्रवण कर, चेलना को कुछ सतोष मिला, लेकिन बहिन के विरह का दु ख हृदय को सालने लगा किन्तु अब कोई उपाय नहीं था।

इधर राजा श्रेणिक चेलना को लेकर राजगृह मे प्रविष्ट हुआ। राजमहलो मे पहुँचा, जहाँ अभयकुमार आया। श्रेणिक और चेलना का गान्धर्व विधि से विवाह सम्पन्न हुआ।

सारी वैवाहिक रस्म पूर्ण होने पर राजा स्वय अभयकुमार सहित नाग रथिक एव सुलसा के पास पहुँचा और उन्हे बतलाया कि बत्तीस पुत्र एक साथ मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं।[130] जैसे ही माता-पिता ने श्रवण किया, वे करुण क्रन्दन करने लगे। अरे काल ! तू बडा भीषण है। तूने यह क्या किया? बत्तीसो को एक साथ ग्रास बना लिया। पक्षियो के बहुत बच्चे होते हैं, वे भी एक साथ नहीं मरते। यह क्या हुआ? हाय ! मृत्यु ने हमको ठग लिया। ऐसा कहकर जोर-जोर से विलाप करने लगे। तब राजा श्रेणिक और अभयकुमार उनकी आत्मशाति के लिए तत्त्ववेत्ता आचार्य के पास ले गये। आचार्यश्री ने उनको जन्म-मरण की प्रक्रिया समझाई। मृत्यु को शाश्वत वतलाया, जिससे उन्हे आत्मशाति मिली। तव राजा उन्हे आश्वस्त करके अभयकुमार सहित राजभवन लौटे।[131]

कूणिक का अवतरण :

मगध सम्राट् श्रेणिक इन्द्राणी के साथ इन्द्र की तरह चेलना के साथ भोगो का भोग करने लगा। चेलना की सुदीर्घ भौंहे, उन्नत नासिका, कोमल कपोल, अरुणाभ अधर, श्वेत दतपक्ति, कमनीय कटाक्ष और मधुरवाणी राजा श्रेणिक को वरबस आकृष्ट कर लेती थी। उसका निर्मल मन सदैव अपने भर्ता के चरणो मे समादृष्ट[क] रहता था। इस बेजोड समर्पण से श्रेणिक का मन चेलना पर अत्यधिक था। अब उदार भोगो को भोगते हुए निरन्तर रात्रि-दिवस व्यतीत हो रहे थे। इधर वह औष्ट्रिक[LII] तप करने वाला सेनक तापस मरकर जो व्यन्तर देव बना था, वह अपनी देवायु को पूर्ण कर चेलना की कुक्षि मे पुत्र रूप मे अवतरित हुआ।

उस रात्रि मे अपने शयन कक्ष मे शयन करते हुए महारानी चेलना ने अर्धरात्रि के समय सिह को आकाश मण्डल से उतरकर मुँह मे प्रवेश करते हुए देखा। तब वह जागृत बनकर मन्द-मन्द गति से राजा श्रेणिक के पास जाती है। श्रेणिक को मधुर-मधुर शब्दो से सम्बोधित कर जागृत करती है एव स्वप्नफल पूछती है।

राजा श्रेणिक चेलना से कहते है–प्रिये ! तुमने कल्याणकारी स्वप्न देखा है। तुम 9 मास 7½ रात्रि पूर्ण होने पर एक शूरवीर बालक का प्रसव करोगी।

राजा श्रेणिक से स्वप्नफल श्रवण कर महारानी हर्षित होती है एव सुखपूर्वक गर्भ का निर्वहन करती है। गर्भ को तीन मास व्यतीत होने पर चेलना महारानी को गर्भस्थ शिशु के श्रेणिक के साथ वैरानुबध के प्रभाव से ऐसा दोहद पैदा हुआ कि वे माताएँ धन्य हैं, पुण्यशाली हैं, उनका जन्म जीवन सफल है जो श्रेणिक राजा की उदरावली के शूल पर सेके हुए, तले हुए, भूने हुए मास का तथा सुरा यावत् मेरक, मद्य, सीधु और प्रसन्ना नामक मदिराओ का आस्वादन करते हुए, विस्वादन[ख] करते हुए, अपनी सहेलियो को वितरित करते हुए अपने मन की अभिलाषा को तृप्त करती है।

इस अनिष्ट, अयोग्य दोहद के पूर्ण न होने से चेलना का शरीर निस्तेज वन गया और वह भग्न मनोरथ वाली होकर आर्तध्यान करने लगी। दासियों ने चेलना को आर्तध्यान करते हुए देखा तो तुरन्त राजा श्रेणिक से जाकर कहा–राजन्! चेलना महारानी आर्तध्यान कर रही हैं।

राजा श्रेणिक तुरन्त महारानी के समीप आया और पूछा–देवानुप्रिये ! तुम आर्तध्यान क्यो कर रही हो?

(क) समादृष्ट–सलग्न (ख) विस्वादन–विशेष रूप मे आस्वादन

तब महारानी मौन रहती है। राजा कहता है–क्या मैं तुम्हारी बात सुनने के अयोग्य हूँ जो तुम मुझसे अपनी बात छिपा रही हो? इस प्रकार दो-तीन बार कहने पर चेलना ने अपना दोहद श्रेणिक को बतलाया, जिसे श्रवण कर राजा श्रेणिक ने बहुत मधुर वचनो से महारानी को आश्वासन दिया। तत्पश्चात् महारानी के पास से निकलकर बाह्य उपस्थानशाला[क] मे सिहासन पर बैठकर दोहद पूर्ति का विचार करने लगा लेकिन उसे कोई उपाय ध्यान मे नहीं आया तो वह चिन्ताग्रस्त बन गया।

इधर अभयकुमार स्नानादि करके जहॉ सभा भवन था वहॉ आया और देखा कि सम्राट् अत्यन्त निरुत्साहित होकर बैठा है। तब उन्होने राजा से कहा–तात ! आप आज चिन्ताग्रस्त लग रहे हैं, इसका क्या कारण है? राजा श्रेणिक ने चेलना का दोहद अभयकुमार को बतलाया।

अभयकुमार बोला–तात ! चिन्ता छोडिये। मै दोहद पूर्ण करने का उपाय करता हूँ। तत्पश्चात् अभयकुमार, जहॉ अपना भवन था, वहॉ आया और उसने आन्तरिक विश्वस्त पुरुषो को बुलाया और कहा–तुम वधशाला से गीला मास, रुधिर और पेट का भीतरी भाग लाओ। वे विश्वस्त पुरुष अभयकुमार के कहने से मासादि लेकर आये। तब अभयकुमार थोडा-सा मास लेकर, जहॉ राजा श्रेणिक था वहॉ आया और राजा श्रेणिक को एक शय्या पर ऊपर की ओर मुख करके लिटाया। उसके उदर पर गीला रक्त, मास बिछाया और ऑतें आदि लपेट दीं। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे रक्त-धारा बह रही हो। तब ऊपर मे माले से चेलना को देखने के लिए बिठाया। उसे स्पष्ट दिखाई दे रहा था, जहाँ राजा श्रेणिक सोया था।

तब अभयकुमार ने कतरनी से मास खण्ड काटे, बरतन मे रखे, श्रेणिक ने झूठ-मूठ मूर्च्छित होने का बहाना कर लिया। कुछ समय पश्चात् होश भी आ गया। इधर अभयकुमार ने चेलनादेवी को राजा श्रेणिक के उदरावली मास के वे लोथडे दिये जो वधिकशाला से लाये गये थे, जिन्हे खाकर चेलना ने अपना दोहद पूर्ण किया और गर्भ का सुखपूर्वक वहन करने लगी।

कुछ समय व्यतीत होने पर एक दिन मध्य रात्रि मे चेलना महारानी ने सोचा कि इस बालक ने पिता का मास गर्भ मे रहते हुए ही खा लिया तो इसे गिरा देना चाहिए, नष्ट करना चाहिए। इस हेतु उसने विविध उपाय और अनेक

(क) उपस्थानशाला–सभा स्थान

औषधियॉ ग्रहण कर ली लेकिन वह गर्भ न नष्ट हुआ और न गिरा। तब चेलना महारानी उदास रहकर तीव्र आर्तध्यान से ग्रस्त होकर गर्भ का वहन करने लगी। 9 मास पूर्ण होने पर चेलना महारानी ने एक सुकुमार यावत् रूपवान बालक को जन्म दिया।

बालक का प्रसव होने पर चेलनादेवी ने विचार किया कि गर्भ मे रहते हुए ही इस बालक ने पिता की उदरावली का मास खाया है तो युवा होने पर यह बालक कुल विनाशक भी हो सकता है। अत इस बालक को तत्काल उकरडी (कचरे के ढेर) पर फेक देना चाहिए। ऐसा विचार कर चेलनादेवी ने दासी को बुलाया और बुलाकर उसे अशोक वाटिका मे एकान्त मे फिकवा दिया।

इधर राजा श्रेणिक को आकर किसी ने बतला दिया कि महारानी चेलना ने नवजात शिशु को उकरडी पर फिकवा दिया है, तब राजा स्वय अशोक वाटिक मे गया, बालक को उठाकर लाया और चेलना पर अत्यन्त कुपित हुआ कि इस प्रकार नवजात शिशु को तुमने उकरडी पर क्यो फिकवाया? अरे चेलना! अधर्मिणी स्त्री भी गोलक[क] और कुण्ड[ख] पुत्र को भी नहीं त्यागती, तब तूने इसको क्यों त्यागा?

चेलना ने कहा–यह आपका वैरी है, इसलिए।

तब श्रेणिक ने कहा कि तू यदि ज्येष्ठ पुत्र को इस तरह छोड देगी तो तेरा दूसरा पुत्र भी जल के परपोटे की तरह स्थिर नहीं रह पायेगा। अतएव तुम्हे कसम है कि तुम अब इस बालक के साथ बुरा व्यवहार न करती हुई इसका पालन करोगी।

सम्राट् द्वारा ऐसा कहने पर चेलना लज्जित हुई और अपराधिन की भॉति दोनो हाथ जोडकर राजा के आदेश को स्वीकृत किया। अब चेलना बालक का लालन-पालन करने लगी। उकरडे पर जव उस बालक को फेका था तो एक मुर्गे ने वालक की अगुलि का आगे का भाग चोच से छील दिया जिससे उसमे वार-वार पीव व खून वहने लगा, जिस कारण वह बालक बार-बार रुदन करता। उसका रुदन श्रवणकर श्रेणिक उसे गोद मे लेता, उसकी अगुली को मुख मे चूसता और रक्त पीव को मुख मे चूसकर थूक देता था। ऐसा करने से वह शिशु शात हो जाता। जव-जव भी वेदना से वह क्रन्दन करता श्रेणिक राजा इसी प्रकार चूस कर उसकी वेदना शात कर देता। इस प्रकार जव वह ग्यारह दिन का हो गया तव उसका गुण निष्पन्न नाम रखा कि इस पुत्र को अशोक वाटिक मे भूमि पर

(क) गोलक- पति की विद्यमानता म जार से पैदा लड़का
(ख) कुण्ड–पति की मृत्यु के वाद जार स पैदा लड़का

डाल दिया गया फिर भी यह चन्द्र की भॉति सुशोभित हो रहा था, इसलिए इसका नाम अशोकचन्द्र एव एकान्त उकरडे मे फेके जाने पर अगुली का ऊपरी भाग मुर्गे की चोच से छील गया था, अतएव इसका नाम कूणिक हो।

तब सभी उसे कूणिक के नाम से पुकारने लगे। वह कूणिक क्रमश राजघराने मे निरन्तर बडा होने लगा। तत्पश्चात् कुछ दिनों पश्चात् चेलना महारानी ने क्रमश हल-विहल्ल नामक दो शूरवीर पुत्रो को जन्म दिया। वे भी क्रमश बडे होने लगे। चेलना महारानी के मन में कूणिक के प्रति अब भी द्वेष समाप्त नही हुआ। वह कूणिक को पिता का द्वेषी समझकर उसे गुड के लड्डू तथा हल-विहल्ल को शक्कर के लड्डू खिलाती थी। इससे कूणिक यह समझता था कि पिता मेरे साथ पक्षपात कर रहे हैं, परन्तु पिता श्रेणिक कभी भी कूणिक के साथ पक्षपात नहीं करते थे।

इस प्रकार कूणिक युवा हो गया तब माता-पिता ने पद्मावती आदि आठ राजकन्याओ के साथ उसका विवाह सम्पन्न किया।[132] वह अपनी महारानियो के साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोग भोगने लगा और समय-समय पर भगवान् महावीर के दर्शन कर स्वय को कृतार्थ बनाने लगा।

पयोधर पिपासा :

मगध सम्राट् श्रेणिक उस समय का महान पराक्रमी राजा था। उसके अन्त पुर[क] मे अनेक महारानियॉ थी, जिन्होने शूरवीर, त्यागी, वैरागी अनेक पुत्रो को जन्म दिया और उन्हे जिन-शासन मे समर्पित किया।

उन्हीं महारानियो की शृखला मे एक महारानी थी–धारिणी। धारिणी अत्यन्त सुकोमल मानोन्मान प्रमाण[XLIII] गात्र वाली थी। उसका मनोहारी वदन चन्द्रकला को भी अभिभूत करने वाला था। सचिक्कण[ख] केश राशि कपोलो पर मधुपों[ग] के समान क्रीडा करती थी। तिस पर सज्जित कुण्डल बरबस मन की गति का हरण करते थे। तनुकटि कमनीयता को धारण किये त्रिवली[घ] से युक्त थी। अग-प्रत्यग के कटाक्ष मनमोहक थे। गात्र के समान ही मधुर स्वभाव वाली वह अत्यन्त सरलमना एव अपने समर्पित वचनो से सम्राट् श्रेणिक को मत्र मुग्ध बनाने वाली थी।

राजा श्रेणिक प्रत्येक ऋतु मे उसके शरीर की विशेष रूप से सम्हाल करता रहता था। यौवन अपने आनन्द की समरसता से व्यतीत हो रहा था। इसी योवनावस्था से सपृक्त धारिणी महारानी एक बार अपने शयनकक्ष मे शयन कर

(क) अन्त.पुर- रानियो का निवास गृह
(ख) सचिक्कण-चिकने
(ग) मधुप-भ्रमर
(घ) त्रिवली-नाभि पर बनी तीन रेखाएँ

रही थी। उसका वह शयनकक्ष मनमोहक चित्रशाला की शोभा को विजित कर रहा था। शयन-घर की भित्तियो पर बने अनेक पशु-पक्षियो के आकर्षक चित्र बरबस मन को मोह लेते थे। स्थान-स्थान पर जडित मणियो का उज्ज्वल प्रकाश रात्रिजन्य अधकार का पराभव कर रहा था। सुगधित द्रव्यो की सुगध से सुगधित शयनागार गधवट्टिका की तरह सुशोभित हो रहा था।

उस उत्तम कक्ष मे महारानी के शरीर प्रमाण शय्या बिछी थी। उस पर अत्यन्त सुकोमल बिस्तर, जिसके दोनो तरफ तकिये लगे थे, उस पर कशीदा कढा हुआ आकर्षक चद्दर बिछा था। ऐसी सुन्दर शय्या पर शयन करती हुई महारानी धारिणी अर्धरात्रि के समय अर्धजागृत अवस्था मे थी। इसी समय महारानी ने देखा कि सप्त हाथ ऊँचा चॉदी के पर्वत के समान एक श्वेत वर्ण वाला गजराज आकाश से उतर कर उसके (धारिणी के) मुख मे प्रविष्ट हो रहा है। इस उत्तम, उदार स्वप्न को देखकर महारानी धारिणी अत्यन्त प्रमुदित हुई। जागृत होकर शय्या पर बैठी और चितन किया—यह शुभ स्वप्न कल्याणदायक, पाप विनाशक, उत्तम फल प्रदायक है। अत्यन्त मगलकारी यह स्वप्न शुभ फलसूचक है। मुझे महाराजा को इसी समय यह स्वप्न बता देना चाहिए ताकि स्वप्न का परिपूर्ण फल सप्राप्त हो जायेगा। ऐसा चितन कर महारानी अपनी शय्या से उठी। धीरे-धीरे आहट रहित कदमो से अपने शयन कक्ष से बाहर निकली और जहॉ महाराजा श्रेणिक का शयन कक्ष था, वहॉ पर आई। आकर जहॉ महाराजा श्रेणिक शयन कर रहे थे वहॉ पर पहुँच गयी और पहुँच कर मधुर-मधुर शब्दों से राजा को सम्बोधित किया—राजन् उठिये .. नृपति उठिये राजा ने ऑखे खोली तो देखा महारानी धारिणी खडी हे। राजा ने पूछा—महारानी ! तुम .. अभी?

महारानी—राजन् ! में विशेष प्रयोजन से आई हूँ।

राजा—बोलो।

महारानी—राजन् ! आज मैने मगलकारी स्वप्न देखा है।

राजा—अच्छा, बताओ क्या देखा?

महारानी—एक सप्त हस्त ऊँचाई वाला श्वेतवर्णी युवा हस्ती मेरे मुख मण्डल मे प्रविष्ट हुआ।

राजा—सुन्दर स्वप्न है। समय आने पर तुम एक शूरवीर शिशु का प्रसव करोगी।

महारानी—मन भी यही चितन किया था। अब में अपने शयन-कक्ष मे जा रही हूँ। यों कहकर महारानी अपने शयनकक्ष मे चली जाती हे ओर धार्मिक कहानियों आदि का स्मरण करते हुए जागृत रहकर अवशेष रात्रि व्यतीत करती है।

प्रात काल होने पर राजा स्वप्नफल जानने के लिए स्वप्न पाठको को बुलाता है। स्वप्नपाठक भी स्वप्न का वही अर्थ बतलाते है, जो महाराजा बतलाते है। राजा परिपूर्ण धनादि देकर स्वप्नपाठको को विदा करता है। महारानी सुखपूर्वक अपने गर्भ का निर्वहन करने लगती है।

दो मास अत्यन्त शुभ भावो के साथ व्यतीत हुए। तीसरा मास प्रारम्भ हुआ। इसी तृतीय मास मे महारानी धारिणी को एक विचित्र दोहद पैदा हुआ कि आकाश मे श्वेत, पीत, रक्त, नील और कृष्ण–इन पचवर्णी बादलो के घिरने से भूमण्डल का दृश्य रमणीक बन गया है। मन्द-मन्द बौछारो से धूलि जम गयी है। पृथ्वी रूपी रमणी ने हरी घास का कचुक (वस्त्र) धारण कर लिया है। वृक्षो पर नव-नवीन पल्लवो का आगमन हो गया है। निर्झर का श्वेत जल कल-कल का निनाद करता हुआ तीव्र गति से बह रहा है। पुष्पो पर आगत पराग अपनी परिमल[क] से वातावरण को सुगधित बना रहा है। उन पर भ्रमर गुजार कर रहे हैं। वृक्षो की टहनियो पर बैठे मयूर मेघो की घटाओ को देखकर केकारव[ख] कर रहे है तो कहीं तरुण मयूरियो को देखकर मयूर पख फैलाकर अद्भुत नर्तन कर रहे हैं। आकाश मे उडते हुए चक्रवाक और राजहस मानसरोवर की ओर जा रहे हैं। ऐसे सुन्दरतम पावस काल के समय जो स्त्रियॉ अपने पतियो के साथ वैभारगिरि पर्वत पर विहार कर रही हैं, आनन्द ले रही हैं, वे धन्य हैं।

वे माताऍ धन्य हैं जिनके पैरो मे नूपुर, कटि[ग] पर करधनी[घ] और वक्षस्थल पर दिव्य हार सुशोभित हो रहे हो। कलाइयो पर सुन्दर कडे, अगुलियो मे अगूठियॉ तथा भुजाओ पर भुजबन्द बॅधे हो। जिनके गात्र पर ऐसा वेशकीमती बारीक वस्त्र सुशोभित हो जो मात्र नाक के निश्वास से उडने लगे। जिनके मस्तक पर पुष्पमालाऍ शृगारित हो। इस प्रकार साज-सज्जा समन्वित सेचनक हस्ती पर आरूढ होकर, कोरट की माला का छत्र धारण किये, श्वेत चामरो सहित हस्ती रत्न के स्कन्ध पर राजा श्रेणिक के साथ बैठी हो। चतुरगिणी सेना से परिवृत, अनेक वाद्यो की ध्वनियो तथा अनेक सुगन्धित पदार्थो की सुगन्ध से सुगन्धित राज्य के मुख्य मार्गो से विहरण करती हुई, अनेक नागरिको द्वारा अभिनन्दन की जाती हुई वैभारगिरि पर्वत पर पहुॅच जाये। वहॉ वैभारगिरि के निचले हिस्सो मे सघन तरुवृन्दो के झुरमुटो मे, लताकुजो मे परिभ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है। इस प्रकार मेघ-घटाऍ घिरने पर मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करना चाहती हूॅ।

(क) परिमल–सुगन्ध
(ख) केकारव–मयूर को आवाज
(ग) कटि–कमर
(घ) करधनी–कदोरा

लेकिन उस समय पावस ऋतु का समय न होने से धारिणी का दोहद पूर्ण न हो सका। तब धारिणी म्लानचित्त वाली, म्लानवदना, भूख सहने से क्लान्त शरीर वाली सभी मनोरजनादि का परित्याग करके भूमि की तरफ दृष्टि गड़ाकर अश्रुपात करने लगी। दासियो ने इस प्रकार महारानी को देखा तब उन्होने पूछा–रानी साहिबा, क्या बात है? रानी साहिबा क्या अपराध हुआ? लेकिन महारानी तो मौनपूर्वक अश्रुमुचन करती रही। तब दासियॉ राजा श्रेणिक के पास पहुॅची और निवेदन किया–महाराज ! महारानी धारिणी महलो मे आर्तध्यान कर रही हैं। हमने उनसे बार-बार पूछा, लेकिन वे रुदन का कारण हमे बता नहीं रही हैं।

यह श्रवण कर स्वय श्रेणिक महारानी धारिणी के समीप आये और रुदन करती धारिणी को देखकर पूछा–देवी ! क्या अपराध हुआ है? देवी ! तुम रुदन क्यो कर रही हो? (फिर भी रानी मौन रहती है।) देवी ! क्या मै तुम्हारे हृदय का दु ख श्रवण करने योग्य नहीं हूॅ जो तुम अपने हृदय की वार्ता मुझसे छिपा रही हो।

धारिणी–स्वामिन् ! ऐसी बात नहीं। मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है कि मेघ-घटाएँ घिरने पर मैं वैभारगिरि की तलहटी मे जाकर वर्षा ऋतु का आनन्द लूॅ, लेकिन अभी मेरा दोहद पूर्ण नहीं होने से मैं जीर्ण-शीर्ण शरीर वाली हो गई हूॅ।

श्रेणिक–महारानी आश्वस्त रहो। मै तुम्हारा दोहद पूर्ण करने का प्रयास करता हूॅ।

रानी (ऑखो से देखकर इशारे में) स्वीकृति प्रदान करती है।

महाराज वहॉ से चलकर उपस्थान शाला (सभा स्थल) मे सिहासन पर आरूढ होते हैं और दोहदपूर्ति का उपाय चितन करते हैं, परन्तु कोई उपाय उन्हे नजर नहीं आता। वे चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं। तभी अभयकुमार पिताश्री के चरण वदन के लिए उपस्थित होते हैं। पिता को चिन्ताग्रस्त देख, अभयकुमार पूछते हें–पिताश्री, लगता है आप चिताग्रस्त हें? आपकी चिता का क्या कारण है?

पिता–अभय ! तुम्हारी मॉ धारणी को मेघ-घटाएँ आच्छादित होने पर वैभारगिरि की तलहटी मे घूमने का दोहद पेदा हुआ हे। वह पूर्ण करने का उपाय नहीं दिख रहा है।

अभयकुमार–पिताश्री ! यह कार्य आपके अनुग्रह से मै सम्पन्न कर दूॅगा।

अभयकुमार के वचनों को श्रवण कर श्रेणिक आश्वस्त हो गया। इधर अभयकुमार ने चितन किया कि सौधर्म कल्प मे रहने वाला देव मेरे पूर्वभव का मित्र हे। अष्टमभक्त

करके उसकी आराधना करता हूँ, तो वह मेरा इच्छित पूर्ण कर देगा।

ऐसा चितन कर अभयकुमार पौषधशाला[ख] मे गया और वहाँ अष्टम भक्त (तेला) पचक्ख कर पौषध[ग] करके देव की आराधना करने लगा। तब उस सौधर्म कल्पवासी देव का आसन चलित हुआ। उसने अवधिज्ञान लगाकर देखा कि मेरा मित्र तेले तप की आराधना करके मुझे याद कर रहा है, अत मुझे उसके पास जाना चाहिए। वह देव उत्तम वस्त्र धारण कर अभयकुमार के पास आता है और अभयकुमार से कहता है—देवानुप्रिय ! मैं अत्यन्त अनुराग से तुम्हारी प्रीति से आकर्षित होकर आया हूँ। अब बतलाओ कि मैं तुम्हारी कौनसी मनोकामना पूर्ण करूँ।

तब अभयकुमार ने पौषध को पारा और पार कर कहा—देवानुप्रिय ! मेरी छोटी माता धारिणी को अकाल मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ है, उसको पूर्ण करो।

देव—तुम निश्चित रहो, मैं उस दोहद को पूर्ण किये देता हूँ।

उसी समय वह देव वैभारगिरि पर गया। उसने वैक्रिय समुद्घात किया और वहाँ जैसा दोहद धारिणी ने देखा वैसे पचवर्णी बादल और विद्युतयुक्त वर्षा का दृश्य उपस्थित कर दिया और पौषधशाला मे आकर अभयकुमार से निवेदन किया कि मैंने वैभारगिरि पर वर्षा ऋतु का दृश्य उपस्थित कर दिया। तुम अपनी माँ धारिणी का दोहद पूर्ण करो।

अभयकुमार ने पौषधशाला से निकलकर राजभवन मे प्रवेश किया और राजा श्रेणिक से कहा—मेरे मित्र देव ने वैभारगिरि पर वर्षा ऋतु का दृश्य उपस्थित कर दिया है, अत आप मेरी लघु माता का दोहद पूर्ण करे।

श्रेणिक राजा अत्यन्त हर्षित होता हुआ चतुरगिणी[घ] सेना सजाता है और सेचनक हस्ति पर सवार होकर अपने पीछे धारिणी को बिठलाता है, उत्तम चॅवर बिंजाती हुई, कोरट के सुमनो का छत्र धारण किये, अनेक नागरिकों द्वारा अभिनन्दन की जाती हुई वह वैभारगिरि की तलहटी मे पहुँची। वहाँ आराम[ङ], उद्यान[च], लता मण्डप[छ] आदि मे खडी होती हुई, जलाशयो मे स्नान करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है। तत्पश्चात् पुन राजभवन मे लौट आती है और विपुल भोग भोगती हुई विचरण करती है।

(क) अष्टमभक्त-तेला (ख) पौषधशाला-पौषध क्रिया करने का स्थान

(ग) पौषध-श्रावक का ग्यारहवाँ वृत्त (एक दिन-रात के लिए सावद्य क्रियाओ का त्याग करना)

(घ) चतुरंगिणी-हाथी-घोड़े, रथ और पैदल

(ङ) आराम-स्त्री, पुरुषो के विश्राम करने का मण्डप

(च) उद्यान-फूल, फल वाले झाड़ो से व्याप्त बगिचा

(छ) लता मण्डप-लता का बना हुआ घर

अभयकुमार माताश्री का दोहद पूर्ण होने पर पुन पौषधशाला मे आता है और पूर्वभव के देवमित्र को सत्कार-सम्मान सहित विदा करता है।

धारिणी महारानी हितकारी, पथ्यकारी आहार से गर्भ का सरक्षण करती हुई 9 मास 7½ रात्रि व्यतीत होने पर सुन्दर पुत्र रत्न का प्रसव करती है। राजा श्रेणिक पुत्र का जन्मोत्सव जात कर्मादि सस्कार करता हुआ।[133] बडे ठाठ-बाट से मनाता है और उसका गुणनिष्पन्न नाम "मेघ" रखता है।[134]

मेघ राजघराने मे पाच धायो[XLIV] द्वारा परिपालित[135] निरन्तर वृद्धि प्राप्त कर रहा है। अष्ट वर्ष मे कलाचार्य के पास गया और उसने 72 कलाओ[XLV] का ज्ञान सीखा।[136] तत्पश्चात् वह बहत्तर कलाओ मे निष्णात हो गया। उसकी चेतना ज्ञान के सौम्य प्रकाश मे जागृत बन गयी। अठारह देशी भाषाओ मे निष्णात बन गया। गीत और नृत्य के साथ-साथ युद्ध मे भी वह कुशल बन गया और वह भोग भोगने मे समर्थ बन गया तब तरुणाई की देहलीज पर आने पर माता-पिता ने उसके आठ प्रासाद[XLVI] बनवाये और अष्ट कन्याओ के साथ पाणिग्रहण किया जो कि चौंसठ कलाओ[XLVII] मे निष्णात थी। नूपुरो की झकार और मृदगो की वाद्य ध्वनियो का आनन्द लेता हुआ मेघकुमार नवतरुणियो के साथ भौतिक ऋद्धि का उपभोग करने लगा।

सौम्य समागम :

मण्डिकुक्षी मे मेघकुमार महलो का आनन्द ले रहा है और राजा श्रेणिक अपनी सुन्दर राज्य व्यवस्था से राज्यधुरा का सचालन कर रहा है। राजकीय कार्यो मे व्यस्त रहा हुआ वह यदा-कदा मन बहलाने के लिए उद्यान की सैर कर लिया करता था। एक दिन उसके मन मे राजगृह के बाहर पर्वत की तलहटी मे बने हुए मण्डिकुक्षि उद्यान की सैर करने का चितन चला और वह उसी ओर चल पडा।

पर्वत की तलहटी मे बना मण्डिकुक्षि[क] उद्यान अपनी रमणीय छटा के कारण विख्यात था। मनमोहक आकर्षक छटा विकीर्ण करने वाले विविध प्रकार के पुष्पो की भीनी-भीनी महक से सारा वातावरण सुगधित बन रहा था। वृक्षो की डालियो पर लटकते फलो से वह दर्शको का मन मोहने वाला था। पादपो की डालियो से सलग्न लताओ की कमनीयता देखते ही बनती थी। अनेक प्रकार के पक्षियो के कलरव से अनुगुजित वह उद्यान विहँसता-सा प्रतीत होता था। एकात शात वातावरण मे वह नन्दन वन समान रमणीय लग रहा था। राजा

(क) मण्डिकुक्षि–राजगृह नगर का एक उद्यान

श्रेणिक इसी मण्डिकुक्षि उद्यान मे पहुँचे और वहाँ घूम-घाम कर उसकी अभिनव छटा का दिग्दर्शन करने लगे। घूमते-घूमते अचानक उनकी दृष्टि एक वृक्ष पर पडी। उस ओर देखकर—ओह ! वृक्ष के नीचे यह कौन यह कौन खडा है। अहो ! रूप-सम्पदा की साक्षात् प्रतिमूर्ति, तरुणाई की सुन्दर आभा धारण किये एक मुनि, जो सुकुमार है, समाधि भावो मे लीन सयत अवस्था मे ध्यानस्थ खडा है। राजा श्रेणिक उसे अपलक निहारने लगा। निहारते-निहारते अत्यन्त भावुक होकर सोचता है—अहो ! कितना सुन्दर वर्ण है, कितना नेत्राकर्षक रूप है, अरे ! इस आर्य का कैसा सौम्य स्वरूप है। इसके वदन पर कितनी क्षमा झलक रही है। कैसी निर्लोभी भव्य मूरत है। कैसी भोगो से विरक्ति है।

क्या मैं भी जाऊँ इसके पास? इसकी भव्याकृति, नवागत परिमल बनकर, मधुप बने मुझे समाकृष्ट कर रही है। इस यौवन की देहली पर ये योगी क्यो बना क्यो इतनी कठिन साधना कर रहा है . जाऊँ जाऊँ इससे पूछू ?

ऐसा विचार कर मगधेश मुनि के पास पहुँच कर उन्हे अपलक निहारते रहते हैं। जब मुनि ध्यान खोलते है, तब राजा आदक्षिण प्रदक्षिणा करके उन्हे वदन करते हैं और मुनि के न अतिनिकट, न अतिदूर रहकर अजलिबद्ध होकर पूछते हैं—हे आर्य ! आपके अग-प्रत्यगो से तरुणाई की आभा प्रस्फुटित हो रही है। इस तरुणाई मे भोग भोगने के इस समय आप प्रव्रजित हो गये, आपने श्रमण धर्म स्वीकार कर लिया, यह देखकर मुझे अत्यन्त विस्मय हो रहा है। अत आप बताइये कि आपने भोगावस्था मे योग क्यो लिया?

अनाथी मुनि—राजन् ! मैं अनाथ हूँ। मेरा कोई नाथ नहीं है। मेरे पर दया, करुणा करने वाला कोई नही था, इसलिए नृपति ! मैंने योग धारण किया।

राजा श्रेणिक (अट्टहास करते हुए)—अरे ! अनाथ ! इतने वैभवशाली दिखलाई दे रहे हो, तब कैसे तुम अनाथ थे? चलो, तुम्हारी बात स्वीकार भी कर लेता हूँ कि तुम अनाथ थे, लेकिन अब मैं तुम्हारा नाथ बनता हूँ, तुम मेरे साथ चलो और मित्र एव ज्ञातिजनों[क] से परिवृत[क] होकर विषय-सुख का उपभोग करो, क्योकि मनुष्य भव दुर्लभ है।

अनाथी मुनि—हे मगधाधिप श्रेणिक ! तुम स्वय अनाथ हो। स्वय अनाथ होते हुए मेरे नाथ कैसे बन पाओगे?

(क) ज्ञातिजन-सजातीय माता-पिता सम्बन्धी परिवार (क) परिवृत-युक्त

मुनि द्वारा ऐसा कहने पर श्रेणिक का चित्त अत्यन्त व्याकुल बन गया। मन मे सोचता है, एक तरफ यह मुझे मगध नरेश कहता है और दूसरी ओर मुझे अनाथ ऐसा क्यो इस प्रकार विस्मयान्वित व्याकुल चित्त से वह मुनि से बोला—मुनि ! मेरे पास अश्व, हस्ती, अनेक परिकर[क] और विशाल अन्त पुर है। मैं अपने अन्त पुर[XLVIII] मे उत्तम मानवीय ऋद्धि का भोग-कर्ता हूँ। मेरा आदेश सभी के लिए सर्वोपरि है और मेरा प्रभुत्व भी। भोगो की श्रेष्ठ सम्पदा मेरे चरणो मे समर्पित रहती है। इतना होने पर भी मैं अनाथ कैसे हूँ? भगवन् आप कम-से-कम मिथ्या तो मत बोलो।

मुनि—हे पृथ्वीपाल ! तुम अनाथता को नहीं जानते कि सनाथ राजा भी अनाथ हो सकता है। राजन् ! तुम एकाग्र चित्त होकर सुनो कि वास्तव मे मनुष्य अनाथ कैसे हो सकता है? और मैंने आपको अनाथ क्यो कहा?

राजन् ! प्राचीनकालीन नगरियो मे असाधारण अद्वितीय कौशाम्बी[XLIX] नामक नगरी थी। उसमे प्रचुर धन वाले मेरे पिता निवास करते थे। उनके घर मे लक्ष्मी सदैव क्रीडा करती रहती थी। मैं भी शनै -शनै वहॉ वृद्धि को प्राप्त होने लगा। युवावस्था मे मैंने प्रवेश ही किया था कि एक दिन मेरे नेत्रो मे असाधारण पीडा होने लगी। इतनी जबरदस्त पीडा कि जिसने मेरे पूरे गात्र मे असाधारण जलन पैदा कर दी। राजन् ! क्या बताऊॅ, वह कैसी पीडा थी, मानो कोई शत्रु क्रुद्ध होकर नाक-कानादि छिद्रो मे परम तीक्ष्ण शस्त्र घोप दे, उससे जो भयकर वेदना होती है, वैसी वेदना मेरी ऑखो मे हो रही थी।

ऑखो की वेदना के साथ-साथ वज्र के प्रहार के समान घोर और परम दारुण वेदना मेरी कमर, हृदय और मस्तिष्क मे हो रही थी। मैं वेदना से छटपटा रहा था। तडफ रहा था। एक-एक पल निकालना भारी पड रहा था। तब मेरे पिता ने मेरी वेदना को उपशात करने के लिए विद्या और मत्र से चिकित्सा करने वाले मात्रिको एव जडी-बूटी से चिकित्सा करने मे विशारद, शास्त्र कुशल, आयुर्वेदाचार्यो को जगह-जगह से बुला लिया।

उन्होने जिस प्रकार से मेरी वेदना उपशात होती हो, वैसी मेरी चतुष्पाद (वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक रूप) चिकित्सा[LX] की, लेकिन राजन् ! वे मेरी पीडा नहीं मिटा सके, यही मेरी अनाथता है।

तब मेरे पिता ने मेरे कारण उन चिकित्सको को समस्त सार-भूत वस्तुऍ दे दी कि तुम ये सब ले लो, लेकिन मेरे लाल को ठीक कर दो... .... ठीक कर दो..... .. किन्तु तब भी वे चिकित्सक मुझे रोग-मुक्त न कर सके, यह मेरी अनाथता है।

(क) परिकर–परिजन, नौकर–चाकर

राजन् ! मेरी माता ! वह पुत्र-शोक के दुःख से सदैव पीडित रहती थी, लेकिन वह मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकती, यह मेरी अनाथता है।

मेरे सहोदर छोटे-बडे भाई मेरे दुःख दूर करने का भरसक प्रयत्न करते रहे, लेकिन वे मुझे दुःख से विमुक्ति नहीं दिला सके, यही मेरी अनाथता है।

राजन् ! मेरी अनुजा, अग्रजा बहिने मेरे दुःख से व्यथित होकर विविध प्रयत्न करती रही, लेकिन उन्हे सफलता नहीं मिली, यह मेरी अनाथता है।

महाराज ! क्या बताऊँ, मेरी विवाहिता पत्नी, जो सदैव मुझ मे अनुरक्त रहती थी, सदैव मेरे अनुकूल ही आचरण करने वाली थी, वह अपनी अश्रु-लडियो से अपने उरःस्थल को गीला करती रही। उस नव-यौवना भार्या ने मेरे लिए अन्न, पानी, स्नान, गंध[क], माला और विलेपन[ख], सभी का परित्याग कर दिया और उसके अनुराग का तो कहना ही क्या, एक क्षण के लिए भी वह उस समय मेरे से दूर नहीं गयी, लेकिन फिर भी वह किंचित् मात्र भी मेरा दुःख दूर नहीं कर सकी, यह मेरी अनाथता है।

यह सब देखकर मेरे मन की बाहर से भीतर की यात्रा प्रारम्भ हो गयी और मैंने चिंतन किया–ओह ! जीव इस अनंत संसार मे अवश्य ही दुःख-वेदना का बारम्बार अनुभव करता है, अब यदि मुझे इस असह्य शारीरिक दुःख से विमुक्ति मिल जाये तो मैं क्षमावान्, इन्द्रियजयी, [ग]आरम्भ-रहित अणगार बन जाऊँगा।

हे राजन् ! ऐसा चिंतन कर मैं निद्रा लेने के लिए प्रयासरत हुआ और मुझे नींद आ गयी। जैसे-जैसे रजनी व्यतीत होने लगी, वैसे-वैसे मेरी वेदना भी शनैः-शनैः नष्ट होने लगी और प्रातःकाल के समय मे, मैं निरुज-निरामय बन गया।

जब मैं प्रातःकाल जागृत हुआ तो मैने अपना विचार अपने पूज्य माताजी, पिताजी आदि के समक्ष रखा। उन्होने प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति प्रदान करदी, तब मैंने संयम अंगीकार कर लिया।

राजन् ! संयम लेने के पश्चात् मैं स्वयं का एवं त्रस, स्थावर प्राणियो का नाथ (रक्षक) बन गया, क्योकि कुमार्ग पर प्रवृत्त आत्मा ही वैतरणी नदी और कूटशाल्मलि वृक्ष है और सुमार्ग पर प्रवृत्त आत्मा ही कामधेनु गाय एवं नन्दन वन है। आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्ता और विकर्ता-विनाशक है। सद्प्रवृत्ति करने पर आत्मा ही मित्र बन जाती है और दुष्प्रवृत्ति करने पर आत्मा ही शत्रु बन जाती है।

लेकिन राजन् ! केवल संयम लेने मात्र से व्यक्ति नाथ नही बन जाता।

(क) गंध-गंध प्रदान वस्तु के सात भेद होते है–मूल, त्वचा, काष्ठ, निर्यास (कपूर) पत्र, पुष्प और फल।
(ख) विलेपन–चन्दनादि का लेप (ग) आरम्भ–हिंसा रहित

कई बार सयमी अणगार भी अनाथ बना रहता है। इसका यह कारण है कि अत्यन्त कायर व्यक्ति सयम लेने के पश्चात् भी दु ख का अनुभव करता है। प्रमाद का आश्रय लेकर महाव्रतो का सम्यक् परिपालन नहीं कर पाता। स्वय की आत्मा का निग्रह नहीं करने से रसो मे आसक्त रहकर राग-द्वेष का समूल उच्छेद नहीं कर सकता। ऐसा कायर व्यक्ति सयम लेकर भी साधु द्वारा आचरित पॉच समिति और तीन गुप्ति का सावधानी से पालन नहीं करता, अतएव वह वीरो द्वारा आचरित सयम मार्ग पर सही रीति से अनुगमन नहीं कर सकता।

वह कायर व्यक्ति अहिसादि महाव्रतो मे अस्थिर, तप और नियम से परिभ्रष्ट, चिरकाल तक लुचनादि परीषहो से आत्मा को परितापित करके भी भव-पारगामी नहीं होता।[137] वह कायर व्यक्ति खाली मुट्ठी की तरह निस्सार, खोटे सिक्के के तरह अप्रमाणित एव वैडूर्यमणि की तरह चमकने वाली कॉचमणि की तरह मूल्य रहित होता है।

जो साध्वाचार विहीन कुशीलों[क] का वेश एव मुनियो का चिह्न–रजोहरण आदि धारण करके अपनी जीविका चलाता है, असयमी होने पर भी स्वय को सयमी कहता है, वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त होता है।

राजन् ! जैसे पीया हुआ कालकूट विष, विपरीत पकडा हुआ शस्त्र और अनियत्रित वेताल स्वय का विनाशक होता है, वैसे ही विषय-विकारो से युक्त मुनि भी धर्म का विनाशक होता है। यह उसकी अनाथता है।[138]

जो मुनि लक्षण-शास्त्र[ख], स्वप्न-शास्त्र[ग] और निमित्त-शास्त्र[घ] का प्रयोगकर्ता, कौतुक कार्यो मे समासक्त, बाजीगर आदि तमाशो से कर्मबध रूप जीविका करता है, वह इस कर्मफल भोग के समय किसी की शरण को प्राप्त नहीं करता, यह उसकी अनाथता है।[139]

शीलविहीन द्रव्य अणगार अपने घोरातिघोर अज्ञान के कारण दु खी बनकर विपरीत दृष्टिवाला बनता है। फलत वह मुनिधर्म की विराधना करके नरक-तिर्यंच योनि मे सतत आवागमन करता है, यह उसकी अनाथता है।

उस पापात्मा साधु की आत्मा इतना घोर अनर्थ करती है, जितना घोर अनर्थ गला काटने वाला शत्रु भी नहीं करता, क्योकि गला काटने वाला वधक एक जीवन का घात करता है जबकि दुष्प्रवृत्तिशील साधु की आत्मा जन्म-जन्मान्तर

(क) कुशील–कुत्सित आचार वाला

(ख) लक्षण-शास्त्र–शुभाशुभलक्षण जानने का शास्त्र, अष्टांग निमित्त मे से एक

(ग) स्वप्न शास्त्र–स्वप्न के शुभाशुभ परिणाम बतलाने वाले एक शास्त्र, 29 पाप सूत्रों मे से एक

(घ) निमित्त शास्त्र–भावी सुख–दु ख आदि का कथन करने वाला शास्त्र

का घात करती है। यह तथ्य वह कायर मुनि मृत्यु के मुख मे पहुँचने पर पश्चात्तापपूर्वक जान पायेगा। वह साधक आराधना मे विपरीत दृष्टि रखता है, अतएव उसकी श्रमणत्व मे रुचि निरर्थक है। वह इहलोक, परलोक मे सुख से रहित चिता से क्षीण हो जाता है।

इस प्रकार स्वच्छन्द[LXI] और कुशील साधक जिनेश्वर भगवान् के मार्ग की विराधना करके निरतर परिताप को प्राप्त होता है।[140] जैसे मासलोलुप गीध पक्षिणी मास का टुकडा मुँह मे लेकर चलती है, तब दूसरे पक्षी उस पर झपट पडते है, उस समय वह पक्षिणी सामर्थ्यरहित होकर उनका प्रतिकार नही करने से पश्चात्ताप करती है, वैसे ही भोगो मे गृद्ध साधु इहलौकिक- पारलौकिक अनर्थ प्राप्त होने पर न स्वय की रक्षा कर सकता है और न दूसरो की। अतएव ऐसा अनाथ मुनि शोक-सागर मे निमज्जित हो जाता है।

इसलिए बुद्धिमान साधक को कुशीलो के मार्ग का परित्याग कर महानिर्ग्रन्थो के पथ का अनुसरण करना चाहिए। ऐसा करने से साधु ज्ञान और शील मे रँगकर, अनुत्तर संयम का पालक बनकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

अनाथी मुनि ने अपनी दिव्य देशना प्रवाहित की जिसे राजा श्रेणिक स्तब्ध बना श्रवण कर रहा था। श्रेणिक ने देखा, वस्तुत ये मुनि कर्मशत्रुओ का हनन करने मे उग्र, इन्द्रियजयी, महातपस्वी, महाप्रतिज्ञ, महायशस्वी है। इन्होने मुझे आज पहली बार अनाथ-सनाथ का सुन्दर स्वरूप बतलाया है। अतएव अब इनका मधुर-गिरा से अभिवादन करना चाहिए। ऐसा चितन कर राजा श्रेणिक ने हाथ जोडकर कहा—भगवन् ! आज अनाथता का यथार्थ स्वरूप आपश्री ने मुझे बतला दिया है। हे महर्षि ! आपका जन्म और जीवन सफल है। जिनेश्वरो के मार्ग मे स्थित आप सच्चे सनाथ एव बाधव हैं। आप सभी अनाथो के नाथ हैं। मैं आपसे क्षमायाचना करता हूँ और आपसे शिक्षित होने की अभिलाषा रखता हूँ।

मैंने आपसे प्रश्न पूछकर आपकी ध्यान साधना मे जो विघ्न समुपस्थित किया, आपको भोगो के लिए आमन्त्रित किया, एतदर्थ क्षमाप्रार्थी हूँ। इस प्रकार अणगार सिह उस मुनि की स्तुति करके विमल मनवाला, राजा श्रेणिक धर्म मे अनुरक्त हो गया। जिनेश्वरो के मार्ग पर उसकी श्रद्धा का नवजागरण हुआ। भक्ति से उसके रोमकूप उल्लसित हो गये और वह मुनि भगवत को श्रद्धाभिषिक्त होकर वंदन करके लौट गया।[141]

जिनानुरागी : श्रेणिक

नृपति श्रेणिक अनाथी मुनि से सम्पर्क करके अत पुर मे लौट गये, तथापि अब उनका मन धर्मानुराग से रजित हो गया। वे अपने अत पुर मे अपनी महारानियो

के साथ भी धर्म चर्चा करने लगे। चेलना महाराजा की इस प्रकार की अभिरुचि देखकर गद्गद होने लगी, क्योकि इससे पहले महाराजा की धर्म के प्रति कोई रुचि नहीं थी। यद्यपि चेलना जिनधर्मानुरागिणी थी तथापि महाराजा का इससे पहले धर्म के प्रति कोई शेष अनुराग नहीं था।

राजा श्रेणिक के बारे मे अनुश्रुति मिलती है कि वह बौद्ध धर्मानुयायी था लेकिन इतिहासज्ञो की दृष्टि से यह अनुश्रुति अप्रामाणिक ठहरती है। त्रिषष्टि शलाका पुरुष चारित्र मे आचार्य हेमचन्द्र ने श्रेणिक के पिता प्रसेनजित को भगवान् पार्श्वनाथ का व्रतधारी श्रावक बतलाया है।[142] डा काशीप्रसाद जायसवाल के मतानुसार श्रेणिक के पूर्वज काशी से मगध आये थे और इसी राजवश मे भगवान् पार्श्वनाथ पैदा हुए थे। अतएव श्रेणिक का कुलधर्म भी जैन ही प्रमाणित होता है।[143] डा ज्योतिप्रसाद जैन के अनुसार श्रेणिक का भगवान् महावीर के जीवन के साथ निकटस्थ सम्बन्ध रहा है। वह भगवान् महावीर के उपासक राजाओ मे प्रमुख था, दिगम्बर परम्परानुसार वह उपासक सघ का प्रमुख था।[14

इतिहास मे श्रेणिक के बारे मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि उसको 'वाहीक' कुल का सम्राट् बताया है। वाहीक का तात्पर्य है—बहिष्कृत। जब हैहयवशी क्षत्रियो ने सगठित होकर वैशाली गणराज्य की सस्थापना की तब मगध के क्षत्रिय, जो सभवत हैहयवशी थे, उन्होने इस गणराज्य मे सम्मिलित होने से मना कर दिया तब 9 मल्ली नरेशो और 9 लिच्छवी नरेशो ने मगध के राजकुल को क्षोभ के कारण बहिष्कृत कर दिया। इसी कारण श्रेणिक वाहीक कुल का कहलाने लगा।[145]

प्राचीन अनुश्रुति के अनुसार इस प्रकार श्रेणिक के कुल का निर्वासन करने के कारण वह जैनधर्म से विमुख बन गया। कई लेखको ने उल्लेख किया है कि नन्दीग्राम के ब्राह्मणो ने उसे अन्न-पानी नहीं दिया तो वह बडा खिन्न हुआ, तब उसने बौद्ध मठ का आश्रय लिया, वहॉ उसका स्वागत-सत्कार हुआ। इस प्रकार आपत्तिकाल मे आश्रय दिया जाने पर वह बौद्ध श्रमणो के प्रति अनुराग रखने लगा। कुछ लोगो का कहना है कि वह बौद्ध बन गया और राज्यारोहण के पश्चात् उसने बौद्ध श्रमणो को आश्रय दिया।[146]

श्रेणिक रास एव *श्रेणिक बिम्बसार* मे ऐसा उल्लेख है कि चेटक ने अपनी कन्या श्रेणिक को देने से इनकार कर दिया था, क्योकि वह बौद्ध मार्गानुयायी था और विवाह के पश्चात् भी श्रेणिक और चेलना का धार्मिक विवाद चलता रहा। लेकिन इन सबका कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। त्रिषष्टि शलाकाकार ने बतलाया है कि चेटक ने अपनी कन्या श्रेणिक को इसलिए नहीं दी कि वह वाहीक कुल का था। यहॉ श्रेणिक के परधर्मी होने की कोई चर्चा ही नहीं

मिलती। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि श्रेणिक के बौद्ध होने की अनुश्रुति हेमचन्द्राचार्य के बाद की अर्थात् बारहवी शताब्दी के बाद की है।

इतिहास लेखको का यह अभिमत है कि श्रेणिक वस्तुत जन्मजात जैन था, किन्तु बीच के काल मे उसका जैन मुनियो से सम्पर्क रह नहीं पाया।[147] कालान्तर मे मण्डिकुक्षि उद्यान मे उसका अनाथी मुनि से सम्पर्क हुआ। इसी सम्पर्क से वह श्रमण-धर्म के प्रति अनुरक्त हो गया।

श्रमण-धर्म मे श्रेणिक की अनुरक्ति होने पर वह चेलना आदि महारानियो से इस सम्बन्ध मे चर्चा करता रहता था। उसके मन मे ललक भी पैदा होती थी कि राजगृह मे कोई श्रमण भगवान् आये तो मैं उनकी उपासना करूँ। जब उसे राजगृह के आस-पास भगवान् महावीर के विचरण का पता चला तब से उसके मन मे भगवान् महावीर के दर्शनो की ललक पैदा हो गयी। अपनी इसी अभिलाषा को दिल मे सजोये एक दिन स्नानादि करके, वस्त्रालकारो से विभूषित होकर कोरण्ट पुष्पो की माला युक्त छत्र धारण करके सभा स्थान मे पूर्वाभिमुख होकर सिहासन पर बैठा और अपने प्रमुख अधिकारियो को बुलाकर आदेश दिया–देवानुप्रियो ! राजगृह के बाहर जहॉ लतागृह, उद्यान, शिल्पशालाएँ और दर्भ के कारखाने हैं, वहॉ जो अधिकारी वर्ग है उन्हे कहो–हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा भभसार ने यह आज्ञा दी है कि पचयाम धर्म के प्रवर्तक, चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए यहॉ पधारे तब तुम उन्हे उपयुक्त स्थान पर ठहरने की आज्ञा देना और यह प्रिय सवाद मुझ तक पहुँचाना।

इस सवाद से अनुमान लगता है कि इससे पहले राजा श्रेणिक का अनाथी मुनि से सम्पर्क हो गया था इसलिए उसकी श्रद्धा मजबूत बन गयी।

राज्याधिकारी पुरुष श्रेणिक राजा का कथन श्रवण कर हर्षित हुए सतुष्टित होते है। वे अत्यन्त सौम्य भाव व हर्षातिरेक से प्रफुल्लित हृदय से हाथ जोडकर विनयपूर्वक राजाज्ञा को स्वीकार करते हैं।

तत्पश्चात् वे राजप्रासाद से निकलकर बगीचे आदि मे पहुँचकर वहॉ के अधिकारियो को राजा श्रेणिक का आदेश सुनाते हैं और पुन अपने-अपने स्थान पर लौट कर राजा से सब बात निवेदन करते है। राजा श्रेणिक भगवान् के आगमन का इतजार कर रहा है। वह पलक-पॉवडे बिछाकर प्रभु की बाट देख रहा है, तब कुछ समय पश्चात् पचयाम[क] धर्म के प्रवर्तक भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गुणशील उद्यान मे पधारते हैं। तब राजगृह नगर के तिराहो,

---

(क) पचयाम-पॉंच महाव्रत-अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह

चौराहो और राजमार्गो मे कोलाहल होने लगा कि भगवान् महावीर गुणशील चैत्य[LXII] (उद्यान) मे पधार गये हैं और लोगो के समूह के समूह भगवान् की पर्युपासना करने के लिए जाने लगे। उस कोलाहल से राजा श्रेणिक के अधिकारियों को इस वार्ता का पता लगा, तब वे श्रमण भगवान् महावीर के पास पहुँचे, उन्होने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार वदन-नमस्कार किया और उनका नाम, गोत्र पूछा, स्मृति मे धारण किया। तत्पश्चात् सभी एकत्रित होकर एकात स्थान मे गये और वहॉ आपस मे बातचीत करने लगे कि–

"हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा भभसार जिनके दर्शन के लिए पलक-पॉवडे बिछाये हैं, जिनका नाम-गोत्र श्रवण करने मात्र से श्रेणिक राजा हर्षित हृदय वाला हो जाता है, वे भगवान् महावीर गुणशील उद्यान मे विराज रहे हैं। अत राजा को जाकर ये समाचार कहने चाहिए।" सभी इस बात पर सहमत हो गये।

तब वे राजा श्रेणिक के राजमहल मे आये और हाथ जोडकर, विनयपूर्वक कहने लगे–महाराज की जय हो ! हे देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शनो के लिये लालायित रहते है वे भगवान् महावीर गुणशील उद्यान मे विराज रहे हैं।

जैसे ही राजा श्रेणिक ने यह सवाद सुना, वह अत्यन्त हर्षित होकर, अपने सिहासन से उठा और वहीं से भगवान् महावीर को वदन-नमस्कार किया। तब उन अधिकारी पुरुषो का सत्कार-सम्मान कर उन्हे जीविका योग्य विपुल दान देकर विदा किया। तत्पश्चात् नगर रक्षक को बुलाकर कहा–देवानुप्रिय ! राजगृह नगर को अन्दर और बाहर से स्वच्छ और परिमार्जित करो। उसके बाद सेनापति को बुलाकर कहा कि हाथी, घोडे, रथ और पदाति[क] योद्धागण–इन चार प्रकार की सेना को सुसज्जित करो।

तत्पश्चात् यानशाला के अधिकारी को बुलाकर कहा कि देवानुप्रिय ! श्रेष्ठ धार्मिक रथ को तैयार करके उसे यहॉ उपस्थित करो।

राजाज्ञा को प्राप्त कर सब अपने-अपने कार्य मे लग गये। यानशाला का प्रबधक यानशाला में आया। उसने रथ को नीचे उतारा, उस पर ढके वस्त्र को दूर किया, झाड-पोछ कर रथ को स्वच्छ बनाया और सुसज्जित किया। फिर वाहनशाला मे आकर उत्तम बैलो का प्रमार्जन कर उनकी पीठ पर बार-बार हाथ फेरकर उनके स्कन्ध पर ढके हुए वस्त्रो को दूर कर अलकृत किया और आभूषणो से उनके शरीर को सजाया। फिर उन बैलो को रथ में जोडकर चाबुक हाथ मे लिए सारथि के साथ रथ मे बैठकर श्रेणिक राजा के पास रथ को उपस्थित किया और निवेदन किया–स्वामिन् ! आपके लिए धार्मिक रथ तैयार है, आप इस पर बैठे।

(क) पदाति-पैदल

कर्णप्रिय मनभावन शब्द श्रवण कर श्रेणिक राजा हर्षित एव सतुष्टित होता हुआ स्नान कर, बहुमूल्य वस्त्राभूषणो से अलकृत एव सुशोभित होकर चेलना महारानी के समीप आकर उसे कहता है–देवानुप्रिये ! पचयाम धर्म के प्रवर्तक श्रमण भगवान् महावीर तप, सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए गुणशील[LXIII] चैत्य मे विराज रहे हैं। ऐसे महान् पुरुषो का नाम-गोत्र श्रवण करने से महान् फल की समुपलब्धि होती है, तब उनके दर्शन, वदन, पर्युपासना, धर्म-श्रवण और विपुल अर्थ ग्रहण करने से तो निश्चय ही महान् फल होता ही है। अतएव अपन भी गुणशील चैत्य मे चलकर प्रभु को वदन, नमन, सत्कार-सम्मान करते हुए पर्युपासना करे, जो इस भव और परभव मे हितकर, सुखकर, क्षेमकर, मोक्षप्रद और भव-भवान्तर मे पथ-दर्शक होगी।

महारानी चेलना अत्यन्त हर्षित, प्रमुदित और विनय भाव से नरेश के वचनो को स्वीकार कर वस्त्रालकार से सुशोभित होकर बाह्य सभा स्थान मे महाराजा श्रेणिक के समीप अतिशीघ्र पहुँच गयी।

तब चेलना एव श्रेणिक श्रेष्ठ, धार्मिक एक ही रथ मे बैठकर गुणशील उद्यान मे पहुँचे और समवसरण मे विराजमान प्रभु की पर्युपासना करने लगे।

वैराग्य से विकार की ओर :

चेलना एव श्रेणिक की सौन्दर्य छटा का दिग्दर्शन कर श्रमण निर्ग्रन्थो एव निर्ग्रन्थिनो का वैरागी मन भी विकारी बन गया। वे भगवान् महावीर के धर्ममार्ग को विस्मृत-सा करते हुए श्रेणिक और चेलना के शारीरिक सौन्दर्य से समाकृष्ट बने हुए भोगाभिलाषी बन गये। उस समय निर्ग्रन्थो के मन मे इस प्रकार के भाव पैदा होने लगे –

अहो ! श्रेणिक राजर्षि विशाल ऋद्धि के स्वामी है। सम्पूर्ण राजगृह नगर उनकी एक आवाज पर सर्वस्व समर्पण करने को तैयार है। उनका राजसी सुख वर्णनातीत है। अत पुर मे एक से एक रूप और सौन्दर्य की साक्षात् देवियॉ, उनकी महारानियॉ, अप्सराओ जैसी प्रतीत होती हैं। यह महारानी चेलना के साथ मे सर्वालकारो से विभूषित ऐसे लगते है मानो साक्षात् ऋद्धिशाली देव और देवी ही भूमि पर अवतरित हुए हैं। अतएव हमारे चारित्र, तप, नियम, ब्रह्मचर्यपालन और त्रिगुप्ति की सम्यक् आराधना का विशिष्ट फल हो तो हम भी भविष्य मे श्रेणिक की तरह अभिलषित भोग भोगे।

निर्ग्रन्थिने भी चितन करने लगी – अहो चेलना महारानी ! महान् ऋद्धिवाली,

महापुण्यवान नारी रत्न है, जिसको महाराजा श्रेणिक का सहवास मिला, वस्त्रालकारो से सुसज्जित साक्षात् देवी के समान यह राजा श्रेणिक के साथ उत्तम मानुषिक भोगो को भोग रही है। यदि हमारे चारित्र, तप, नियम और ब्रह्मचर्य पालना का कुछ विशिष्ट फल हो तो हम भी भविष्य मे चेलना की तरह मानुषिक भोग भोगे तो श्रेष्ठ होगा।

इस प्रकार भगवान् की सन्निधि मे समवसरण मे बैठे हुए ही कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिने मन मे सकल्प (निदान) कर रहे हैं। महाराजा श्रेणिक और महारानी चेलना अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं।[148] अभयकुमार भी वहाँ धर्म-श्रवण को उपस्थित हो जाता है और मेघकुमार महल के झरोखे मे बैठा देख रहा है कि लोग झुण्ड के झुण्ड बनाकर एक ही दिशा मे गमन कर रहे हैं। उसने चितन किया कि आज क्यो इतने व्यक्ति एक ही दिशा मे जा रहे हैं? उसे स्वय समाधान नहीं मिला तब उसने कचुकी पुरुष को बुलाया और उससे पूछा–देवानुप्रिय ! क्या आज राजगृह नगर मे इन्द्र-महोत्सव[LXIV], स्कन्द महोत्सव[LXV], रुद्र, शिव, वैश्रमण (कुबेर), नाग, यक्ष, भूत, नदी, तडाग, वृक्ष, चैत्य, पर्वत, उद्यान या गिरि की यात्रा है[149], जिससे बहुत-से उग्र या भोग कुल के लोग एक ही दिशा मे गमन कर रहे हैं?

कचुकी[क] पुरुष–देवानुप्रिय ! आज राजगृह नगर मे इन्द्र महोत्सव यावत् गिरियात्रा नहीं है, लेकिन धर्मतीर्थ के सस्थापक भगवान् महावीर समवसृत हुए हैं। वे गुणशील चैत्य मे विराज रहे हैं, इसलिए उग्रवशी[ख], भोगवशी[ग] बहुत-से लोग उधर जा रहे हैं।

मेघकुमार यह सवाद श्रवणकर अत्यन्त हर्षित एव प्रमुदित होता है। वह कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर चार घटा वाले अश्व रथ को तैयार करवाता है। तत्पश्चात् स्नानादि करके सर्वालकारो से विभूषित कोरट की माला युक्त छत्र धारण कर, विपुल सुभट समुदाय सहित गुणशील चैत्य के पास आता है। वहाँ भगवान् के छत्रादि अतिशय देखकर तथा [150]जभृक[LXVI] एव [151]विद्याधरो[घ][LXVII] को नीचे उतरते, ऊपर चढते देखकर रथ से नीचे उतरता है। समवसरण मे पॉच अभिगम सहित प्रवेश करके प्रभु की पर्युपासना करने लगता है।

(क) कंचुकी–अत पुर का रक्षक, दरबान

(ख) उग्रवंशी–जिस कुल को ऋषभदेव स्वामी ने रक्षक रूप मे स्थापित किया वह उग्रकुल और उसमे उत्पन्न उग्रवंशी।

(ग) भोगवंशी–जिस कुल की स्थापना भगवान् ऋषभदेव ने पूज्य के स्थान पर की वह भोगकुल और उनके वशज भोगवशी।

(घ) विद्याधर-विद्या के वल से आकाश मे उड़ने वाला तथा अनेक चमत्कार करने वाला, वैताढ्य पर्वत की विद्याधर श्रेणी मे रहने वाला मनुष्य

महाराजा श्रेणिक, महारानी चेलना, अभयकुमार, मेघकुमार आदि राजकुमारो को एव समस्त उपस्थित परिषद को भगवान् धर्मोपदेश फरमाने लगते है। सभी बहुत ही हर्षित होकर, एकाग्रचित्त होकर प्रभु की पीयूषवाणी का पान करने लगे हैं। राजा श्रेणिक तो आज प्रभु के प्रथम बार दर्शन कर धन्य-धन्य हो गया है।

वह मन मे चितन कर रहा है कि आज का दिन मेरे लिए अत्यन्त मगलमय है कि मुझे भगवान् के सुन्दर सान्निध्य का सुअवसर मिला और इस विशाल जनमेदिनी के मध्य धर्म-श्रवण का यह अचिन्त्य लाभ भी। वह तो अत्यन्त सवेग भावो से श्रद्धाभिभूत होकर प्रभु को निर्निमेष निहार रहा है और उनकी अमृत देशना का मधुपान भी। इस तल्लीनता मे न जाने कितना समय व्यतीत हो गया, पता ही नहीं चल पाया। भगवान् की देशना पूर्ण हुई और राजा श्रेणिक भगवान् से बोलते हैं—भते ! आपकी देशना यथार्थ है, रुचिकर है, अभिलाषणीय है, सत्य और परिपूर्ण है। यही मुझे इष्ट है, अभीष्ट है। इत्यादि वचनो से श्रेणिक अपनी जिन-प्रवचन पर दृढ आस्था प्रकट करता है। उसके इन शुभ भावो से, शुभ लेश्या से मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियॉ, दर्शनत्रिक एव अनन्तानुबधी चतुष्क का क्षय हो जाता है और वह क्षायिक समकित प्राप्त कर लेता है।[152] अभयकुमार प्रभु की देशना से प्रभावित होकर श्रावक व्रतो को ग्रहण कर लेता है और मेघकुमार दीक्षित होने का सकल्प ग्रहण कर प्रभु से निवेदन करता है—भगवन्! आपश्रीजी की दिव्य देशना श्रवण कर, मैं माता-पिता से अनुमति लेकर श्रीचरणो मे प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

तब भगवान् ने फरमाया—हे देवानुप्रिय ! तुम्हे जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य मे विलम्ब न करो।

इस प्रकार अनेक व्यक्तियो ने अनेक त्याग-प्रत्याख्यान किये एव त्याग प्रत्याख्यान कर श्रद्धाभिभूत राजा, महारानी और परिषद पुन लौट गयी।

सम्बोधन श्रमण वर्ग को :

समवसरण मे विराजमान भगवान् महावीर अपने केवलालोक से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनो के मन मे आने वाली वैकारिक भावनाओ को जान रहे थे, अतएव परिषदादि सभी के लौट जाने पर निर्ग्रन्थ एव निर्ग्रन्थिनो को आमन्त्रित करके फरमाने लगे –

आर्यो ! श्रेणिक राजा एव चेलनादेवी को देखकर तुम्हारे मन मे उनकी तरह मानुषिक भोग भोगने का सकल्प पेदा हुआ। क्या यह कथन सत्य है?

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिने—हॉ, भगवन यथार्थ है।

भगवान्—हे आयुष्मन् श्रमणो ! मैंने जिस धर्म का निरुपण किया है, वही

निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, श्रेष्ठ, प्रतिपूर्ण, अद्वितीय, शुद्ध, न्यायसगत, शल्यो[क] का सहार करने वाला, सिद्धि, मुक्ति, नियाण[ख] एव निर्वाण[ग] का मार्ग है, यथार्थ, शाश्वत, दु खो से मुक्ति का मार्ग है।

इस सर्वज्ञ प्रणीत धर्म के आराधक सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त करते हैं, सब दु खो का अत करते है। लेकिन निदान करने वाले नहीं। अतएव मै तुम्हे निदान[LXVIII] का दुष्फल बतलाता हूँ। यो कहकर प्रभु निदान[153] के बारे मे फरमाते हैं।

1. श्रमण का मानवीय भोग सम्बन्धी निदान :

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन की आराधना के लिए अनेक भव्य जीव उपस्थित होकर निर्ग्रन्थ श्रमण एव श्रमणी जीवन को अगीकार करते हैं। सयम जीवन अगीकार करके कदाचित् कोई निर्ग्रन्थ भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि परीषहो और उपसर्गों से पीडित होकर कामवासना के प्रबल उदय से ग्रसित हो जाये और उस समय कदाचित् वह विशुद्ध मातृ-पक्ष[घ], पितृ-पक्ष[ङ] वाले राजकुमार को देखे कि जब वह राजकुमार राजमहल से निकलता है तो उस समय छत्र, झारी, आदि ग्रहण किये हुए अनेक दास, दासी और कई कर्मकार पुरुष उसके आगे-आगे चलते हैं। उसके पीछे-पीछे उत्तम अश्व चलते हैं और दोनो ओर श्रेष्ठ हाथी और उनके पीछे-पीछे श्रेष्ठ सुसज्जित रथ चलते है। अनेक पैदल चलने वाले लोग छत्र, झारी, ताडपत्र का पखा, श्वेत चामर डुलाते हुए उनका अनुगमन करते हैं।

उस राजकुमार का गमनागमन महान् ऋद्धि के साथ होता है। अनेक लोग उसकी अत्यन्त भक्ति, सत्कार और सम्मान करते हैं। इसी सत्कार-सम्मान से वह सम्पूर्ण दिन व्यतीत करता है और रात्रि मे भी जब शयन-कक्ष मे जाता है, तब उन्नत, गम्भीर, सुकोमल, दोनो ओर तकिये लगी शय्या सुगधित पदार्थो की सुगध से सुरभित रहती है। विविध प्रकार के मणि-रत्नो की छटा से वह शयन-कक्ष दिन की प्रभा को भी निरस्त करता हुआ ज्योतिपुज बना रहता है। उस शयन-कक्ष मे राजकुमार रूप और शील की साक्षात् देवियो के समकक्ष अपनी प्राण-प्रियाओ के साथ घिरा, हुआ कुशल नर्तको का नृत्य देखता हुआ, मधुर गीतो के कर्णप्रिय शब्दो को श्रवण करता हुआ, अनेक प्रकार के वाद्यो की झकार से मन को झकझोरित करता हुआ एव उत्तम मानुषिक भोगो को भोगता

(क) शल्य-काटा (माया, निदान, मिथ्यादर्शन शल्य)
(ख) नियाण-कर्म से छूटने का मार्ग (ग) निर्वाण-मोक्ष, मुक्ति
(घ) मातृ पक्ष-ननिहाल पक्ष (माता का परिवार) (ङ) पितृ पक्ष-ददिहाल पक्ष (पिता का परिवार)

हुआ विचरण करता है। जब वह कार्य के लिए एक सेवक को बुलाता है तो उसके चार-पॉच सेवक उसके शब्दो को श्रवण कर बिना बुलाये ही उपस्थित हो जाते हैं और वे उस राजकुमार से पूछते है –

"हे देवानुप्रिय ! कहो हम क्या करे? क्या लाये? क्या अर्पण करे? और क्या आचरण करे? आपकी हार्दिक अभिलाषा क्या है? आपके मुख को कौन-कौन से पदार्थ स्वादिष्ट लगते हैं?"

इस प्रकार उस राजकुमार के निराले ठाठ-बाट रहते हैं, जिन्हे दृष्टिगत कर वह परीषह पीडित निर्ग्रन्थ निदान करता है, मेरे तप, नियम और ब्रह्मचर्य पालन का विशिष्ट कल्याणकारी फल हो तो मैं भी आगामी काल मे उत्तम मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगो को भोगते हुए विचरण करूँ, यह मेरे लिए अच्छा होगा।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस प्रकार वह निर्ग्रन्थ निदान करके, सकल्पो की आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना अतिम समय मे देह त्यागकर महाऋद्धि, महाद्युति, महाबल, महायश, महासुख, महाप्रभा वाले दीर्घ, स्थिति वाले किसी देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न होता है। वहॉ देवलोक मे दिव्य सुख भोगता हुआ अपनी आयु के क्षीण होने पर शुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाले उग्रकुल या भोगकुल मे राजकुमार रूप मे उत्पन्न होता है।

वह शिशु सुकुमाल हाथ-पैर वाला, सुन्दर व्यजन[क] एव लक्षणों[ख] वाला चन्द्र-सम सौम्य कातिवाला, सुरूप होता है। बाल्यावस्था व्यतीत होने पर वह बालक युवावस्था को प्राप्त करने पर अपने सद्‌गुणो से पैतृक सम्पत्ति को प्राप्त कर लेता है। उसके बाहर गमनागमन करते समय आगे छत्र, झारी आदि लेकर अनेक नोकर-दासादि चलते हैं और वह अपने निदानानुसार राजसी ठाठ-बाट से अपना जीवन व्यतीत करता है।

उस समय उस राजकुमार को कोई श्रमण महान केवली प्ररूपित धर्म कहते हैं, तब भी वह उसे नही सुनता क्योकि पूर्वकृत निदान के पापकारी परिणाम के कारण वह धर्म-श्रवण के योग्य नहीं रहता। अतएव महान् इच्छावाला वह राजकुमार मृत्यु आने पर काल करके दक्षिण दिशावर्ती[ग] नरक मे कृष्णपाक्षिक[घ] नैरयिक रूप मे उत्पन्न होता है तथा भविष्य मे उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति दुर्लभ होती है।

(क) व्यंजन-शरीर के शुभाशुभ चिह्न-मस, तिल आदि।
(ख) लक्षण-स्वस्तिकादि शरीर के शुभाशुभ लक्षण
(ग) दक्षिण दिशावर्ती-भारी कर्मा जीव नारकी मे दक्षिण दिशा में उत्पन्न होता है।
(घ) कृष्णपाक्षिक-अनन्त संसारी

अतएव हे श्रमणो ! सासारिक भोगो की अभिलाषा पापकारी है। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है और इसी से दु ख-परम्परा का अत होता है।

2. श्रमणी का राजसी भोग हेतु निदान :

हे भव्यों ! अनेक कन्याएँ, अनेक स्त्रियाँ निर्ग्रन्थी जीवन को अगीकार करती है और वे कदाचित् भूख और प्यासादि परीषह से पीडित होकर प्रबल कामवासना के उदय से कदाचित् ऐसी स्त्री को देखती हैं जो अपने भर्ता को इष्ट, कात लगती है। वस्त्राभूषणो से अलकृत रत्नो की पेटी की तरह स्वामी द्वारा सरक्षित होती है।

प्रासाद मे गमनागमन करने पर उसके आगे-आगे छत्र, झारी आदि लेकर अनेक दास, भृत्यादि गमनागमन करते है यावत् एक को बुलाने पर चार-पाँच नौकर उपस्थित हो जाते हैं। उसके उस ठाठ-बाट को देखकर वह परीषह पीडित निर्ग्रन्थिन निदान करती है कि मेरे तप, नियम और ब्रह्मचर्य का विशिष्ट फल हो तो मैं भी आगामी काल मे इसी स्त्री की तरह मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगो को भोगते हुए विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! वह निर्ग्रन्थिन निदान करके उस निदान की आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना देह त्याग कर देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न होती है। वहाँ दिव्य देवऋद्धि का उपभोग करके वह उग्रवशीय या भोगवशीय बालिका रूप मे उत्पन्न होती है।

उस अत्यन्त सुकुमार देह वाली बालिका को युवावय प्राप्त होने पर उसके माता-पिता अनुरूप पति से उसका पाणिग्रहण कर देते हैं। अपने उस पति को वह स्त्री इष्ट, कात, प्रिय, मनोज्ञ, अतीव मनोहर, धैर्यसम्पन्न, विश्वासपात्र, सम्मत, बहुमत, अनुमत और रत्न के पिटारे के समान सरक्षण योग्य लगती है। उस स्त्री के गमनागमन करते समय उसके आगे छत्र, झारी आदि लेकर अनेक दास-दासी, नौकर आदि चलते हैं यावत् एक को बुलाने पर बिना बुलाये ही चार-पाँच सेवक सेवा मे उपस्थित हो जाते हैं और अत्यन्त विनय से पूछते हैं—हे देवानुप्रिय ! हम क्या करे? आपके लिए क्या लाये?

इस प्रकार वह स्त्री मनुष्य सम्बन्धी भोग भोगती है, तब उसे कोई तप-सयम के मूर्तरूप श्रमण महान केवली प्ररूपित धर्म कहते हैं तो वह पापकारी निदानशल्य के कारण केवली प्ररूपित धर्म को श्रवण नहीं करती और वह उत्कृष्ट अभिलाषाओ के कारण मृत्यु प्राप्त होने पर दक्षिण दिशावर्ती नरक मे कृष्णपाक्षिक नैरयिक के रूप मे उत्पन्न होती है।

3. श्रमण का स्त्री बनने हेतु निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणो ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य यावत् समस्त दु खो का

अत करने वाला है। हे श्रमणो ! कोई निर्ग्रन्थ केवली प्ररूपित धर्म की आराधना करते हुए परीषह से पीडित प्रबल मोहकर्म के उदय से एक उत्तम भोग भोगने वाली पति की प्राणप्रिया प्रेयसी को देखकर निदान करता है–

पुरुष का जीवन दु खमय है क्योकि क्षत्रिय पुरुष युद्ध मे जाते हुए अनेक प्रकार के शस्त्रो के प्रहार से पीडित होते हैं, लेकिन स्त्रियो का जीवन कितना सुखमय होता है। अतएव यदि मेरे सम्यक् आचरित तप, नियम और सयम का फल मिले तो मैं भी भविष्य मे स्त्री सम्बन्धी उत्तम भोगो को भोगता हुआ विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! वह निर्ग्रन्थ उस निदान की आलोचना किये बिना काल करके देवलोक मे पैदा होता है। तत्पश्चात् निदानानुसार स्त्री बनता है, फिर स्त्री पर्याय भोगकर कृष्णपाक्षिक दक्षिण दिशावर्ती नैरयिक बनता है और आगामी भवो मे उसे सम्यक्त्व प्राप्त करना दुर्लभ होता है। यह उस निदान का पापकारी फल है।

4. श्रमणी का पुरुष बनने के लिए निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणो ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य और सभी दु खो का अत करने वाला है।

केवली प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए कोई निर्ग्रन्थिन श्रमणी धर्म स्वीकार कर परीषह से बाधित होकर विशुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाले उग्रवशी या भोगवशी पुरुष को देखती है यावत् उसे देखकर वह निदान करती है–

स्त्री जीवन दु खमय है, वह परतत्रता की बेडियो मे जकडा है। वह तो एकाकी किसी भी गॉवादि मे नहीं जा सकती। जैसे आम, बिजौरा, इक्षु खण्ड आदि अनेक मनुष्यो के आस्वादन योग्य, इच्छित और अभिलाषणीय होते हैं, वैसे ही स्त्री भी अनेक मनुष्यो के आस्वादन योग्य, इच्छित और अभिलाषणीय होती है। अत स्त्री की अपेक्षा पुरुष का जीवन सुखमय होता है।

यदि सम्यक् रूप से आचरित मेरे तप, नियम और ब्रह्मचर्यादि का विशिष्ट फल हो तो मैं भी आगामी काल मे उत्तम पुरुष सम्बन्धी काम-भोगो को भोगते हुए विचरण करूँ, यही श्रेष्ठ होगा।

इस प्रकार वह श्रमणी निदान करके आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना देवलोक मे पैदा होती है, पुन निदानानुसार पुरुष बन जाती है और भोगो को भोग कर दक्षिण पथगामी कृष्णपाक्षिक नैरयिक के रूप मे पैदा होती है, उसे भव-भवान्तर मे सम्यक्त्व की प्राप्ति दुर्लभ होती है।

5. श्रमण–श्रमणी द्वारा परदेवी परिचारण निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणो ! केवली प्ररूपित धर्म ही सत्य है यावत् सब दु खो का अत करने वाला है। ऐसे केवली प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए उपस्थित होकर कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिन मानुषिक भोगो से विरक्त हो जाये और वह यह सोचे "मानवीय कामभोग अध्रुव, अशाश्वत और नश्वर है। मल-मूत्र-श्लेष्म-वात-पित्त-कफ-शुक्र एव शोणितजन्य हैं, दुर्गन्धित श्वासोच्छ्वास तथा मल-मूत्र से परिपूर्ण हैं। वात-पित्त-कफ के आगमन द्वार रूप हैं, ये अवश्यमेव पहले अथवा पीछे त्यागने योग्य है, लेकिन जो ऊपरी देवलोको मे देव रहते हैं वे अन्य देवो की देवियो को अधीनस्थ करके उनके साथ, अपनी देवियो के साथ एव विकुर्वित देवियो के साथ विषय सेवन करते है।"

अतएव मेरे सम्यक् आचरित तप, नियम और ब्रह्मचर्य का विशिष्ट फल हो तो मैं भी भविष्य मे ऐसे दिव्य भोगो को भोगता हुआ/भोगती हुई विचरण करूँ, यह श्रेयस्कर होगा।

ऐसा निदान करके वह निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिन देव रूप मे उत्पन्न होता/होती है। वहाँ वह अन्य की देवियो के साथ, अपनी देवियो के साथ, स्वविकुर्वित देवियो के साथ भोग भोगते हुए आयु समाप्त होने पर उग्रवशी भोगवशी कुमार के रूप मे पैदा होता/होती है, जहाँ अनेक नौकर, दास आदि उसकी सेवा मे सलग्न रहते है। उस समय उसे कोई तपस्वी श्रमण-माहन केवली प्ररूपित धर्म सुनाता है तो वह श्रवण करता/करती है, लेकिन श्रद्धा नहीं कर सकता/सकती, यह निदान का पापकारी परिणाम है। वह वहाँ से मरकर दक्षिण दिशावर्ती कृष्णपाक्षिक नैरयिक के रूप मे पैदा होता/होती है और भविष्य मे उसे समकित की प्राप्ति दुर्लभ होती है।

6. श्रमण–श्रमणी द्वारा स्वदेवी परिचारण का निदान :

हे आयुष्मान श्रमणो ! यह केवली प्ररूपित धर्म ही सत्य यावत् सब दु खो का अत करने वाला है।

कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिन केवली प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए उपस्थित होकर, परीषह से पीडित होकर मानवीय कामभोगो से विरक्त होकर ऐसा चितन करे–

मनुष्य सम्बन्धी कामभोग अनित्य, अशाश्वत हैं, ये शुक्र-शोणित- मल-मूत्रादि से जनित एव अवश्य त्याज्य हैं, अतएव जो ऊपर देवलोक मे देव रहते है, वे अपनी विकुर्वित देवियो के साथ एव अपनी देवियो के साथ विषय सेवन करते हैं, वे श्रेष्ठ है। यदि मेरे तप, सयम एव ब्रह्मचर्य का विशिष्ट फल हो तो मैं भी ऐसा

महान् ऋद्धि वाला/वाली देव बनकर, दिव्य भोगो को भोगूँ तो श्रेष्ठ होगा। ऐसा निदान करके वह साधु/साध्वी मरकर देव बनकर पूर्व सकल्पानुसार अपनी विकुर्वित देवियो/देवो के साथ या स्वय की देवियो/देवो के साथ दिव्य भोग भोगता है। वह आयु क्षय होने पर ऋद्धिशाली पुरुष बनता है। अनेक दास-दासी उसकी सेवा मे रहते है और समय आने पर श्रमण माहन से वह केवली प्ररूपित धर्म भी श्रवण करता है, लेकिन उस पर श्रद्धा नहीं करता। वह अन्य दर्शन को स्वीकार कर उसका आचरण करता है और पर्णकुटी मे रहने वाला तापस, गॉव के समीप वाटिका मे रहने वाला तापस, अदृष्ट होकर रहने वाला तात्रिक बनता है। वह प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की हिसा से विरत नहीं बनता और इस प्रकार की मिश्र भाषा का प्रयोग करता है –

मुझे मत मारो, दूसरो को मारो।

मुझे मत आदेश करो, दूसरो को आदेश करो।

मुझे मत पीडित करो, दूसरो को पीडित करो।

मुझे मत पकडो, दूसरो को पकडो।

मुझे मत भयभीत करो, दूसरो को भयभीत करो।

इस प्रकार वह मानवी सम्बन्धी कामभोगो मे गृद्ध होकर अतिम समय मे देह त्याग कर किल्विषिक[क] मे पैदा होता है। वहॉ से च्यवकर पुन भेड-बकरे के रूप मे पैदा होता है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! यह निदान का पापकारी परिणाम है कि वह केवली प्ररूपित धर्म पर रुचि नही रखता।

7. श्रमणी–श्रमण का देव सम्बन्धी भोग हेतु निदान :

हे श्रमणो ! कोई साधु या साध्वी यावत् मानवीय काम-भोगो से विरक्त होकर यह सोचे–

मनुष्य सम्बन्धी कामभोग तो अध्रुव यावत् त्याज्य है, लेकिन जो ऊपरी देवलोक मे देव हैं, वे अन्य देवो की देवियो के साथ एव स्वय विकुर्वित देवियो के साथ विषय-सेवन नहीं करते, किन्तु अपनी देवियो के साथ रतिक्रीडा करते हैं। यदि मेरे भी सम्यक् आचरित तप, नियम और ब्रह्मचर्य का कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो आगामी काल मे मैं भी इस प्रकार के दिव्य भोगो को भोगता हुआ विचरण करूँ, तो श्रेष्ठ होगा।

ऐसा निदान करके कोई निर्ग्रन्थ/निर्ग्रन्थिन देव बनकर मात्र अपनी ही देवियो

(क) किल्विषिक-अन्त्यज देव

के साथ दिव्य भोग भोगता है, आयु के क्षय होने पर ऋद्धि-सम्पन्न पुरुष बनता है। वह केवली प्ररूपित धर्म श्रवण कर उस पर श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि रखता है, वह मरकर किसी देवलोक मे पैदा होता है, लेकिन वह किसी भी प्रकार का प्रत्याख्यान स्वीकार नही कर सकता, यह उसके निदान का पापकारी परिणाम है।

8. श्रमण का श्रावक बनने के हेतु निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणो ! केवली प्ररूपित धर्म ही सत्य यावत् सभी दु खो का अत करने वाला है। इस धर्म का आचरण करने वाला कोई निर्ग्रन्थ/ निर्ग्रन्थिन यावत् मानव को अशाश्वत जानकर, उनसे विरक्त बनकर यह सोचे कि मेरे सम्यक् आचरित इस तप, नियम और ब्रह्मचर्य का विशिष्ट फल हो तो मैं भविष्य मे विशुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाला उग्रवशी, भोगवशी पुरुष बनकर श्रमणोपासक बनूँ। जीवाजीव का ज्ञाता बनकर आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।

ऐसा विचार करके वह मृत्यु को प्राप्त होकर देव बनता है। वह दिव्य ऋद्धि का उपभोग करके आयु क्षय होने पर ऋद्धिशाली पुरुष बनता है, जिसकी सेवा मे बहुत-से नौकर, दासादि रहते है।

उसको कोई साधु केवली प्ररूपित धर्म सुनाता है तो वह सुनता है, उस पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि करता है। श्रावक के ग्रहण योग्य व्रतो को ग्रहण करता है, लेकिन पूर्वकृत निदान के कारण साधु नहीं बनता। यह निदान का पापकारी परिणाम है। वह श्रावक वर्षो तक श्रावक पर्याय का पालन करता है। अत मे सलेखना सथारा करके देवलोक मे देव बनता है।

9. निर्ग्रन्थ का श्रमण बनने हेतु निदान :

हे आयुष्मन् श्रमणो ! केवली प्ररूपित धर्म ही सत्य रूप है, यावत् समस्त दु खो का अत करने वाला है। उस धर्म मे यत्न करता हुआ कोई साधु यावत् मानवीय भोगो से विरक्त बनकर सोचे कि मानुषिक भोग अध्रुव यावत् त्याज्य हैं। देव सम्बन्धी भोग भी भव परम्परा बढाने वाले हैं, अतएव अवश्यमेव त्याज्य हैं।

अतएव मेरे द्वारा सम्यक् आचरित तप, सयम और ब्रह्मचर्य का फल हो तो मैं भविष्य मे अन्तकुल, प्रान्तकुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, कृपणकुल या भिक्षु कुल मे पुरुष बनूँ जिससे मै प्रव्रजित होने के लिए सुविधापूर्वक गृहवास का परित्याग कर सकूँ तो श्रेष्ठ होगा।

ऐसा निदान कर वह निर्ग्रन्थ/निर्ग्रन्थिन देव रूप मे उत्पन्न होते हैं। वहाँ पर दिव्य देव सम्बन्धी भोगो का उपभोग कर वह निदानानुसार पुरुष रूप मे

उत्पन्न होता है और अनेक नौकरादि सदैव उसकी सेवा मे तत्पर रहते है। वह ऋद्धिसम्पन्न पुरुष किसी निर्ग्रन्थ के द्वारा केवली प्ररूपित धर्म को श्रवण करता है, उस पर रुचि रखता है, गृहत्यागी साधु बनता है, लेकिन उस भव मे सिद्ध नहीं बनता। वह सयम पर्याय का पालन कर सलेखणा सथारा करके देव रूप मे पैदा होता है। उस निदान के पापकारी परिणाम के कारण वह उस भव मे सिद्ध नहीं बनता।

10. अनिदान से मुक्ति :

हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो निर्ग्रन्थ प्रवचन की आराधना के लिए उपस्थित होकर तप-सयम मे पराक्रम करता हुआ काम-रागादि से सर्वथा रहित सम्पूर्ण चारित्र की आराधना करता है, वह उसी भव मे अरिहत, केवली, सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन जाता है। वह सम्पूर्ण लोक मे सब जीवो के सर्वकालीन भावों को जानता-देखता है।

वह अतिम समय मे सम्पूर्ण कर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह निदान रहित साधना का कल्याणमय परिणाम है जिससे वह उसी भव मे सिद्ध हो जाता है यावत् सभी दु खो का अत कर देता है।

इस प्रकार उपस्थित श्रमण-श्रमणियो ने भगवान् के मुख से निदान एव अनिदान का वर्णन श्रवण कर भगवान् महावीर को वदन-नमस्कार किया और वदन-नमस्कार करके पूर्वकृत निदानशल्यो की आलोचना, प्रतिक्रमण करके यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप स्वीकार किया।[154]

इस प्रकार प्रभु ने निदान के बारे मे विस्तृत निरूपण किया। निदान को आवश्यक सूत्रकार ने आभ्यन्तर शल्य–आत्मा का कॉटा कहा है। जैसे कॉटा जब तक लगा रहता है, वह तन की समाधि भग करता है। इसी प्रकार निदान रूपी कॉटा भी जब तक लगा रहता है वह चारित्र और मुक्ति मे बाधक बनकर खटकता रहता है इसलिए आत्माभिमुखी साधु को निदान नहीं करना चाहिए। यहॉ भगवान् ने नौ प्रकार के निदान बताये है, लेकिन निदान की कोई सख्या निश्चित नहीं है। समवायाग सूत्र मे कहा है–वासुदेव, प्रतिवासुदेव नियमा निदानकृत होते है। चक्रवर्ती निदानकृत भी होते हैं और निदान रहित भी।[155]

अन्य कोई भी कोणिक आदि की तरह निदान कर सकता है। तप, सयम एव ब्रह्मचर्यादि का पालन करने वाला ही निदान करता है ओर वह अपनी लालसा के कारण तप, सयम को दॉव पर लगा देता है। अस्तु, निदान[LXIV] करने वाला दु ख-परम्परा का अत नही कर सकता। इसलिए भगवान् ने अनिदान की प्रेरणा दी है, जो प्रत्येक श्रमण-श्रमणी एवं सद्गृहस्थ के लिए अनुकरणीय है।

मेघ का निर्वेद :

इधर मेघकुमार भगवान् की दिव्य देशना से विरक्त बना रथ पर आरूढ होता है। वह सम्पूर्ण मार्ग मे वैराग्यमय भावो से ओत-प्रोत बनकर ससार-त्याग का दृढीभूत सकल्प कर लेता है और मार्ग की परिसमाप्ति होने पर रथ से उतरकर अपने माता-पिता के पास पहुँच जाता है।

वहाँ पर पहुँचते ही माता-पिता से बोला—माँ, पिताजी ! मुझे प्रभु का उपदेश रुचिकर लगा है, अत आपकी आज्ञा मिलने पर मैं प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता हूँ। मेघकुमार के वचनो को श्रवण करते ही माँ मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पडती है। तब उसे पखे आदि से हवा करके सचेतन करते है। होश मे आने पर माता कहती है—बेटा ! तू मेरा इकलौता पुत्र है। तेरे बिना एक पल भी रहना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है। बेटा ! मैं तेरा क्षण-भर भी वियोग सहन नहीं कर सकती, इसलिए जब हम कालगत हो जाये, तब तुम सयम अगीकार कर लेना।

मेघ—माताश्री कौन जानता है, कौन पहले जायेगा और कौन बाद मे जायेगा? इसलिए आप मुझे आज्ञा प्रदान कर दीजिए।

माता-पिता—बेटा ! अभी तो तू युवावस्था प्राप्त है। इस यौवन मे पहले मनुष्य सम्बन्धी कामभोग का भोग करले, उसके पश्चात् सयम अगीकार कर लेना।

मेघ—माता-पिता ! भोग तो नश्वर हैं। वे अवश्यमेव त्याग करने योग्य हैं। वे कर्मबध के स्थान है। अत अब भोग भोगने मे मेरी अभीप्सा नहीं है।

माता-पिता—मेघ ! सयम तलवार की धार पर चलने के समान सुदुष्कर है। नगे पैर चलना, केश लुचन करना, घर-घर से माँग कर लाना, लूखा-सूखा आहार ग्रहण करना और सरदी-गरमी सहन करना अत्यन्त कठिन है। तू बडा सुकुमाल शरीर वाला है। अतएव तू सयम का पालन नही कर पायेगा।

मेघ—माता-पिता ! सयम कायरों के लिए दुष्कर है। शूरवीर तो सयम मे आने वाले परीषहो को समभावपूर्वक सहन करते हैं, उनके लिए सयम दुष्कर नहीं है।

बहुत समझाने के पश्चात् भी जब मेघ का वैराग्य अडिग रहता है, तब माता-पिता अत मे मेघकुमार से कहते हैं कि मात्र एक दिन का राज्य ग्रहण करके फिर सयम लेना। तब मेघकुमार मौन रहते हैं और उनका राज्याभिषेक करते है। तत्पश्चात् उन्हे पूछते हैं—आपकी क्या आज्ञा है?

मेघकुमार कहता है—राज्यकोष मे से एक लाख स्वर्णमुद्राएँ निकालकर नाई को केशकर्तन हेतु देओ, दो लाख स्वर्ण मुद्राओ से पातरे और रजोहरण मगवाओ।

उनकी आज्ञानुसार एक लाख स्वर्णमुद्राएँ देकर नाई से चार अगुल केश

छोडकर केश कर्तन करवाये और दो लाख स्वर्णमुद्राएँ से पातरे एव रजोहरण कुत्रिकापण[क] से मगवाया।

नापित द्वारा काटे गये केशो को माँ धारिणी ने श्वेत वस्त्र मे रखा कि जब-जब घर मे उत्सवादि होगे तो मेघकुमार के इन केशो को देखकर उनका स्मरण कर सकूँगी।

तत्पश्चात् एक हजार पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य शिविका तैयार करवाई और मेघकुमार को वस्त्रालकारो से विभूषित कर पालकी मे बिठाया। एक हजार पुरुष उस शिविका का वहन करने लगे। उस शिविका के आगे आठ मगल[LXX] चले—1 स्वस्तिक, 2 श्रीवत्स, 3 नदावर्त, 4 वर्धमान, 5 भ्रदासन, 6 कलश, 7 मत्स्य और 8 दर्पण। इस पर जय-घोषो के नारो से मही गुजित करते हुए मेघकुमार की पालकी गुणशील चैत्य तक पहुँची।

वहाँ पालकी से नीचे उतर कर मेघकुमार, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया। तब उसके माता-पिता भगवान् महावीर से कहते है—भगवन् ! हमारा यह इकलौता पुत्र हमे अत्यन्त प्रिय है। हम इसके नाम-श्रवण के लिए लालायित रहते हैं। यह हमारे हृदय को आनन्द देने वाला है। यह जन्म-मरण के भय से उद्विग्न होकर आपश्री के चरणो मे प्रव्रजित होना चाहता है। हम इसे शिष्य-भिक्षा के रूप मे श्रीचरणो मे समर्पित कर रहे हैं। आप इस शिष्य को अगीकार कीजिए।

प्रभु महावीर ने माता-पिता की इस बात को सम्यक्तया स्वीकार किया। तत्पश्चात् मेघकुमार ईशान कोण मे गया और वहाँ जाकर उसने आभूषण, माला, अलकार आदि उतारे। माँ ने धवल वस्त्र मे आभूषणादि ग्रहण किये, तदनन्तर विलाप करती हुई, करुण क्रन्दन करती हुई, अश्रु टपकाती हुई मेघकुमार से कहती है—चारित्र का उत्तम भावो से पालन करना। सयम-साधना मे आलस्य मत करना, भविष्य मे हमारे लिए भी सयम प्राप्त करने का सुयोग होवे, ऐसा सहयोग देना। इस प्रकार शिक्षा देकर माता-पिता लौट जाते है। मेघकुमार ने पचमुष्टि लोच किया, तत्पश्चात् प्रभु महावीर के समीप आया, उन्हे विधिवत् वदन-नमस्कार किया और प्रभु से निवेदन किया—भते ! मुझे ससार की आग से निकालकर सयम के उपवन का मार्ग बताये। मुझे आप प्रव्रजित करे।[156]

भगवान् ने मेघकुमार को प्रव्रजित कर सयम मार्ग[LXXI] पर समारूढ किया। दिन सयम-साधना मे विनय पूर्वक[157] व्यतीत हुआ। व्यतीत हो रात्रि मे शयन का समय आया और क्रमश सबके सस्तारक बिछने लगे। दीक्षा पर्याय के क्रमानुसार मेघकुमार का सस्तारक (विछौना) द्वार के पास लगाया गया।

(क) कुत्रिकापण-ऐसी देवाधिष्ठित दुकान जहाँ स्वर्ग, मृत्यलोक एव पाताल में रहने वाली वस्तु मिल सके।

चक्खुप्रदाता भगवान् महावीर :

मेघ मुनि ने अपने सस्तारक[क] पर शयन करना प्रारम्भ किया, लेकिन रात्रि के प्रथम प्रहर मे अनेक साधु वाचना लेने के लिए, प्रश्न पूछने के लिए, धर्मकथा के लिए उस दरवाजे से कोई आता है, कोई जाता है, इसके पश्चात् कोई परठना करने के लिए आ रहा है, कोई जा रहा है। अन्तिम प्रहर मे भी वाचनादि के लिए कोई आ रहा है, कोई जा रहा है। इस प्रकार उस द्वार से रात्रि-भर साधुओ का निर्गमन[ख] एव प्रवेश होता रहा। तब जाता-आता कोई साधु मेघ मुनि का सघट्टा करता है, कोई उल्लघन करता है। कोई पैर पर टक्कर लगाता है, कोई हाथ पर, कोई मस्तक पर, उसके शरीर पर पैरो की धूलि से रजकण ही रजकण हो गये। रात्रि मे वह क्षण-भर भी सो न सका। अब मेघ मुनि का मन ग्लानि से भर गया। चितन किया—ओह ! जब मैं गृहवास मे था तब सभी मुनि मेरा आदर-सत्कार करते थे, लेकिन आज रात्रि मे अहह ! मुनियो ने मेरा घोर अपमान किया है। एक क्षण भी मुझे सोने नहीं दिया। मैं इस तरह साधु जीवन का पालन नहीं कर सकता। प्रात काल होने पर मुझे पुन गृहवास मे जाना उचित है। इस प्रकार आर्त भावो से रात्रि व्यतीत होने पर सूर्योदय के पश्चात् मेघ मुनि भगवान् को वदन-नमस्कार करके पर्युपासना करने लगे।

प्रभु बोले—मेघ ! तुम्हारे मन मे मुनियो के कारण ऐसे विचार उत्पन्न हुए हैं कि मैं प्रात काल होने पर घर चला जाऊँगा। क्या यह सत्य है?

मेघ—हाँ भते।

भगवान्—मेघ इससे पहले अतीत के तीसरे भव का तुम स्मरण करो। जब तुम वैताढ्य पर्वत की तलहटी पर सुमेरुप्रभ नामक हस्ति थे। सुडौल, सुगठित, बलशाली शरीर वाले एक हजार हाथियो के स्वामी तथा अनेक हस्ति कलभों[ग] पर आधिपत्य करते हुए उनका रक्षण करते हुए, स्वामित्व और नेतृत्व कर रहे थे।

तुम अनेक हथिनियो और उनके बच्चो के साथ विविध प्रकार की क्रीडाएँ करते हुए वैताढ्य पर्वत की तलहटी मे घूमते हुए आनन्द का अनुभव करते थे। एक बार ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ मास मे भीषण गरमी मे पत्तो की रगड से भयकर दावाग्नि[घ] लग गयी। तब अनेक पशु-पक्षी भयभीत होकर इधर-उधर दौडने लगे। उस समय तुम भी भयकर गर्जना करते हुए हथिनियो एव हस्ति कलभो के साथ दौडने लगे। दौडते-दौडते तुम सबसे बिछुड गये। प्यास के मारे तुम्हारे

(क) सस्तारक-ढाई हाथ प्रमाण शय्या, बिछौना, दर्भ या कम्बल का बिछौना
(ख) निर्गमन-निकलना
(ग) हस्ति कलभ-हाथी का बच्चा
(घ) दावाग्नि-जगल मे लगने वाली आग

कठ शुष्क बन रहे थे। तब तुम बिना घाट के ही कीचड की अधिकता वाले सरोवर मे पानी पीने उतर गये। वहाँ तुमने पानी पीने के लिए सूँड फैलाई, लेकिन तुम्हारी सूँड पानी न पी सकी। तुमने कीचड से निकलने का प्रयास किया, परन्तु बाहर निकलने के बजाय तुम कीचड मे धँसते ही चले गये।

उस समय एक नौजवान हाथी वहाँ पर आया, जिसको तुमने पहले कभी मार कर अपने झुण्ड से बाहर निकाल दिया था। उस हाथी ने तुम्हे कीचड मे फँसा देखा, देखते ही उसे पूर्ववैर का स्मरण हो आया और उसने अपने तीक्ष्ण दाँतो से तुम्हारी पीठ बीध डाली। वैर का बदला लेकर वह हाथी पानी पीकर लौट गया।

उस दत प्रहार से तुम्हारे शरीर मे भीषण वेदना पैदा हुई जिसको तुमने सात दिन-रात तक भोगा। तब तुम 120 वर्ष की आयु पूर्ण करके कालमास मे काल करके जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध भरत मे गगा महानदी के किनारे विध्याचल पर्वत पर एक हथिनी के गर्भ मे पैदा हुए। नौ मास पूर्ण होने पर बसन्त ऋतु मे तुम्हारा जन्म हुआ।

तुम बाल्यावस्था से ही चचल स्वभाव के थे। युवावस्था प्राप्त होने पर उस यूथ[क] का यूथपति[ख] हाथी मर गया। तुम यूथ के मालिक बने। हस्ति समूह का वहन करने लगे। तुम्हारा नाम मेरुप्रभ था। तुम युवा हथिनियो के पेट मे सूँड डालते हुए एव उनके साथ विविध क्रीडाएँ करते हुए विचरण करने लगे। तब एक बार ग्रीष्मकाल मे ज्येष्ठ की गर्मी से दावानल की ज्वालाओ से वन-प्रदेश जलने लगे। तब तुम भयभीत होकर हथिनियो और हस्ति-शिशुओ सहित इधर-उधर दौडने लगे। उस समय तुमने सोचा कि ऐसा दावानल मैने पहले कहीं देखा है। निरन्तर सोचते-सोचते तुम्हे जातिस्मरण[ग] ज्ञान हो गया। तुम अपना पूर्वभव, सुमेरुप्रभ हाथी का, जानने लगे और अब दावानल से बचने के लिए तुम सोचने लगे कि विध्याचल की तलहटी मे एक बडा मण्डप बनाऊँ।

तब तुमने वर्षाकाल मे खूब वर्षा होने पर गगा महानदी के किनारे 700 हाथियो के साथ मिलकर एक योजन का विशाल मण्डप बनाया। वहाँ घास, पत्ते वृक्षादि को उखाड कर फेक दिया और सुखपूर्वक विचरण करने लगा। एकदा ग्रीष्मकाल आने पर उस जगल मे भयकर दावानल लगा। तुम स्वनिर्मित मण्डप की ओर गये। मण्डप शेर, चीते आदि जगली जानवरो से परिपूर्ण भरा

(क) यूथ-समूह
(ख) यूथपति-समूह का स्वामी
(ग) जातिस्मरण -पूर्व जन्म का स्मृति सूचक ज्ञान (मति ज्ञान का एक भेद)

था। तुम वहाँ गये और वहाँ खडे हो गये। उस समय तुम्हारे शरीर मे खुजली चली। तुमने खुजली करने के लिए एक पैर ऊँचा उठा लिया। तब जगह की सकीर्णता से एक खरगोश वहाँ पर आ गया। उस खरगोश पर दया करके तुमने पैर ऊपर उठाकर रखा। 2½ दिन तक पैर ऊँचा रखने से अनुकम्पा के कारण तुम्हारा ससारपरित्त[क] हुआ और मनुष्यायु का बध किया।[158] दावानल शात होने पर पैर नीचा रखने का प्रयास किया, लेकिन पैर नीचे रखा नहीं गया। तुम धडाम से धरती पर गिर पडे। तीन रात-दिन वेदना सहन कर तुम मेघकुमार के रूप मे उत्पन्न हुए।

तुम क्रमश युवा हुए और सयम अगीकार किया। मेघ ! जरा चितन करो, जब तुम हाथी थे, तुम्हे सम्यक्त्व भी नहीं था, तब भी प्राणियो की अनुकम्पा से, जीव मात्र की अनुकम्पा से पैर अधर रखा, नीचे नहीं टिकाया। तुम सहनशील बने रहे तो इस भव मे तो तुमने अपने उत्थान[ख], बल[ग], वीर्य[घ], पुरुषाकार[ङ], पराक्रम[च] से सयम लिया है। तुम्हे रात्रि मे श्रमणो के हाथ का स्पर्श हुआ, पैर का स्पर्श हुआ यावत् तुम्हारा शरीर धूलि-धूसरित हो गया। तुम उसे सम्यक् प्रकार सहन न कर सके। बिना क्षुब्ध हुए सहन न कर सके। अदीन भाव से सहन न कर सके। शरीर को निश्चल रखकर सहन न कर सके।

भगवान् के वचनो को श्रवण कर शुभ परिणामो से मेघ मुनि को जाति-स्मरणज्ञान हुआ। वे अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सम्यक्रूपेण जानने लगे। हर्षान्वित होकर उन्होने भगवान् को वदन किया और निवेदन किया—भते ! आप मुझे दूसरी बार प्रव्रजित करने की कृपा करावे।

तब प्रभु ने उन्हे पुन प्रव्रजित किया और वे सम्यक्तया तप सयम मे लीन रह ग्यारह अगो का अध्ययन करने लगे।[159]

पहहस्ती : सेचनक :

मेघ मुनि की दीक्षा के पश्चात् राजा श्रेणिक के पुत्र नन्दीषेण की दीक्षा प्रभु के मुखारविन्द से हुई, ऐसा इतिहास मे उल्लेख मिलता है। नन्दीषेण का जीव किस प्रकार राजघराने मे जन्मा, उसके जीवन का रोचक वृत्तान्त उपलब्ध होता है, वह इस प्रकार है –

पूर्वकाल मे एक यज्ञकर्ता ब्राह्मण था। उसने एक दास को नौकर रूप मे रखा और उस दास से पूछा कि तू क्या लेगा? तब उसने कहा—ब्राह्मणो को

(क) संसारपरित्त–ससार कम करना (अर्थात् अर्द्धपुद्गल परावर्त ससार परिभ्रमण शेष रहना)
(ख) उत्थान–विशिष्ट शारीरिक चेष्टा (ग) बल–शारीरिक शक्ति
(घ) वीर्य–आत्म वल (ङ) पुरूषाकार–पुरुपार्थ
(च) पराक्रम–पौरुपशक्ति

जिमाने के बाद जो रसोई बचे, बस, मुझे तो वह रसोई चाहिए और कुछ नहीं ब्राह्मण ने दास की इस बात को स्वीकार कर लिया। वह ब्राह्मणो के जीमने के बाद जो भी बचता उसे अपने पास रखता और साधु-मुनिराज का योग मिलने पर सुपात्र दान देता। उसके पश्चात् खुद भोजन करता। इस प्रकार सुपात्र दान की भावना से उसने देवायु का बध कर लिया और मृत्यु को प्राप्त होकर देवलोक मे देव बन गया।

देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर वह देव श्रेणिक राजा के पुत्र नन्दीषेण के रूप मे उत्पन्न हुआ। वह यज्ञकर्ता ब्राह्मण का जीव अनेक योनियो मे परिभ्रमण करने लगा। इधर एक जगल मे हाथियो के यूथ मे एक यूथपति हाथी दिग्गजकुमार जैसा था। वह सोचता था कि इन हाथियो का स्वामी अन्य कोई हाथी न बन जाये, इसलिए जो भी हस्ती कलभ पैदा होता तो वह जन्मते ही उसको मार डालता। एक बार यूथ मे रही हुई हथिनी गर्भिणी हो गयी। यज्ञकर्ता ब्राह्मण का जीव उस हथिनी के गर्भ मे आया। तब उस सगर्भा हथिनी ने विचार किया कि यह पापी यूथपति, जो भी शिशु जन्मता है, उसे मार डालता है। मै भी जिस शिशु का प्रसव करूँगी उसे यह मार डालेगा। इसलिए मुझे अपने गर्भस्थ शिशु के सरक्षण के लिए कोई उपाय करना चाहिए। उस हथिनी का मातृ वात्सल्य हिलोरे लेने लगा। उस वात्सल्य के रस से अभिभूत होकर वह मायाजाल से पैर लगडाती चलने लगी। बहुत दिनो से हाथी से मिलने लगी। हाथी ने सोचा--इस हथिनी का स्वास्थ्य ठीक नहीं, इसे विश्राम की अपेक्षा है, अत हाथी भी निश्चिन्त-सा बन गया।

एक बार वह यूथपति हस्ती दूर चला गया और हथिनी अपने मस्तक पर तृण का पूला लेकर तपस्वियो के आश्रम मे आयी। उसे स्खलित पैर से चलते हुए देखकर तपस्वियो के मन मे करुणा का सचार हुआ और वे तपस्वी उसकी परिचर्या करने लगे। समय आने पर उसने एक सुन्दर हस्ती शिशु को जन्म दिया।

हथिनी अपने बच्चे की रक्षा के लिए उसे आश्रम मे छोडकर अपने यूथ मे चली गयी और स्वस्थता का अनुभव करने लगी। अवसर देखकर गुप्त रीति से आश्रम मे अपने शिशु को दुग्धपान कराने, उसकी परिचर्या करने जाती थी। वह बाल कलभ शनै-शनै तपस्वी आश्रम मे बडा होने लगा।

तपस्वी उस बाल कलभ को पक्व, नीवार[क] तथा शल्लकी[ख] के कवल खिलाकर अत्यन्त प्रेम से पालन कर रहे थे। वह हस्ती-शिशु भी तपस्वियो के साथ क्रीडा करता था। अपनी सूँड मे जल से परिपूर्ण घडे लता और वृक्षो का सिचन करता

(क) नीवार-तृण धान्य (ख) शल्लकी-एक वृक्ष विशेष जो हाथियों को बहुत प्रिय है।

था। तपस्वियो ने वृक्षो का सिचन करने से उसका नाम सेचनक रख दिया। वह सेचनक प्रमाणोपेत अगो वाला, सौम्य, सुन्दर रूप वाला, ऊँचे मस्तक वाला, सुखद स्कन्ध वाला था। उसका पिछला भाग वराह[क] के समान नीचे झुका हुआ था। वह लम्बे उदर वाला, लम्बे होठ वाला एव लम्बी सूँड वाला था। उसकी पीठ खीचे हुए धनुष के समान आकृति वाली थी। सारे शरीर के अवयव गोल, पुष्ट एव प्रमाणोपेत थे। पूछ चिपकी हुई थी। पैर कछुए जैसे परिपूर्ण एव मनोहर थे। बीसो नाखून श्वेत, निर्मल, चिकने एव निरुपहत[ख] थे। उसके उज्ज्वल दॉत निकलने लगे थे। शनै -शनै तरुणाई को प्राप्त वह अत्यन्त सुन्दर दिखने लगा।

एक बार वह तरुण सेचनक हस्ती नदी के तीर पर पानी पीने के लिए गया। सयोग से उसे वहॉ आपगा के तट पर वह यूथपति हस्ती दिखाई दिया। तब सेचनक ने देखा, यह कहॉ से आया है? इसके साथ युद्ध करना चाहिए और यूथपति ने सोचा कि यह दूसरा हस्ती कहॉ से आया? इसके साथ युद्ध करना चाहिए। दोनो परस्पर युद्ध करने लगे। सेचनक अतीव बलशाली था। उसने दॉतो के स्वल्प प्रहार से यूथपति को मार डाला और स्वय यूथ का मालिक बन गया।

एक दिन उसने विचार किया कि मेरी माता ने जैसे कपट करके मुझे आश्रम मे रखा, बडा होकर मैंने मेरे पिता को मार डाला, वैसे ही कोई सगर्भा हथिनी इस आश्रम मे कपट से किसी हाथी को रखेगी तो वह भी मुझे मार डालेगा इसलिए इस आश्रम को ही नष्ट कर देना चाहिए।

यही सोच वह तपस्वियो के आश्रम को नष्ट-भ्रष्ट करने लगा। जहॉ जन्मा, जिन तपस्वियो ने अपने हाथो से कौर देकर जिसे बडा किया, जिन तपस्वियो ने उसकी निरन्तर परिचर्या की, आज वह उन तपस्वियो के आश्रम को अपनी मृत्यु को रोकने के लिए छिन्न-भिन्न कर रहा है। मृत्यु ! उसे तीर्थंकर भगवान् भी रोक नहीं पाये। उसे कौन रोक सकता है। वह तो शाश्वत सत्य है लेकिन आश्चर्य है कि मरणशील प्राणी भी मरना नहीं चाहता और अमर बनने के लिए किस-किस प्रकार प्रयास कर लेता है।

वह सेचनक अब तपस्वियो के लिए कष्टदायी बन गया। प्रतिदिन आश्रम की शोभा को छिन्न-भिन्न करने लगा। यहॉ तक कि तपस्वियो का रहना भी दुष्कर हो गया। तब अन्यन्त खिन्न होकर तपस्वी राजा श्रेणिक के पास पहुँचे और उन्होने सम्राट् से निवेदन किया—राजन् ! एक हस्ती सर्व-लक्षणो से सम्पन्न राजकार्यो मे काम आने योग्य है। वह मदोन्मत्त बना आश्रम को छिन्न-भिन्न कर रहा है। यदि आप उसे यहॉ ले आते हैं तो राज्य की शोभा मे भी चार चॉंद लग जायेगे और हम तपस्वी भी सुख-शातिपूर्वक अरण्य मे निवास करेगे।

(क) वराह–सूअर (ख) निरूपहत–रोगादि से मुक्त

तपस्वियो की वार्ता श्रवण कर राजा बोला—राजकर्मचारियो सहित मै स्वय तुम्हारे साथ चलता हूँ। यो कहकर राजा तपस्वियो के साथ चल देता है। वहाँ जाकर सेचनक को पकड लेते है। उसे राज्य मे लाते है और उसके पैरो मे सॉकल बॉध देते हैं। सेचनक अपनी सूँड, पूँछ और कानो को स्थिर कर आसानी से सॉकल बँधवा लेता है। तब तपस्वी सेचनक को सॉकलों से आबद्ध देखकर तिरस्कार करते हैं। अरे [क]खल ! तू कितना अधम[ख] है ! हमने तुझे कितने यत्नो से पाला और तूने हमारे ही आश्रम को छिन्न-भिन्न किया। इसी का दुष्परिणाम तुझे भोगना पड रहा है। अरण्य के सुख का त्याग कर सॉकलो मे बँधा रहना पड रहा है।

सेचनक सोचता है, जरूर इन तपस्वियो ने राजा से मेरी शिकायत की है, इसीलिए राजा ने मुझे सॉकलो से बॉधा है, अत मैं अब इन तपस्वियो को मजा चखाता हूँ। ऐसा विचार कर उसने तडातड-तडातड बधन तोड दिये। बधनमुक्त बनकर उसने तपस्वियो को उठा-उठाकर दूर फेक दिया और स्वय जगल की ओर भाग गया।

राजा श्रेणिक उस हाथी को वश मे करने के लिए अश्वारूढ होकर अपने पुत्रो आदि सहित जगल मे गया और चारो तरफ से उसे घेर लिया। वह हाथी मानो व्यन्तर के प्रकोप से ग्रस्त हो, इस प्रकार अपने प्रबल बल का परिचय देता हुआ सभी महावतो का तिरस्कार करता हुआ मदोन्मत्त बना हुआ, किसी के वशीभूत नहीं होता हुआ भयकर उछल-कूद मचा रहा था। तब नन्दीषेण ने उसे बडे प्रेम से सम्बोधित किया। नन्दीषेण की वाणी को श्रवण कर उसे अवधिज्ञान हुआ। किन्हीं आचार्यो के मतानुसार उसे जाति-स्मरण ज्ञान पैदा हो गया और वह बिलकुल शात, प्रशात बन गया।

तब नन्दीषेण उसके समीप आया, दॉत पर पैर रखकर आरूढ हुआ और सेचनक के कुभ-स्थल[ग] पर तीन बार मुष्टि से प्रहार किया जिससे मानो वह हस्ती पूर्ण शिक्षित हो गया। अब उसे राज्य मे लाते है और राजा उसे अपने पट्टहस्ती के रूप मे नियुक्त कर देता है। इधर श्रेणिक राजा राज्य का सचालन कर रहा है, उधर राजगृह मे भगवान् पधारे हुए हैं। मेघकुमार ने सयम अगीकार कर लिया है।

जागरण : नंदीषेण का :

एक दिन नन्दीषेणकुमार भी भगवान् महावीर की धर्मदेशना श्रवण करने गया। भगवान् की देशना श्रवण करके नन्दीषेण विरक्त बना और घर आकर

(क) खल-दुश्मन (ख) अधम-पापी
(ग) कुंभ स्थल-हाथी का मस्तक-ललाट स्थल

उसने माता-पिता से सयम ग्रहण करने की आज्ञा मॉगी। माता-पिता ने अनेक युक्तियो से नन्दीषेण को समझाने का प्रयास किया, लेकिन जब वह नहीं माना तो माता-पिता ने सयम की अनुमति दे दी। तब आकाशवाणी हुई–नन्दीषेण ! अभी तुम्हारे भोगावली कर्म अवशिष्ट हैं, अत कुछ समय गृहस्थ मे रहने के पश्चात् सयम ग्रहण करना।

नन्दीषेण का वैराग्य-भाव प्रबल था। उसमे लीन बना वह सोचने लगा–मेरा सकल्प दृढ है, मैं श्रेष्ठ चारित्र पर्याय का पालन करूँगा तो कर्म स्वत ही नष्ट हो जायेगे।

पुन देववाणी हुई–नन्दीषेण ! तुम मेरी बात मान लो, मेरी भविष्यवाणी मिथ्या नहीं होगी।

नन्दीषेण ने इस आकाशवाणी की उपेक्षा की और वह भगवान् के पास आकर सयम ग्रहण कर लेता है। किन्हीं-किन्ही आचार्यो की यह धारणा है कि नन्दीषेण को सयम लेने के लिए भगवान् ने मना किया, परन्तु प्रबल योग होने से उसने चारित्र अगीकार कर लिया। यह बात कम सगत लगती है, क्योंकि भगवान् तो प्रबल योग को जान ही रहे थे, फिर मना करने का कोई औचित्य नहीं दिखता।

नन्दीषेण मुनि अब सयम मे सतत जागरूक रहने लगे। तपस्या से उन्होने अपने शरीर को कृशकाय[क] बना लिया। वे तप-तेज से अत्यन्त तेजोमय शरीर वाले बन गये। लेकिन निकाचित[ख] भोगावली कर्मों का उदय होने वाला था। अब इन्द्रियों के विषय नन्दीषेण के मन को विह्वल बनाने लगे। तब सोचा–असयम मे जाने से सयम मे मरना अच्छा है, तब कभी वे शस्त्र से घात करने की सोचते तो देवता शस्त्र को धार रहित बना देते। जब अग्नि मे कूदते तो देवता उसे शीतल बना देते। पर्वत से गिरने का प्रयास करते तो देवता बचा लेते और कहते–नन्दीषेण! तुम्हारे निकाचित कर्मो का भोग अभी बाकी है और वह भोग तो तीर्थंकर भगवतो को भी भोगना पडता है। नन्दीषेण मुनि अब भी देवो की बात मानने को तैयार नहीं था।

एक बार एकाकी विहार करने वाले नन्दीषेण मुनि बेले-बेले पारणा करते थे। बेले के पारणे मे एक दिन मुनि नन्दीषेण अनाभोग[ग] दोष से प्रेरित होकर गणिका के भवन मे सयोगवश पहुँच गये और गणिका को सद्धर्म के लिए सम्बोधित किया। तब गणिका ने कहा–मुझे धर्म नहीं, धन चाहिए और वह मुनि की कृशकाया को देखकर खिलखिला कर हॅस पडी। तब मुनि ने उसके उपहास को शात करने के

(क) कृशकाय–दुबला–पतला (ख) निकाचित–जिनका विपाकोदय होता, ऐसे कर्म
(ग) अनाभोग–अनजान

लिए एक तिनका लिया और पूर्वोपार्जित लब्धि से रत्नो का ढेर कर दिया। मुनि नन्दीषेण रत्न ढेर कर लौटने लगे तो गणिका ने कहा–प्राणनाथ ! आप कहाँ पधार रहे हैं। आप चले जायेगे तो मैं अपने प्राणो का उत्सर्ग कर दूँगी। एक क्षण भी आपके बिना एकाकी रहने मे मैं समर्थ नहीं हूँ। यो विविध प्रकार से विलाप करती हुई अपने कटाक्षो से मुनि को वश मे कर लेती है।

मुनि भी उसके प्रेम-पाश मे बधकर प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं प्रतिदिन दस व्यक्तियो को प्रतिबोध देकर प्रव्रज्या के लिए भगवान् महावीर के पास भेजूँगा और जिस दिन दस व्यक्ति तैयार नहीं होगे उस दिन पुन सयम ले लूँगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके सयम वेश का परित्याग कर गणिका के साथ भोग भोगने लगते हैं।

नन्दीषेण मुनि दस व्यक्तियो को प्रतिबोध देने के पश्चात् ही भोजन ग्रहण करते हैं। ऐसा करते-करते उनके एक दिन भोगावली[क] कर्म क्षय हो गये। तब नौ व्यक्ति ही उनके प्रतिबोध से तैयार हुए। अत्यधिक प्रतिबोध देने पर भी दसवॉ व्यक्ति तैयार नहीं हुआ। इधर भोजन तैयार होने पर गणिका ने बुलावा भेजा, लेकिन नन्दीषेण अपना अभिग्रह पूर्ण नहीं होने से नहीं गये और वे सोनी को प्रतिबोध देने लगे। तब अत्यधिक देर होने से गणिका स्वय आई और बोली–स्वामिन! मैंने पहले रसोई तैयार की वो खराब हो गयी, पुन दुबारा भोजन बनाया वो नीरस हो जायेगा। इसलिए आप भोजन ग्रहण कर लो। नन्दीषेण ने कहा–नहीं, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण न हो पाई, इसलिए मैं सयम अगीकार करूँगा। ऐसा कह कर नन्दीषेण भगवान् महावीर के श्रीचरणो मे चले जाते हैं और आलोचना करते हुए सयम अगीकार कर लेते हैं।[160]

राजकुमार मेघ एव नन्दीषेण अपनी सयमी यात्रा का आनन्दपूर्वक निर्वहन कर रहे है। भगवान् के चरणो मे सर्वतोभावेन समर्पित बनकर अपनी आत्मा पर लगे कर्मो का आवरण दूर करने मे तत्पर हैं और भगवान् महावीर ने राजगृह वर्षावास मे अनेक भव्यात्माओ को धर्म-पथ पर अग्रसर कर जीवन मे शाश्वत सुख पाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। आत्मकल्याणकारी मार्ग बताकर भव्यात्माओ का उद्धार कर भगवान् महावीर समीपवर्ती क्षेत्र मे विचरण कर रहे है।

राजगृह का सम्राट् श्रेणिक भगवान् महावीर का अनन्य उपासक वन गया और महारानी चेलना तो विवाह पूर्व ही जिन-धर्मानुरागिणी थी लेकिन राजा श्रेणिक के चारित्र मोहनीय कर्म का प्रगाढ उदय था, जिसके कारण वह श्रावक व्रत भी अगीकार न कर सका। उसके मोहनीय कर्म का उदय था और भोगावली कर्म अवशिष्ट थे। इसलिए वह महारानी चेलना के प्रणय सूत्र में आवद्ध रहता था। वह

(क) भोगावली–भोगने योग्य

अनेक प्रकार की क्रीडाएँ करके रति-सुख का अनुभव करता था। कभी जलक्रीडा करता हुआ कृष्णराज के समान उसकी विशाल केश राशि को खोलता और कभी बॉधता तो कभी केशर-कस्तूरी से उसके गात्र पर आलेखन करता था। कभी मधुर-मधुर प्रणयालाप से चेलना को समाकृष्ट बनाने मे आतुर रहता था।

भयकर शिशिर ऋतु का समागम हो चुका था। उत्तरदिग्गामी शीतल पवन कलेजे मे ठिठुरन पैदा करने लगा। श्रीमत लोग अगीठी जलाकर, गात्र पर केशर आदि का विलेपन कर, शीतकालीन वस्त्रो को धारण कर, गर्भगृह मे बैठकर शीतकाल का समययापन करने लगे।

परन्तु निर्धन लोग, जिनके लिए शिशिरकाल अभिशाप बन कर उपस्थित हुआ, पहनने-ओढने के वस्त्रो के अभाव मे बडे, बूढे, बालक ठिठुर-ठिठुर कर बैठे-बैठे जाडे की राते व्यतीत कर रहे थे। घर मे रहे हुए दरवाजो के अभाव मे टाट-पट्टियो से छनकर आने वाली हवा कलेजे मे तीर की तरह चुभन पैदा कर रही थी। झुग्गी-झोपडियो मे रहने वाले लोग काल-रात्रियो की तरह इन शीतकालीन रात्रियो को घास-फूस जलाकर जैसे-तैसे व्यतीत कर रहे थे।

ऐसे शीतकाल की प्रचण्डता मे साधक-जीवन मे घोर परीषह पैदा होते हैं। मात्र 72 हाथ वस्त्र[161] साधु के लिए और 96 हाथ वस्त्र[162] साध्वी के लिए रखने की भगवान् की आज्ञा है। इतने सीमित वस्त्र, रजाई-बिस्तर का परित्याग, पैर मे जूते-चप्पल पहनने का त्याग और किसी भी प्रकार की अग्नि का सेवन नहीं करना।[163] कितनी कठिन चर्या, तिस पर जैसा स्थान मिल जाये वहीं पर रहना और स्वय के लिए निर्मित आहार-पानी ग्रहण नहीं करना। अहो ! कितनी कृच्छ साधना है, परन्तु आत्माभिमुखी साधक देह पर रहे हुए ममत्व का परित्याग कर देता है। इसलिए वह शीतकालीन परीषह को समभावपूर्वक सहन करता हुआ अपनी निर्दोष सयमीचर्या का पालन करता है।

इसी शिशिर ऋतु की कॅपकॅपाती ठड मे विचरण करते हुए भगवान् महावीर पधारे। प्रभु के पधारने के समाचारो को श्रवण कर राजा श्रेणिक एव चेलना भगवान् को वदन-नमस्कार करने हेतु गये। जब वे प्रभु को वदन- नमस्कार करके पुन लौट रहे थे तो दोपहर व्यतीत हो चुका था। रास्ते मे उन्होने एक प्रतिमाधारी मुनि को उत्तरीय[क] रहित जलाशय से कुछ दूर शीत की आतापना लेते हुए देखा। उन्हे देखकर श्रेणिक एव चेलना वदन-नमस्कार करने के लिए रथ से नीचे उतरते हैं और वदन- नमस्कार करके पुन रथारूढ होते हैं।

(रथ में) चेलना—अरे धन्य है! मुनिराज को जो इस भयकर शीतकाल मे आतापना ले रहे हैं।

(क) उत्तरीय–ओढ़ने का वस्त्र

श्रेणिक—हॉ, मुनि-जीवन की साधना सर्वोत्तम है। भगवान् महावीर के साधको की चर्या अत्यन्त क्लिष्ट है।

चेलना—देह-ममत्व-परित्याग का यह उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्रेणिक—हॉ, मुनि इन्द्रिय विजेता होते हैं, इसी कारण वे कर्मवृन्द को समाप्त कर अनुत्तर गति[क] को प्राप्त करते हैं।

चेलना—ऐसे शीतकाल मे अपने को कोई बिस्तर का परित्याग करना पडे तो

श्रेणिक—सुदुष्कर है, सुदुष्कर है।

(पथ समाप्त हो जाता है, दोनो राजभवन मे चले जाते हैं)

महलों में आग :

कुछ ही समय पश्चात् सूर्य अस्ताचल की ओर चला जाता है। रात्रि के आगमन के साथ ही शीतल पवन के झोके शरीर मे कम्पन्न पैदा कर रहे हैं। कर्पूर की धूप से सुवासित वासगृह[ख] मे श्रेणिक अपना राजकीय कार्य सम्पूर्ण कर चला जाता है और जहॉ चेलना शयन कर रही थी, वही जाकर स्वयमेव विश्राम करने लगता है। अर्धरात्रि के समय नीद मे श्रेणिक के शीतल हाथ का स्पर्श चेलना के लगता है तो उसके मुॅह से सीत्कार की ध्वनि निकलती है। उसी समय चेलना को प्रतिमाधारी मुनि का स्मरण हो आता है और मुॅह से शब्द निकलते हैं—"अरे ! कितनी जबरदस्त ठड है। इस ठड मे उनका क्या होगा?" ऐसा बोलकर पुन सो जाती है।

राजा श्रेणिक चेलना के इन शब्दो को श्रवण कर भ्रमित हो जाता है और चितन करता है वस्तुत चेलना दुराचारिणी स्त्री है। मै इससे कितना प्रेम करता हूॅ और यह किसी दूसरे का स्मरण कर रही है। अव क्या करना चाहिए इसको कोई कडी सजा देनी चाहिए क्या सजा दूॅ क्या सजा दूॅ। बस, इसी उधेड-बुन मे सम्पूर्ण रात्रि जगते-जगते व्यतीत कर देता है।

प्रात काल होने पर सम्राट् श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाया। तव अभयकुमार ने तुरन्त उपस्थित होकर पितृ चरणो मे प्रणाम किया और कहा—पिताश्री ! आदेश दीजिए, आपने किस कारण याद किया है?

श्रेणिक—अभय ! मेरा पूरा अन्त पुर दुराचार से दूषित है। इसलिए तू अभी समस्त अन्त पुर को जला देना। इस कार्य को करते हुए अपनी माताओ के प्रति जरा भी ममत्व मत रखना।

(क) अनुत्तर गति–मोक्ष (ख) वासगृह–शयनकक्ष

अभयकुमार "जो आज्ञा" कहकर चल देता है।

राजा श्रेणिक के मन मे उथल-पुथल मची है कि आखिरकार चेलना का वह प्रेमी है कौन जिसे वह नीद मे भी स्मरण करती है। यह किससे जानकारी करूँ   सहसा राजा श्रेणिक को भगवान् महावीर का स्मरण होता है और चितन करता है कि इन सबका यथोचित समाधान भगवान् के श्रीचरणो मे मिल सकता है। ऐसा सोचकर श्रेणिक राजा भगवान् महावीर के समीप पहुँचा।

इधर अभयकुमार ने सोचा—यद्यपि मेरी समस्त माताएँ शील की देवियाँ हैं, लेकिन फिर भी पिता की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य है। अत ऐसा करूँ जिससे पितृ-आज्ञा का पालन भी हो जाये और माताओ के शील की रक्षा भी। यही सोच अभयकुमार ने हाथी बाँधने की जीर्ण शालाओ मे आग लगा दी, जो अन्त पुर के पास थी और उद्घोषणा कर दी कि अन्त पुर जल रहा है।

राजा श्रेणिक भगवान् के समीप पहुँच चुके हैं। अवसर देखकर प्रभु से प्रश्न करते हैं—भगवन ! चेलना एक पति वाली है या अनेक पति वाली?

प्रभु ने फरमाया—श्रेणिक ! शीलधर्म का पालन करने वाली चेलना एक पतिवाली है, उस पर सदेह करना व्यर्थ है। तब श्रेणिक राजा दौडता हुआ अपने नगर की ओर जाने लगा। मार्ग मे ही अभयकुमार मिल गया। उसे देखते ही श्रेणिक ने पूछा—अरे ! क्या अन्त पुर मे आग लगा दी?

अभय—हाँ पिताश्री, मैने आपके आदेश का पालन किया है।

श्रेणिक (आवेश में)—अरे माताओ के मर जाने पर तू जिन्दा कैसे है? तू उस आग मे कूदकर क्यो नहीं मरा?

अभय—पिताश्री मैंने तो भगवान् के वचनो को जीवन मे उतारा है। मैं अकाल मृत्यु नहीं मरूँगा। मुझे तो अवसर आने पर प्रभु की सन्निधि मे सयम अगीकार करना है।

श्रेणिक—अरे ! यह बहुत बुरा हुआ   बहुत खराब हुआ। ऐसा कहते-कहते श्रेणिक मूर्च्छित हो गया।

अभयकुमार ने हवा आदि करके राजा को होश दिलाया और होश आने पर कहा—पिताश्री, मेरी माताएँ अत पुर मे सुरक्षित हैं। यद्यपि आपने उन्हे जलाने की आज्ञा दी थी लेकिन मैंने अन्त पुर मे आग लगाने के बजाय समीपवर्ती जीर्ण हस्तीशालाओ मे आग लगा दी। यह मेरा अपराध हुआ कि मैंने आपकी आज्ञा का पूर्णरूपेण पालन नहीं किया।

श्रेणिक–अभय ! तुझे बार-बार साधुवाद है। तू वास्तव मे मेरा अतिजात[क] पुत्र है। चल, अब अन्त पुर की ओर चलते हैं।[164]

श्रेणिक और अभयकुमार चेलना के पास जाते हैं। तब श्रेणिक पूछता है–चेलना, रात्रि मे तू बोल रही थी, उनका क्या हो रहा होगा? उसका तात्पर्य?

चेलना–राजन् ! शीत भयकर थी, तब उस समय आपका ठडे हाथ का स्पर्श हुआ तो मेरे मुँह से सीत्कार निकली। मैंने चितन किया कि मखमली गद्दे-रजाइयो मे मैं मात्र शीत हस्त-स्पर्श से सीत्कार करने लगी तब शीतकालीन आतापना लेने वाले उन प्रतिमाधारी मुनि का क्या होता होगा?

श्रेणिक–ओह ! कितना धर्म का अनुराग है कि नींद मे साधुओ के प्रति तुम्हारा जबरदस्त अहोभाव। तुम वस्तुत जिन-धर्मानुरागिनी हो, जिनेश्वर उपासिका हो। इस प्रकार वार्तालाप से वातावरण हर्षमय बन जाता है।

एक स्तम्भ प्रासाद :

चेलना के गुणो को देखकर श्रेणिक का मन-मधुप निरन्तर उसकी ओर समाकृष्ट होने लगा और वह प्रणय के वातायन मे झॉककर देखने लगा कि चेलना मुझे सर्वाधिक प्रिय है। अतएव उसके लिए एक स्तम्भ पर बनने वाले प्रासाद का निर्माण करवाऊँ जिससे वह मानो विमान मे रहने वाली देवी की तरह स्वेच्छा से क्रीडा कर रही है।

ऐसा विनिश्चय करके श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाया और कहा–वत्स! चेलनादेवी के लिए एक स्तम्भ वाले प्रासाद का निर्माण करवाओ।

अभय–जैसी आज्ञा ! यो कहकर अभयकुमार वहॉ से चल दिया।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने सूत्रधार[ख] को बुलाया और कहा–तुम जगल मे जाओ और एक स्तम्भ पर महल का निर्माण हो सके ऐसा काष्ठ लेकर आओ।

जैसी आज्ञा ! यो कहकर सूत्रधार जगल मे गया और वहॉ जाकर वृक्ष का चयन करने के लिए प्रत्येक वृक्ष का निरीक्षण करने लगा। निरीक्षण करते-करते वह एक उत्तम लक्षण वाले वृक्ष के पास पहुँच गया। उसे देखकर विचार किया कि घनी छॉव वाला, गगनचुम्बी, फल-फूलो से लदी डालियो वाला, मोटी शाखा वाला, विशाल स्कन्ध वाला यह वृक्ष सामान्य नहीं है। इस वृक्ष पर अवश्यमेव किसी व्यन्तर देव का निवास-स्थान है।

अतएव सर्वप्रथम इस देव की आराधना करनी चाहिए, उसके पश्चात् वृक्ष

(क) अतिजात–कुल के गौरव मे वृद्धि करने वाला (ख) सूत्रधार–बढई, दस्तकार

का छेदन, ताकि मेरे और मेरे स्वामी के कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जाये। इस प्रकार चितन करके उस बढई ने उपवास किया। उपवास करके गध, धूप, माल्यादि से उस वृक्ष को सुवासित किया। तभी वृक्ष आश्रित व्यन्तर देव अपने आश्रय की रक्षा के लिए अभयकुमार के पास आया और बोला–कुमार ! तुम उस बढई को मना करो। जिस वृक्ष का वह छेदन करने जा रहा है, वह वृक्ष मेरा आश्रयभूत है। मै स्वय तुम्हारी महारानी के लिए एक स्तम्भ वाले प्रासाद का निर्माण करवा दूँगा। साथ ही सर्वऋतुओ से मडित, सर्व-वनस्पतियो से शोभित नन्दनवन जैसा उद्यान भी बना डालूँगा।

अभयकुमार ने देव से कहा–"ठीक है।" देव अपने स्थान पर लौट गया और अभयकुमार ने बढई को जगल से बुला लिया। उसने बढई से कहा–हमारा सर्वकार्य सिद्ध हो गया है, अब हमे प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है। बढई अपने स्थान को लौट गया।

व्यन्तर देव वचनबद्ध था। उसने अपने वचनानुसार अतिशीघ्र एक स्तम्भ वाले प्रासाद का एव नन्दनवन सम उद्यान का निर्माण कर दिया और अभयकुमार से कहा–कुमार, मैंने अपनी प्रतिज्ञानुसार प्रासाद व उद्यान का निर्माण कर दिया है।

अभयकुमार देव से यह श्रवण कर सम्राट् के पास गये और व्यन्तर द्वारा प्रासाद एव उद्यान के निर्माण की बात बताई। श्रेणिक यह श्रवणकर अत्यन्त प्रमुदित हुआ। उसने चेलना को वह प्रासाद समर्पित कर दिया और स्वय वहाँ चेलनादेवी के साथ विपुल भोग भोगने लगा।

आम्रहरण : विद्याग्रहण :

राजगृह नगर मे अनेक व्यक्ति अनेक कला-कौशल से सम्पृक्त थे। यहाँ एक मातग नामक विद्या-सिद्ध व्यक्ति रहता था। एक बार उसकी पत्नी सगर्भा हुई। तब उसे दोहद पैदा हुआ–आम्रफल खाने का। उसने अपने पति से कहा–स्वामिन् ! मुझे दोहद पैदा हुआ है–आम्रफल खाने का।

पति बोला–देवी ! अकाल मे आम्रफल कहाँ मिलेगा?

उसकी पत्नी बोली–आप चेलना के उद्यान में जाओ, वहाँ आम्रफल मिल जायेगा।

उसने कहा–ठीक है। ऐसा कहकर वह चेलना के उद्यान के पास आया। वहाँ उसने देखा आम्रवृक्ष पर परिपक्व आम्रफल लटक रहे थे, लेकिन वह वृक्ष बहुत ऊँचा था और उद्यान से बाहर रहकर उसमे से तोडना सभव नहीं था। वह वहाँ देखकर चला गया। रात्रि मे आया, अपनी विद्या से डाली नीचे की और स्वेच्छा से आम्रफल तोडकर घर ले गया।

दूसरे दिन प्रात काल महारानी चेलना सदा की भॉति उद्यान मे परिभ्रमण करने लगी। अनेक तरुवृन्दो की शोभा निहारती-निहारती वह आम्रवृक्ष के समीप पहुॅची। आम्रवृक्ष की ओर दृष्टि जाते ही वह दग रह गयी। सोचने लगी—अरे यह क्या? किसने आम्रफल चुराये? इतने आम्र बगीचे मे से कहॉ गायब हो गये? वह सोच-सोचकर बेचैन हो गयी, लेकिन उसे समाधान नहीं मिला। आखिरकार वह राजा श्रेणिक के पास पहुॅच गयी। श्रेणिक ने चेलना को देखकर पूछा—इस समय तुम यहॉ?

चेलना—अरे ! क्या बताऊॅ, वाटिका मे से कोई व्यक्ति आम्रफल चुरा कर ले गया है। लगता है कोई शातिर चोर है।

श्रेणिक—कब ले गया?

चेलना—लगता है, रात्रि मे ले गया क्योकि कल सुबह तक तो सब-कुछ ठीक था।

श्रेणिक—अच्छा, चोर का पता लगाता हूॅ।

श्रेणिक राजा ने अभयकुमार से कहा—अभय ! चेलना की वाटिका मे से कोई आम्रफल चुराकर ले गया है। वृक्ष की डालियॉ ऊॅची थी, लगता है किसी विद्या के बल से उसने डालियॉ नीची करली और आम्रफल चुरा लिये। उस चोर का पता लगाना जरूरी है। वह असामान्य चोर अन्त पुर मे भी कभी चोरी कर सकता है।

अभयकुमार—पिताश्री थोडे समय मे ही चोर का पता लगाता हूॅ। यो कहकर अभयकुमार कार्य मे व्यस्त हो गया।

चोर का पता लगाने के लिए नित्यप्रति नगर मे घूमने लगा। एक दिन घूमते-घूमते अभयकुमार एक स्थान पर पहुॅचा जहॉ नाटक होने वाला था। जनता की बहुत भीड एकत्र थी लेकिन नट-मण्डली का आगमन नहीं हुआ था। सव नट-मण्डली का इतजार कर रहे थे। तब अवसर का लाभ उठाते हुए अभयकुमार ने कहा—जव तक नट-मण्डली नहीं आती, मे तुमको एक कथा सुनाता हूॅ और यो कहकर कहानी सुनाना प्रारम्भ किया और वहॉ वैठी जनता एकाग्र मन से श्रवण करने लगी।

प्राचीन काल मे बसन्तपुर नामक एक नगर था। वहॉ एक जीर्ण (निर्धन) सेठ रहता था। उसके एक कन्या थी। वह उत्तम वर पाने के लिए कामदेव की पूजा करने लगी। इस हेतु वह प्रतिदिन उद्यान से चोरी करके पुष्प लाती। पुष्पों के निरन्तर चुराये जाने से उद्यान के माली ने एक दिन सोचा कि पुष्प-चोर को पकडना चाहिए

देखकर भगवान् से पूछा—भते ! हम आपश्रीजी के दर्शनार्थ आ रहे थे तब मार्ग मे एक नवजात बालिका पडी थी। मैं स्वय उसके पास गया लेकिन उसके शरीर से भयकर दुर्गन्ध फूट रही थी। वहॉ खडा रहना मुश्किल था। भगवन्, हम उस लडकी को वहीं छोडकर आ गये। उसका भविष्य क्या है? वह लडकी कहॉ से आई है? उसके शरीर मे से दुर्गन्ध क्यो आ रही है?

श्रेणिक राजर्षि के पूछने पर प्रभु ने फरमाया—श्रेणिक ! राजगृह के पास प्रदेश मे धनमित्र नामक एक श्रेष्ठी रहता था। उस श्रेष्ठी की पत्नी ने समय आने पर एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम धनश्री रखा। वह धनश्री शनै -शनै बडी होने लगी और क्रमश यौवन अवस्था को उसने सम्प्राप्त कर लिया। श्रेष्ठी ने योग्य वर देखकर कन्या का विवाह तय कर दिया। ग्रीष्म ऋतु मे विवाह की तिथि तय कर दी। जोर-शोर से विवाह की तैयारियॉ चलने लगी। उत्सव प्रारम्भ हो गया तभी सुदूर क्षेत्र से विहार करके एक मुनि श्रेष्ठी के यहॉ पर गोचरी हेतु पधारे। सेठ ने अपनी पुत्री से कहा—बेटी ! मुनिराज आये हैं, तुम सुपात्र दान का लाभ ले लो। अपने पिता की प्रेरणा से वह मुनि को आहार बहराने लगी। उस समय मुनि के शरीर व कपडो से पसीने की गध आ रही थी। उसने चितन किया—अरे! प्रभु का शासन वैसे तो सर्वोत्तम है, लेकिन यदि स्नान करने की छूट रहती तो कितना अच्छा होता। बस, इतना-सा मुनि के प्रति जुगुप्सा भाव पैदा हुआ और उसने जीवनपर्यन्त इस भाव की आलोचना नहीं की, प्रायश्चित्त नहीं लिया तो वह मृत्यु आने पर काल करके राजगृह नगर की नगरवधू के गर्भ मे पैदा हुई। गणिका ने गर्भ गिराने का बहुत उपाय किया लेकिन सब उपाय निरर्थक रहे। उस गणिका ने समय आने पर एक कन्या को जन्म दिया। उस कन्या के शरीर से भयकर दुर्गन्ध आ रही थी। गणिका ने उस कन्या को विष्ठा की तरह सडक पर फेक दिया और वही कन्या तुम्हे रास्ते मे दिखाई पडी।

भते ! इस कन्या का भविष्य क्या है? श्रेणिक द्वारा पूछने पर भगवान् ने फरमाया—श्रेणिक ! इसने दु ख भोग लिया है, अब इसके सुख का समय आने वाला है। आठ वर्ष की उम्र होने पर यह तुम्हारी रानी बनेगी।[166]

श्रेणिक—भगवन ! मैं कैसे पहचानूँगा कि यह वही दुर्गन्धा है?

भगवान्—एक बार अन्त पुर मे क्रीडा करते हुए यह तुम्हारी पीठ पर चढकर हॅसेगी, तब तुम जान लेना कि यह वही दुर्गन्धा है।

श्रेणिक—अहो ! घोर आश्चर्य है कि यह दुर्गन्धा मेरी पत्नी बनेगी . पत्नी बनेगी। इन्हीं विचारो मे डूबा राजा श्रेणिक प्रभु को वदन- नमस्कार करके लौट गया।

रास्ते मे उसने दुर्गन्धा को देखने का प्रयास किया, लेकिन खूब खोजने पर

भी उसे वह कन्या नहीं मिली। श्रेणिक राजा अपने प्रासाद मे प्रविष्ट हुआ।

इधर दुर्गन्धा के शरीर की दुर्गन्ध[LXXII] व्यपगत हुई। वह सडक पर पडी थी और एक बध्या आभीरी युवती उधर से गुजरी। उसने दुर्गन्धा के रूप और लावण्य को देखा। उसे देखकर उसने उस बालिका को उठा लिया। अपने घर ले गयी और वात्सल्य-भाव से ओत-प्रोत उसका लालन-पालन करने लगी।

चोर बना अचोर :

राजगृह नगर मे जहा अनेक दातार लोग पैदा हुए वहीं पर भीषण उत्पात मचाने वाले चोर-लुटेरे भी, जिन्होने जनता मे त्राहि-त्राहि मचा दी। ऐसे-ऐसे लुटेरे भी भगवान् की वाणी श्रवणकर ससार-सागर से तिर गये। उन्हीं लुटेरो मे एक था–रोहिणेय चोर। उसके पिता का नाम था–लोहखुर। वह लोहखुर राजगृह नगर के समीप वैभारगिरि की विषम कन्दरा[क] मे रहता था। वह रौद्ररस की तीव्रता को धारण करने वाला, परद्रव्य हरण और परस्त्री हरण मे पारगत था। नगर के महल और भडार पर स्वय का आधिपत्य जमाते हुए वह निरन्तर निर्भय होकर चोरी करता था। उसकी रोहिणी नामक पत्नी आकृति एव चेष्टा मे मानो उसकी प्रतिकृति थी। एक बार रोहिणी ने एक पुत्र का प्रसव किया, जिसका नाम रोहिणेय रखा। रोहिणेय भी युवा होकर लोहखुर के पथ का अनुकरण करने लगा। चौर्यकर्म मे वह इतना निष्णात बन गया कि उसने अपने पिता को भी पीछे छोड दिया।

लोहखुर अब अपने जीवन की अन्तिम घडियॉ गिन रहा था, तब उसने अपने पुत्र रोहिणेय को बुलाया और कहा–बेटा ! मैं जीवन की अन्तिम शिक्षा तुम्हे देना चाहता हूँ।

रोहिणेय–कहिए पिताश्री ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

लोहखुर–बेटा, तू चोरी करने सब जगह जाना, लेकिन एक बात का खयाल रखना कि जहॉ भगवान् महावीर का समवसरण हो, वहॉ उपदेश श्रवण करने मत जाना।

रोहिणेय–पिताश्री ! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

लोहखुर पुत्र के वाक्य श्रवण कर अत्यन्त हर्षित हुआ और उसने उसी समय अपने प्राणो का व्युत्सर्ग कर दिया। पिता को परलोक पहुॅचा हुआ जानकर रोहिणेय ने पिता की पार्थिव देह का अन्तिम सस्कार किया ओर तदनन्तर वह चौर्यकर्म मे सलग्न हो गया। वह अपने चौर्यकर्म से राजगृह नगर मे भयकर उत्पात मचाने लगा।

भगवान् भी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चौदह हजार मुनियो सहित राजगृह

(क) कंगरा-गुफा

नगर पधारे। देवो ने राजगृह मे समवसरण की रचना की उस समय रोहिणेय चोर राजगृह नगर मे चोरी करने गया। उसके पास मे गगन गामिनी पादुकाएँ थी और वह रूप परावर्तनी विद्या भी जानता था इसलिए दिन के समय भी वह एक घर मे घुसकर चोरी करने लगा। पडौसियो को पता लगा लोग एकत्रित हो गये वह भागा तो जल्दी-जल्दी मे गगन-गामिनी पादुकाएँ वही रह गयी। जिस मार्ग से भाग रहा था उधर ही भगवान् का समवसरण था। जैसे ही भगवान् का समवसरण उसके दृष्टिपथ मे आया, उसने चितन किया "अरे ! यह भगवान् का समवसरण है, यदि मैं इधर से निकलूँगा तो पितृ आज्ञा भग का दोष लगेगा, लेकिन राजगृह मे जाने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग भी नहीं। तब क्या करूँ ? वापिस लौट जाऊँ ? नहीं नहीं वापिस तो नहीं जाऊँगा। अरे हॉ ! ऐसा करता हूँ कि अपने दोनो कर्ण छिद्रो को अगुलियो से ढक लेता हूँ। तब मेरा कार्य भी हो जायेगा और पिता की आज्ञा का पालन भी। यही श्रेष्ठ उपाय है।" यही चितन कर उसने अपने कर्ण-कुहरो मे अगुलियॉ डाल ली और समवसरण के समीप से गुजरने लगा। लेकिन होनहार बलवान है, इसान सोचता कुछ है और घटित होता कुछ और है। तमन्नाएँ, तमन्नाएँ ही रह जाती हैं।

रोहिणेय चोर जैसे ही समवसरण के समीप से गुजर रहा था, वैसे ही उसके पैर मे कॉटा लग गया, कॉटा भी ऐसा, जिसको निकाले बिना आगे कदम रखना असम्भव था। तब उसने एक हाथ को कान से हटाकर कॉटा निकालना प्रारम्भ किया और प्रभु की वाणी उसके कानो मे हलचल पैदा करने लगी। क्योकि निषेध मे आकर्षण होता है, प्रतिकार के प्रति उत्सुकता जाग जाती है। उसका हाथ कॉटा निकाल रहा है तो कान प्रभु की वाणी को ग्रहण कर रहे हैं। प्रभु फरमा रहे है –

"जिनके चरण धरती पर सस्पर्शित नहीं होते, जिनके नेत्र निर्निमेष रहते हैं, जिनके गले मे धारण की हुई पुष्प माला खिलती हुई रहती है, जिनका गात्र स्वेद[क] एव रजकणो से रहित होता है, वे देव होते हैं।"[167]

प्रभु के इन वचनो को श्रवण कर रोहिणेय चितन करता है "ओह ! मैंने बहुत सुन लिया मुझे धिक्कार है धिक्कार है।" और वह जल्दी से कॉटा निकालकर तीव्र कदमो से वहॉ से चला जाता है।

राजगृह मे प्रविष्ट होकर रोहिणेय दिन-दहाडे चोरी करता है। उसके पास मे इस प्रकार का अजन था, जिसे वह ऑखो मे लगा लेता और अदृश्य हो

(क) स्वेद–पसीना

जाता। इस प्रकार निरन्तर अदृश्य चोरियॉ होने से राजगृह की जनता मे आतक फैल गया। जनता के सब्र का बॉध टूट गया और सेठ-साहूकारो ने मिलकर राजा श्रेणिक से एक दिन शिकायत कर ही डाली कि राजन् ! आपके राज्य मे हमे अनेक प्रकार की सुविधाएँ हैं, हमे किसी प्रकार का कोई भय नही है, लेकिन एक चोर दिन-दहाडे हमारे घरो को, हमारी दुकानो को लूट रहा है। इससे हमारे हृदय निरन्तर सशकित हो रहे हैं।

राजा–तुम्हारी इस समस्या का समाधान कर ही देगे, तुम निश्चिन्त रहो।

राजा के आश्वासन से सेठ-साहूकार आश्वस्त बन जाते हैं। तब श्रेणिक राजा कोतवाल को बुलाकर कहता है–क्या तुम चोर हो? या चोर के भागीदार हो कि तुम्हारे रहते हुए चोर नगर को लूट रहा है।

तब कोतवाल बोला–राजन् ! रोहिणेय नामक चोर इस कदर जनता को लूट रहा है कि वह देखने पर भी दिखाई नहीं देता है। वह इतना फुर्तीला है कि विद्युत्-किरणो की भॉति उछलता हुआ, बन्दर की तरह छलॉग लगाता हुआ, एक आवाज लगाये जितने मे एक घर से दूसरे घर जाता हुआ नगर का किला तक भी उल्लघन कर लेता है। अतएव राजन् मैं उसे पकडने मे सामर्थ्यवान नहीं हूँ।

तब राजा श्रेणिक ने भृकुटी तान ली। उसी समय प्रज्ञा के सागर अभयकुमार ने कोतवाल से कहा–तुम गुप्त रीति से चतुरगिणी सेना सजाकर नगर के बाहर पडाव डाल दो, जब चोर नगर मे प्रवेश करे, तब उसे पकड लेना। कोतवाल ने दूसरे दिन वैसा ही किया। नगर के बाहर गुप्त रीति से पडाव डाल दिया। प्रथम दिन तो रोहिणेय आया ही नहीं और दूसरे दिन जैसे ही नगर मे रोहिणेय ने प्रवेश किया, सेना ने उसे पकडकर बदी बना लिया ओर तब लाकर राजा को सौंप दिया। राजा ने उसे अभयकुमार को सौंप दिया ओर उस चोर से पूछा–तू कहॉ का रहने वाला है? तेरी आजीविका कैसे चलती हे? तू इस नगर मे किसलिए आता हे और तुम्हारा नाम रोहिणेय हे, क्या यह बात सत्य है?

राजा के इन प्रश्नो को श्रवण कर रोहिणेय ने विचार किया कि राजा को अभी तक मेरे नाम पर सदेह है? अतएव उसका लाभ उठाना चाहिए। यही सोचकर रोहिणेय बोला–राजन् ! मैं शालिग्राम का रहने वाला दुर्गचण्ड नामक कुटुम्बी हूँ। किसी प्रयोजनवश मैं राजगृह मे आया था। किसी देवालय मे रात्रि विश्राम के लिए रुका था। बहुत रात्रि बीतने पर घर जाने के लिए निकला, तो आपका कोतवाल पकड़ने लगा। इसके भय से त्रस्त हुआ मैं किले का उल्लघन करने लगा तो किले के बाहर रहने वाले सिपाहियो ने मुझे पकड लिया। क्या इस प्रकार निरपराधी व्यक्ति को पकड कर रखना न्यायसगत है?

राजा रोहिणेय की बात श्रवण कर सशक बन जाता है, वह गुप्त रीति से पुरुषो को शालिग्राम जानकारी के लिए भेजता है। उस रोहिणेय ने पहले ही शालिग्राम के लोगो को सकेत कर रखा था। इसलिए जैसे ही गुप्तचरो ने शालिग्राम वालो से पूछा कि क्या यहॉ पर दुर्गचण्ड नामक कोई कुटुम्बी रहता है? तब गॉव वालो ने कहा—हॉ, लेकिन इस समय वह दूसरे गॉव गया हुआ है। गुप्तचरो ने आकर राजा से वैसा ही निवेदन कर दिया। तब अभयकुमार ने कहा—कपट का जाल अत्यन्त पेचीदा होता है, उसका अन्त तो ब्रह्मा भी नहीं जान सकते। अब मैं इसके चौर्यकर्म का पर्दाफाश करता हूँ, यो कहकर अभयकुमार ने सात मजिला, रत्नजटित एक महल बनवाया। वह प्रासाद अपनी रमणीय आभा से स्वर्गोपम लग रहा था। उस भव्य प्रासाद मे अभयकुमार ने गधर्व[क] सगीत प्रारम्भ करवाया, जिसमे वह गधर्वनगर[ख]-सम अभिगुजित होने लगा।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने चोर को मद्यपान करवाकर उसे बेसुध कर दिया और देवदूष्य वस्त्र पहिनाकर उस महल की मखमली शय्या पर उसे लिटा दिया। अनेक युवक-युवतियो को पलग के चारो ओर वस्त्राभूषणो से परिमण्डित[ग] करके ऐसा खडा कर दिया मानो उसकी सेवा मे देव और अप्सराएँ खडी हो। अब जैसे ही उस रोहिणेय का नशा उतरा, वैसे ही देवरूप धारण करने वाले युवक-युवतियो ने कहा—हे नाथ ! आपकी जय हो। हे भद्र ! आपकी जय हो। इस विशाल विमान में आप हमारे स्वामी बनकर देवरूप मे पैदा हुए हो। हम आपका स्वागत करते हैं, आप इन अप्सराओ के साथ विपुल देव सम्बन्धी दिव्य भोगो को भोगो। तब रोहिणेय असमजस की स्थिति मे आ गया कि क्या मैं वस्तुत देव बन गया हूँ।

उसी समय प्रतिहारी ने कहा—नाथ ! आपने पूर्वभव मे कौनसा सुकृत या दुष्कृत किया, जिससे आपको यह स्वर्ग का सुख मिला है?

तब रोहिणेय ने सशयग्रस्त होकर चितन किया कि अरे ! मैं वास्तव मे देवलोक मे पैदा हुआ हूँ? या अभयकुमार ने मेरी परीक्षा लेने हेतु ऐसा स्वाग रचा है? अब कैसे सत्य के निकट पहुँचूँ। सत्य के निकट पहुँचने के लिए महापुरुषो के वचन ही आश्रयणीय होते हैं। बस, यही सोचकर वह भगवान् महावीर का स्मरण करने लगा। तब उसके स्मृतिपट पर भगवान् महावीर के उन वचनो का स्मरण हो आया कि जब मैं कॉटा निकाल रहा था, तब भगवान् ने देवो की पहिचान बतलाई थी। अब उसके अनुसार ही परीक्षा करके देखता हूँ

(क) गंधर्व–गधर्व नामक व्यतरों का प्रिय संगीत (ख) गंधर्वनगर–गंधर्व नामक व्यंतरों का नगर
(ग) परिमण्डित–सुसज्जित

कि ये वस्तुत यह स्वर्ग है या अभयकुमार द्वारा विरचित प्रपच है। ऐसा ही विनिश्चय करके रोहिणेय ने उन गधर्वो और अप्सराओ की ओर देखा और देखकर निर्णय करने लगा–"अरे ! इनके तो पैर धरती का सस्पर्श कर रहे हैं, नेत्र टिमटिमा रहे हैं, शरीर पर मोतियो की लडी की तरह स्वेद बिदु चमक रहे हैं। ये वस्तुत देव नहीं, ये अभयकुमार द्वारा रचित माया है।" अतएव रोहिणेय ने निश्चित होकर उस प्रतिहारी पुरुष से कहा–मैंने पूर्वभव मे सुपात्र दान दिया है, सद्गुरु की सेवा की है।

प्रतिहारी–और कोई दुष्कृत्य किया हो, वह भी बताओ।

रोहिणेय–मैंने कोई दुष्कृत्य नहीं किया।

प्रतिहारी–सम्पूर्ण जीवन एक जैसे स्वभाव मे व्यतीत नहीं होता, कभी जीव सुकृत्य करता है तो कभी दुष्कृत्य भी। इसलिए चोरी आदि कोई भी दुष्कृत्य आपने किया हो तो बताओ।

रोहिणेय–दुष्कृत्य करने वाला क्या कभी स्वर्ग प्राप्त करता है? क्या अधा पुरुष पर्वत पर आरोहण करता है?

तब वह प्रतिहारी जान गया कि यह चोर ऐसे सत्य नहीं बोलेगा। अतएव उसने सारी बात जाकर राजा से निवेदन करदी। राजा ने अभयकुमार से कहा कि चोर इन उपायो से पकडा नहीं जा रहा है, अत हमे चोर को छोड देना चाहिए क्योकि हमने चोर को छल से पकडा है। अत नीति का उल्लघन नही करना चाहिए। पितृ-वचन को शिरोधार्य कर अभयकुमार ने चोर को मुक्त कर दिया। मुक्त होने के पश्चात् रोहिणेय ने विचार किया कि मेरे पिता की आज्ञा को धिक्कार है कि मैं भगवान् का प्रवचन नहीं सुन सका। यदि कॉटा निकालते समय मैं भगवान् के वचनो को नहीं सुनता तो आज में यमलोक पहुँच जाता। प्रभु के स्वल्प उपदेश से मेरे प्राण सुरक्षित रह गये तो यदि सारा उपदेश सुन लूँ तो सब-कुछ अच्छा होगा, ऐसा चितन कर वह प्रभु चरणो मे पहुँच गया।

भगवान् के समीप जाकर शुद्ध मन से आलोचना करने लगा–भते ! मेरे पिता ने आपके वचनो को सुनने का निषेध किया था, इसलिए में इधर से निकला तो कानो मे अगुली डाली, लेकिन कॉटा चुभा, मैंने अगुली निकाली, आपके वचन सुने, उससे आज मैं यमलोक जाता हुआ वच गया। भगवन् ! अव में परिपूर्ण आस्था से आपके उपदेश को श्रवण करने आया हूँ।

भगवान् ने रोहिणेय की वात को सुना और उस समय उस विशाल परिषद को एव रोहिणेय को धर्मोपदेश दिया, जिसे श्रवण कर रोहिणेय के भीतरी मन मे

वैराग्य भावना का जागरण हुआ और वह सयम लेने हेतु उद्यत हुआ। उसी सभा मे श्रेणिक राजा भी था। तब रोहिणेय ने राजा श्रेणिक से कहा—राजन्! मैं रोहिणेय चोर हूँ। मै अभयकुमार की बुद्धि का छल द्वारा उल्लघन कर गया। मैने आपके पूरे नगर को लूटा। अब आप मेरे साथ किसी को भेजो ताकि मैं चोरी का समग्र माल दे देता हूँ और उसके पश्चात् मैं दीक्षा लूँगा।

विस्मयान्वित हो राजा श्रेणिक ने अभयकुमार सहित कई व्यक्तियो को भेजा। रोहिणेय ने जहॉ-जहॉ धन छिपा रखा था वहॉ-वहॉ पर्वत, सरिता, कुज[क], श्मशान आदि से धन निकाल कर दे दिया। अभयकुमार ने भी जिस-जिस का धन था, उस-उस व्यक्ति को पुन धन लौटा दिया।

तत्पश्चात् रोहिणेय ने अपने पारिवारिक जनो से दीक्षा की अनुमति मॉगी, श्रेणिक राजा ने उसका अभिनिष्क्रमण[ख] महोत्सव किया और रोहिणेय[LXXIII] भगवान् के मुखारविन्द से सयम ग्रहण कर साधुचर्या का पालन करने लगा।[*168] भगवान् महावीर भी जघन्य से भी करोडो देवो से घिरे हुए तीर्थंकर नाम कर्म की निर्जरा करते हुए धर्मोपदेश की श्रुत गगा प्रवाहित करते हुए अनेक राजा, युवराजा, मत्री आदि को साधु एव श्रावक बनाते हुए राजगृह से विदेह[LXXIV] की ओर विहार कर ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।

(क) कुंज-लताओ और पौधो से आच्छादित स्थान
(ख) अभिनिष्क्रमण-संसार त्याग कर दीक्षा लेने वाले का महोत्सव

*टिप्पणी - रोहिणेय ने दीक्षा लेने के पश्चात् विविध प्रकार की तपश्चर्या की, उपवास से लेकर छ मासी तक तप किया। इस प्रकार विभिन्न तपश्चर्या करते हुए, वैभारगिरि पर अनशन करत हुए, पंचपरमेष्ठि का स्मरण करते हुए उसने देह त्याग कर स्वर्ग को प्राप्त किया।

अनुत्तरज्ञानचर्या का प्रथम वष

टिप्पणी

I धनोदधि

1 सौधर्म और ईशान कल्प की पृथ्वी धनोदधि के आधार पर, सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक की पृथ्वी धनवात के आधार पर लातक, शुक्र और सहस्रार की पृथ्वी धनोदधि और धनवात के आधार पर शेष आनतादि से लेकर अनुत्तर तक समग्र देवलोक आकाश प्रतिष्ठित है।

2 सौधर्म व ईशानकल्प की मोटाई 2700 योजन व ऊँचाई 500 योजन है। सनत्कुमार व महेन्द्र कल्प की मोटाई 2600 योजन व ऊँचाई 600 योजन है। ब्रह्मलोक व लातक कल्प की मोटाई 2500 योजन व ऊँचाई 700 योजन है। महाशुक व सहस्रार कल्प की मोटाई 2400 योजन व ऊँचाई 800 योजन है। आणत, प्राणत व अरण व अच्युत कल्प की मोटाई 2300 योजन व ऊँचाई 900 योजन है। नवग्रैवेयक व विमानो कल्प की मोटाई 2200 योजन व ऊँचाई 1000 योजन है। पाच अनुत्तर कल्प की मोटाई 2100 योजन व ऊँचाई 1100 योजन है।

वैमानिक उद्देशक (जीवा चतुर्थ प्रतिपत्ति)

II सौधर्म देवलोक

देवलोक के नाम	विमान सख्या
सौधर्म कल्प मे	32 लाख
ईशान कल्प मे	28 लाख
सनत्कुमार कल्प मे	12 लाख
महेन्द्र कल्प मे	8 लाख
ब्रह्मलोक कल्प मे	4 लाख
लान्तक कल्प मे	50,000
महाशुक्र कल्प मे	40,000
सहस्रार कल्प मे	6 000
आणत-प्राणत कल्प मे	400
अरण-अच्युत कल्प मे	300
सुदर्शन ग्रैवेयक सुपभद ग्रैवेयक मनोरम ग्रैवेयक	111

सर्वभद्र ग्रैवेयक सुविशाल ग्रैवेयक सुमनस ग्रैवेयक	107
सौमनस ग्रैवेयक प्रियकर ग्रैवेयक आदित्य	100
अनुत्तर विमान	5
कुल	84,97,0,23 विमान

III चतुष्कोण

सर्वगोलाकार विमानो के एक द्वार होता है, त्रिकोण विमानो के तीन द्वार होते है और चतुष्कोण विमानो के चार द्वार होते हैं। गोल विमान का द्वार पूर्व दिशा की ओर समझना उचित है। यह बात आवलिका प्रविष्ट वृत्त विमान मे भी सभव है। शेष के लिए अधिक द्वार भी होना सभव है।

वृहत्संग्रहणी, चतुर्थ वैमानिक निकाय, गाथा-98

IV पुष्पावकीर्ण

धनोदधि - ठोस पानी घी जैसा जमा हुआ वह अप्काय का भेद होने से सचित्त है।

धनवात - ठूस-ठूस कर भरी मजबूत वायु (यह भी सचित्त है)

आकाश - अवकाश देने के स्वभाव वाला अरूपी द्रव्य है।

वैमानिक की परिभाषा -

विशिष्टपुण्यैर्जन्तुभिर्मान्यन्ते-उपभुज्यते इति विमानानि तेषु भवा वैमानिका विशिष्ट पुण्यशाली जीवो के जो भोगने योग्य है वे विमान कहलाते है, उनमे उत्पन्न हुए वैमानिक कहलाते हैं। पुष्पावकीर्ण विमान-स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, श्रीवत्स, खड्ग, कमल, चक्रादि विविध आकार वाले प्रत्येक प्रतर मे होते हैं।

वृह्त सग्रहणी, वैमानिक-निकाय, गाथा 96, पृ 275

V इन्द्रकविमान

प्रत्येक प्रतर मे इन्द्रक विमान होने से सर्वप्रतरो के 62 इन्द्रक विमान होते हैं। ये इन्द्रक विमान सर्वप्रतरो के मध्य भाग मे होते हैं। प्रत्येक कल्प मे चारो दिशाओ मे चार पक्तियॉ होती हैं।

उनमे प्रथम प्रवर मे बासठ विमानो की चार पक्तियाँ, द्वितीय प्रतर मे इकसठ विमानो की चार पक्तियॉ। इसी तरह अनुत्तर। इसी तरह अनुत्तर के अन्तिम प्रतर तक एक-एक हीन करते-करते अनुत्तर मे एक विमान रह जाता है।

पक्तियो के मध्य मे रहे हुए इन्द्रक विमान गोल है, पश्चात् पक्ति मे प्रथम त्रिकोण फिर चौकोर और फिर गोल विमान ऐसा क्रम है और पुष्पावकीर्ण विमान विविध आकार वाले हैं। ये पुष्पावकीर्ण विमान पूर्व दिशा की पक्ति को वर्जित करके शेष तीन पक्तियो को आतरे मे समझना चाहिये। पक्तिगत विमानो का जो असख्य-2 योजन का अन्तर है, उसमे पुष्पावकीर्ण विमान होते हैं। साथ ही अवतसक विमान और इन्द्रक विमान भी पक्ति मे प्रारम्भ के बीच मे होते हैं, तो पूर्व दिशा के अन्तर को वर्जित करके शेष तीनो पक्तिगत विमानो के आन्तरे मे पुष्पावकीर्ण विमान अवश्य होते हैं।

वृहत्संग्रहणी गाथा 111 पृ 291

VI आवलिका प्रविष्ट

आवलिका गत (पक्तिबद्ध) विमानो का परस्पर अन्तर असख्यात योजन का है, जबकि पुष्पावकीर्ण विमानो का परस्पर अन्तर प्रमाण सख्यात, असख्यात योजन का भी होता है।

वृहत्सग्रहणी वैमानिक-निकाय गाथा 99

VII अवतसंक

राजप्रश्नीयसूत्र मे सौधर्म देवलोक का वर्णन-हे गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर (सुमेरू) पर्वत से दक्षिण दिशा मे इस रत्न प्रभा पृथ्वी के रमणीय समतल भू-भाग से ऊपर उर्ध्व दिशा मे चन्द्र, सूर्य ग्रह गण नक्षत्र और तारा मण्डल से आगे भी ऊँचाई मे बहुत से सैकडो योजनो, हजारो योजनो, लाखो योजनो, करोडो योजनो और सैकडो करोड, हजारों करोड, लाखो करोड योजनो, करोडो करोड योजनो को पार करने के बाद प्राप्त स्थान पर सौधर्म कल्प नाम का कल्प है अर्थात् सौधर्म नामक स्वर्ग लोक है। वह सौधर्म कल्प पूर्व पश्चिम लम्बा, उत्तर-दक्षिण विस्तृत चौडा है। अर्धचन्द्र के समान उसका आकार है। सूर्य किरणो की तरह अपनी द्युति काति से सदैव चमचमाता रहता है। असख्यात कोडा-कोडी योजन प्रमाण उसकी परिधि है। उस सोधर्म कल्प मे सौधर्म कल्पवासी देवो के 32 लाख विमान बताये हैं। वे सभी विमानवास सर्वात्मना रत्नो से बने हुए स्फटिक मणिवत् स्वच्छ यावत् अतीव मनोहर हैं। उन विमानो के मध्यातिमध्य भाग मे ठीक बीचो बीच पूर्व दक्षिण और पश्चिम और उत्तर इन चार दिशाओ मे अनुक्रम से अशोक अवतसक, चम्पक अवतसक, आम्र अवतसक तथा मध्य मे सौधर्म अवतसक से पॉच अवतसक है। ये पॉचो अवतंसक भी रत्नो से निर्मित यावत् प्रतिरूप-अतीव मनोहर हैं।

राजप्रश्नीय सूत्र, पत्रांक 59-63

VIII सुधर्मासभा

चमर आदि इन्द्रो के रहने के स्थान, भवन, नगर या विमान इन्द्र-स्थान कहलाते हैं।

इन्द्र स्थान मे पॉच सभाएँ होती हैं :- 1 सुधर्मा सभा, 2 उपपात सभा, 3 अभिषेक सभा, 4 अलकार सभा, 5 व्यवसाय सभा।

1 सुधर्मा सभा - जहॉ देवताओ की शय्या होती है, वह सुधर्मा सभा है।

2 उपपात सभा - जहॉ जाकर जीव देवता रूप से उत्पन्न होता है, वह उपपात सभा है।

3 अभिषेक सभा - जहॉ इन्द्र का राज्याभिषेक होता है।

4 अलकार सभा - जिसमे देवता अलकार पहिनते हैं।

5 व्यवसाय सभा - जिसमे पुस्तके पढकर तत्त्वो का निश्चय किया जाता है, वह व्यवसाय सभा है।

ठाणाग 5, उद्देशाक 2, सूत्र 472)

उदधृत जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, बोल 397, भाग-प्रथम

IX शय्याएँ

सूर्याभदेव के वर्णन मे देव शय्या का वर्णन इस प्रकार मिलता है :-

यह शय्या प्रतिपाद, पाद, पाद शीर्षक, गात्र और सधियो से युक्त तथा तूली (रजाई) बिब्बोयणा (उपधान-तकिया) गंठोपधान (गालो का तकिया) और सालिगन वर्तिक (शरीर प्रमाणत किया) से सम्पन्न थी। इसके दोनो ओर तकिये लगे हुए थे। यह शय्या दोनो ओर से उठी हुई एव बीच मे नीची होने के कारण गम्भीर तथा क्षौम और दुकूल वस्त्रो से आच्छादित थी।

X ऋजुबालिका

ऋजुबालिका नदी के उत्तर तट पर भगवान् महावीर को केवलज्ञान हुआ था। हजारी बाग जिला मे गिरीडाह के पास बहने वाली बाराकड नदी को ऋजुपालिका अथवा रिजुबालुका कहते हैं। प श्री सोभाग्य विजयजी ने इसके सम्बन्ध मे अपनी तीर्थ माला मे लिखा है कि वहॉ दामोदर नदी बहती है। पर इन उल्लेखो से भगवान् के केवलज्ञान कल्याणक की भूमि का निश्चित पता लगाना कठिन है। आजकल जहॉ सम्मेत शिखर के समीप केवल भूमि बताई जाती हे उसके पास न तो ऋजुवालिका या इससे मिलते-जुलते नाम वाली कोई नदी है और न जभियग्राम या इसके अपभ्रष्ट नाम का कोई गॉव। समनेद

शिखर से पूर्व दक्षिण दिशा मे दामोदर नदी आज भी है पर ऋजुबालिका नदी का कोई पता नहीं है। हॉ उक्त दिशा मे आजी नाम की एक बडी नदी अवश्य बहती है। यदि इस आजी को ही ऋजुवालिका मान लिया जाये तो बात दूसरी है।

एक बात अवश्य विचारणीय है कि आजी एक बडी और इसी नाम से प्रसिद्ध प्राचीन नदी है। स्थानाग सूत्र मे गगा की पाच सहायक बडी नदियो मे इसकी "आजी" नाम से परिगणना की है। अत आजी को रिजुवालिका का अपभ्रश मानना ठीक नही है। एक बात यह भी है कि आजी अथवा दामोदर नदी से पावा-मध्यमा, जहॉ भगवान् का दूसरा समवसरण हुआ था, लगभग 140 मील दूर पडती है जबकि शास्त्र मे भगवान् के केवलज्ञान के स्थान से मध्यम पावा बारह योजन दूर बतलाई है।

आवश्यक चूर्णि के लेखानुसार भगवान् केवली होने के पूर्व चम्पा से जभिय, मिडिय, छम्माणी होते हुए मध्यमा गये थे और मध्यमा से जभियग्राम गये जहा आपको केवलज्ञान हुआ। इस विहार-वर्णन से ज्ञात होता है कि जभिय ग्राम तथा ऋजुबालिका नदी मध्यमा के रास्ते मे चम्पा के निकट कही होनी चाहिए जहॉ से चलकर भगवान् रात भर मे मध्यमा पहुॅचे थे। बारह योजन का हिसाव भी इससे ठीक बैठ जाता है।

XI सूर्य या रवि

ठीक मध्याह्न के समय मे सूर्य का तेज प्रखर रहता हे, अत द्रष्टा को उस समय का सूर्य, सूर्योदय और सूर्यास्त की अपेक्षा समान दूरी पर रहते हुए भी दूर दिखाई देता है। यह सूर्य का दूर दिखाई देना लेश्याभिताप के कारण होता है।

व्याख्या 8, 8, 331, उद्घृत-लेश्या कोष, वही पृ 32

XII सामर्थ्य

2000 सिहो का बल एक अष्टापद मे 10,00,000 अष्टपदो का बल एक बलदेव मे 2 बलदेवो का बल एक वासुदेव मे 2 वासुदेवो का वल एक चक्रवर्ती मे 10,00,000 चक्रवर्तियो का वल एक देव मे 10,00,000 देवो का वल एक इन्द्र मे ऐसे अनन्त बलशाली इन्द्र भी भगवान् की छोटी अगुली को नहीं हिला सकते।

जैन तत्त्व प्रकाश 6

XIII वैक्रिय समुद्घात

वेक्रिय रूप बनाते समय आत्मप्रदेश का दण्डादि आकार मे होने वाला अभिसरण वेक्रिय समुद्घात है। इसके पश्चात् ही उत्तर वेक्रिय शरीर बनता है, जिसको धारण कर देव भूमण्डल पर आते हैं।

XIV मध्यम पावा

पावा (1) – पावा नाम की तीन नगरियॉ थी। जैन सूत्रो के अनुसार एक पावा भगिदेश की राजधानी थी। यह देश पारसनाथ पहाड के आस–पास के भूमि–भाग मे फैला हुआ था, जिसमे हजारी बाग और मानभूम जिलो के भाग शामिल है। बौद्ध साहित्य के पर्यालोचक कुछ विद्वान पावा को मलय देश की राजधानी बताते है। हमारे मत से मलय देश की नही पर यह भगिदेश की राजधानी थी। जैन सूत्रो मे भगिजनपद की गणना साढे पच्चीस आर्य देशो मे की गई है। मल्ल और मलय को एक मान लेने के परिणाम स्वरूप पावा को मलय की राजधानी मानने की भूल हुई मालूम होती है।

पावा (2) – दूसरी पावा कोशल से उत्तर–पूर्व मे कुशीनारा की तरफ मल्ल राज्य की राजधानी थी। मल्ल जाति केराज्य की दो राजधानियॉ थी, एक कुशीनारा और दूसरी पावा। आधुनिक पडरौना को जो कासिया से बारह मील और गोरखपुर से लगभग 50 मील है, पावा कहते हैं। तब कोई–कोई गोरखपुर जिला मे पडरौना के पास नो पपउर गॉव है, उसको प्राचीन पावापुर मानते हैं।

पावा (3) – तीसरी पावा मगध जनपद मे थी। यह उक्त दोनो पावाओ के मध्य मे थी। पहली पावा इसके आग्नेय दिशा भाग मे थी और दूसरी इसके वायव्य कोण मे लगभग सम अन्तर पर थी इसीलिए यह प्राय पावा–मध्यमा के नाम से ही प्रसिद्ध थी। भगवान् महावीर के अन्तिम चातुर्मास का क्षेत्र और निर्वाणभूमि इसी पावा को समझना चाहिये। आज भी यह पावा, जो बिहार नगर से तीन कोस पर दक्षिण मे है, जैनो का तीर्थधाम बना हुआ है।

XV आदक्षिण–प्रदक्षिणा

दक्षिण–दिशा से आरम्भ कर प्रदक्षिणा करता है।

हस्तलिखित–औपतातिक, पृष्ठ 40, संवत् 1211,

प्राप्ति स्थल–अगरचन्द भैरोदान सेठिया ग्रन्थालय, बीकानेर

XVI आभियोगिक देव

आभियोगिक देव–वेतनभोगी नौकर की तरह कार्य करने वाले ।

रायपसेणियम्–हेमशब्दानुशासन 6/4/15 पृ 52 बेचर दास

XVII वैक्रिय समुद्घात

शंका – यहॉ रत्नादि के पुद्गलो को ग्रहण कर वैक्रिय समुद्रघात कहा है तब शका होती है कि रत्नादि प्रायोग्य पुद्गल औदारिक हैं और उत्तरवैक्रिय के पुद्गल वैक्रिय है तब कैसे सगत होगा?

समाधान – रत्नादि का ग्रहण सारभूत पुद्‌गलो को ग्रहण करने मात्र की अपेक्षा प्रतिपादित किया है किन्तु रत्नादि का ग्रहण नही है अथवा औदारिक भी ग्रहण किये जाते हुए वैक्रिय रूप मे परिणत होते हैं पुद्‌गलो की उस–उस सामग्री से वैसा–वैसा परिगमन होने का स्वभाव होने से कोई दोष नही हे।

रायपसेणिय टीका पृ 58, वही, बेचरदास

XVIII वैमानिक

वैमानिक की परिभाषा – विशिष्टपुण्यैर्जन्तुभिर्मान्यन्ते – उपभुज्यते इति विमानानि तेषु भवा वैमानिका सग्रहणी विशिष्ट पुण्यशाली जीवो के जो भोगने योग्य है वे विमान कहलाते है, उनमे उत्पन्न हुए वैमानिक कहलाते है।

पुष्पावकीर्ण विमान–स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, श्रीवत्स, खड्‌ग, कमल, चक्रादि विविध आकार वाले प्रत्येक प्रतर मे होते हैं, वृह्त सग्रहणी,वैमानिक–निकाय,गाथा 96, पृ.275

XIX सेवन करना चाहिए

मुनि नथमलजी ने अहिसा तत्व दर्शन मे कहा है कि दया मे हिसा या हिंसा मे दया कभी नहीं हो सकती। यदि हम इनको पृथक करना चाहे तो निवृत्त्यात्मक अहिसा को अहिसा एव सप्रवृत्यात्मक अहिसा को दया कह सकते हे।

प्रश्न व्याकरण सूत्र मे अहिसा के 60 पर्यायवाची नाम बतलाये हैं। उनमे 11वॉ नाम दया है।

टीकाकार – मलयगिरि ने उसका अर्थ "दया देहि रक्षा" देहधारी जीवो, की रक्षा करना किया है। यह उचित भी है क्योकि अहिसा मे जीव रक्षा अपने आप होती है।

विशेष विवरण के लिये देखिये

अहिसा तत्त्वदर्शन, मुनि नथमल, सम्पा छगनलाल शास्त्री,

प्रकाशक–सादर्श साहित्य सघ, चुरू, प्र स सन् 1960, पृ.26–27

XX गोबर

गोब्बर गॉव – यह प्रथम तीन गणधरो की जन्मभूमि है। गोवर राजगृह से पृष्ठ चम्पा जाते मार्ग मे पडता था। पृष्ठ चम्पा के निकट होने से यह अगभूमि मे होगा, ऐसा सिद्ध होता है।

XXI श्रमण

श्रमण – जो श्रम करते हॅ वे श्रमण। जो समता का आचरण करते हैं वे

श्रमण। जिनकी कथनी करनी समान है वे श्रमण। स्वजन और परिजन मे जिनका मन समान है, वे श्रमण। जिनका श्रेष्ठ मन है, वे श्रमण है।

XXII चौदह पूर्व

तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थंकर भगवान् जिस अर्थ का गणधरो को पहले पहल उपदेश देते है अथवा गणधर पहले पहल जिस अर्थ को सूत्र रूप में गूथते है उन्हे पूर्व कहा जाता है पूर्व चौदह है–

1 **उत्पाद पूर्व** :– इस पूर्व मे सभी द्रव्य और सभी पर्यायो के उत्पाद को लेकर प्ररूपणा की गई है। उत्पाद पूर्व मे एक करोड पद है।

2. **अग्रायणीय पूर्व** – इस मे सभी द्रव्य, सभी पर्याय और सभी जीवो के परिमाण का वर्णन है। अग्रायणीय पूर्व मे छयानवे लाख पद हैं।

3 **वीर्यप्रवाद पूर्व** – इस मे कर्म सहित और बिना कर्म वाले जीव तथा अजीवो के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है। वीर्य प्रवाद पूर्व मे 70 लाख पद है।

4 **अस्तिनास्ति प्रवाद** – ससार मे धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुए विद्यमान है तथा आकाश कुसुम वगैरह जो अविद्यमान है उन सब का वर्णन अस्तिनास्ति प्रवाद मे है। इसमे 60 लाख पद है।

5 **ज्ञान प्रवाद पूर्व** – इसमे मति ज्ञान आदि ज्ञान के 5 भेदो का विस्तृत वर्णन है इसमे कम से कम एक करोड पद है।

6 **सत्य प्रवाद पूर्व** – इसमे सत्य रूप सयम या सत्य वचन का विस्तृत वर्णन है। इसमे छ अधिक एक करोड पद है।

7 **आत्म प्रवाद पूर्व** – इसमे अनेक नय तथा मतो की अपेक्षा आत्मा का प्रतिपादन किया गया है। इसमे छब्बीस करोड पद है।

8 **कर्म प्रवाद पूर्व** – जिसमे 8 कर्मो का निरूपण प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदों द्वारा विस्तृत रूप से किया गया है। इसमे एक करोड अस्सी लाख पद हैं।

9 **प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व** – इसमे प्रत्याख्यानो का भेद प्रभेद पूर्वक वर्णन है। इसमे चौरासी लाख पद है।

10 **विद्यानुवाद पूर्व** – इस पूर्व मे विविध प्रकार की विद्या तथा सिद्धियो का वर्णन है इसमे एक करोड 10 लाख पद हे।

11 **अवन्ध्यपूर्व** – इसमे ज्ञान, तप सयम आदि शुभ फल वाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फल वाले अवन्ध्यपूर्व अर्थात निष्फल न जाने वाले कार्यो का वर्णन है।

12 **प्राणायु प्रवाद पूर्व** – इसमे 10 प्राण और आयुआदि का भेद प्रभेद पूर्वक विस्तृत वर्णन है। इसमे 1 करोड 56 लाख पद है।

13 **क्रिया विशाल पूर्व** – इसमे कायिकी, आधिकरणिकी आदि तथा सयम मे उपकारक क्रियाओ का वर्णन है। इसमे 9 करोड पद है।

14 **लोक बिन्दुसार पूर्व** – लोक मे अर्थात् ससार मे श्रुतज्ञान मे जो शास्त्र बिन्दु की तरह सबसे श्रेष्ठ हैं, वह लोक बिन्दु सार है इसमे साढे 12 करोड पद हैं।

पूर्वो में वस्तु – पूर्वो के अध्याय विशेषो को वस्तु कहते हैं।

वस्तुओ के आवान्तर अध्यायो को चूलिका वस्तु कहते है।

उत्पाद पूर्व मे 10 वस्तु और 4 चूलिका वस्तु है। अग्रायणीय पूर्व मे 14 वस्तु और 12 चूलिकावस्तु हैं। वीर्य प्रवाद मे पूर्व मे 8 वस्तु और 18 चूलिका वस्तु हैं। अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व मे 18 वस्तु और 10 चूलिका वस्तु है। ज्ञान प्रवाद पूर्व मे 12 वस्तु हैं। सत्य प्रवाद पूर्व मे 2 वस्तु है। आत्म प्रवाद पूर्व मे 16 वस्तु हैं। कर्म प्रवाद पूर्व 30 वस्तु है। प्रत्याख्यान पूर्व मे 20, विद्यानुप्रवाद पूर्व मे 15, अवन्ध्य पूर्व मे 12, प्राणायु पर्व मे 13, क्रिया विशाल पूर्व मे 3, लोक बिन्दुसार पूर्व मे 25, चौथे से आगे के पूर्वो मे चूलिका वस्तु नही है।

नन्दी सूत्र 57, समवायाग 14वॉ तथा 147वा

XXIII पूर्व

आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने लिखा है कि दृष्टिवाद का अध्ययन – पठन स्त्रियो के लिए वर्ज्य था क्योकि स्त्रिया तुच्छ स्वभाव की होती हैं, उन्हे शीघ्र गर्व आता है। उनकी इन्द्रियॉ चचल होती है। उनकी मेधा शक्ति पुरूषो की अपेक्षा दुर्बल होती हे इसलिए अतिशय या चमत्कार युक्त अध्ययन और दृष्टिवाद का ज्ञान उनके लिए नहीं है।

विशेषावश्यकभाष्य गाथा–55 की व्याख्या पृ 48

XXIV संघतीर्थ

जिसमे तिरा जाये, वह तीर्थ है। जो क्रोध, लोभ ओर कर्ममल को दूर करता है, वह तीर्थ हैं। जिसके सम्यक–ज्ञान, दर्शन ओर चारित्र ये तीन प्रयोजन हैं, वह तीर्थ है।

XXV गणधर

तीर्थकरो के रूप से गणधरो का रूप अनन्त गुण हीन हाता हैं। गणधरो के रूप से आहारक शरीरी का रूप अनन्तगुणहीन, अनुत्तर ग्रैवेयक

12,11,10,9,8,7,6,5,4,3,2,1 देवलोक, भवनवासी, ज्योतिष्क, व्यन्तर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, महामण्डलिक अनन्तगुणहीन जानना चाहिये। उससे राजा और सामान्य लोग षट्स्थान पतित जानने चाहिये।

आवश्यक, मलयगिरि, पत्राक–307

XXVI गण

भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गण तथा आठ ही गणधर थे :– 1 शुभ, 2 आर्यघोष, 3 वशिष्ठ, 4 ब्रह्मचारी, 5 सोम, 6 श्रीघृत, 7 वीर्य, 8 भद्रयश।

ठाणाग 8, 3 सूत्र 6, 7 टीका, समवायाग 8

XXVII धोवन पानी

प्रासुक जल को धोवन पानी कहते हैं। यह इक्कीस प्रकार का है –

1 उस्सेइम – कठोती आदि का धोय पानी।
2. ससेइम – सब्जी की हॉडी आदि का धोय पानी।
3 चाउलोदक – चावलो को धोया पानी।
4 तिलोदग – तिलो का धोया पानी।
5 तुसोदग – तुषो का पानी।
6 जवोदग – जौ का पानीं
7 आयाम – चावल आदि का पानी।
8 सौवीर – छाछ की आछ।
9 सुद्धवियड – गर्म किया हुआ पानी।
10 अम्ब पाणग – आम धोये हुए का पानी।
11 अम्बाउग पाणग – अम्बाउक फलो का धोया पानी।
12. कविट्ठ पाणग – कविठ का धोया हुआ पानी।
13 माउलिग पाणग – बिजौरा के फलो का धोया हुआ पानी।
14 मुद्दियापाणग – दाखो का धोया हुआ पानी।
15 दालिम पाणग – अनारो का धोया हुआ पानी।
16 खज्जूर पाणग – खजूरो का धोया हुआ पानी।
17 नालिकेर पाणग – नारियलो का धोया हुआ पानी।
18 करीर पाणग – कैरो का धोया हुआ पानी।
19 कोलपाणग – बेरो का धोया हुआ पानी।
20 अमलपाणग – ऑवलो का धोया हुआ पानी।

21 चिचापाणग — इमली का पानी ।

जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग–7

XXVIII जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र की भूतकालीन चौबीसी

1 श्री केवलज्ञानीजी	2 श्री निर्वाणजी	3 श्री सागरजी
4 श्री महायशजी	5 श्री विमलप्रभजी	6 श्री सर्वानुभूतिजी
7 श्री श्रीधरजी	8 श्री श्रीदत्तजी	9 श्री दामोदरजी
10 श्री सुतेजजी	11 श्री स्वामीनाथजी	12 श्री मुनिसुव्रतजी
13 श्री समितिजिनजी	14 श्री शिवगतिजी	15 श्री अस्तागजी
16 श्री नमीश्वरजी	17 श्री अनिलनाथजी	18 श्री अस्तागजी
19 श्री कृताधजी	20 श्री जिनेश्वरजी	21 श्री शुद्धमतिजी
22 श्री शिवशकरजी	23 श्री स्यन्दनाथजी	24 श्री सम्प्रतिजी

प्रवचनसारोद्वार, पत्राक 80

XXIX जम्बूद्वीप, ऐरावत क्षेत्र के 72 तीर्थंकरों के नाम

भूतकाल की चौबीसी	वर्तमानकाल की चौबीसी	भविष्यकाल की चौबीसी
1 श्री पचरूपजी	1 श्री चन्द्राननजी	1 श्री सुमगलजी
2 श्री जिनधरजी	2 श्री सुचन्द्रजी	2 श्री सिद्धार्थजी
3 श्री सम्प्रतकजी	3 श्री अग्निसेनजी	3 श्री निर्वाणजी
4 श्री उरमतजी	4 श्री नन्दसेनजी	4 श्री महाशयजी
5 श्री आदिछायजी	5 श्री ऋषिदत्तजी	5 श्री धर्मध्वजजी
6 श्री अभिनदजी	6 श्री व्रतधारीजी	6 श्रीचन्द्रजी
7 श्री रत्ससेनजी	7 श्री सोमचन्द्रजी	7 श्री पुष्पकेतुजी
8 श्री रामेश्वरजी	8 श्री युक्तिसेनजी	8 श्री पुष्पकेतुजी
9 श्री रगोजीतजी	9 श्री अजितसेनजी	9 श्री श्रुतसागरजी
10 श्री विनपासजी	10 श्री शिवसेनजी	10 श्री सिद्धार्थजी
11 श्री आरोवसजी	11 श्री देवसेनजी	11 श्री पुष्पाघोषजी
12 श्री शुभध्यानजी	12 श्री निक्षिप्तशस्त्रजी	12. श्री महाघोषजी
13 श्री विप्रदत्तजी	13 श्री असज्जलजी	13 श्री सत्यसेनजी
14 श्री कुवारजी	14 श्री अनन्तकजी	14 श्री शूरसेनजी

15 श्री सर्वसहेलजी	15 श्री उपशातजी	15 श्री महासेनजी
16 श्री परभजनजी	16 श्री गुप्तिसेनजी	16 श्री सर्वानदजी
17 श्री सौभाग्यजी	17 श्री अतिपार्श्वजी	17 श्री देवपुत्रजी
18 श्री दिवाकरजी	18 श्री सुपार्श्वजी	18 श्री सुपार्श्वजी
19 श्री व्रतबिन्दुजी	19 श्री मरुदेवजी	19 श्री सुव्रतजी
20 श्री सिद्धकान्तजी	20 श्री श्रीधरजी	20 श्री सुकौशलजी
21 श्री ज्ञानश्रीजी	21 श्री श्यामकोष्ठजी	21 श्री अनतविजय
22 श्री कल्पद्रुमजी	22 श्री अग्रिसेनजी	22 श्री विमलजी
23 श्री तीर्थफलजी	23 श्री अग्निपुत्रजी	23 श्री महाबलजी
24 श्री ब्रह्मप्रभुजी	24 श्री वारिसेनजी	24 श्री देवानदजी

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे आगामी चौबीसी के नाम इस प्रकार है –

1 श्री महाप्रभ	2 श्री सुरदेव	3 श्री सुपार्श्व
4 श्री स्वयप्रभु	5 श्री सर्वात्मभु	6 श्री श्रीदेव
7 श्री कुलपुत्र देव	8 श्री उदकदेव	9 श्री प्रोष्ठिलदेव
10 श्री जयकीर्ति	11 श्री मुनिसुव्रत	12 श्री अरह
13 श्री निष्पाप	14 श्री निष्कषाय	15 श्री विपुल
16 श्री निर्मल	17 श्री चित्रगुप्त	18 श्री समाधिमुक्त
19 श्री स्वयमू	20 श्री अनिवृत्त	21 श्री जयनाथ
22 श्री श्री विमल	23 श्री देवपाल	24 श्री अनन्तवीर्य

समयायागसूत्र, भूमिका–मधुकरमुनिजी

XXX तीर्थंकर

तीर्थंकर नामकर्म का निकाचित बन्ध तीर्थंकर भव से पूर्व, तीसरे भव मे होता है। बन्ध और तीर्थंकर नामकर्म की जघन्य स्थिति, उत्कृष्ट स्थिति भी अन्त कोटा कोटि सागरोपम प्रमाण है, वह अनिकाचित बन्ध की अपेक्षा जानना चाहिये। निकाचित बन्ध तीसरे भव से लेकर तीर्थंकर भव के अपूर्वकरण के सख्यात भाग तक बन्धता रहता है, तत्पश्चात् व्यवछिन्न होता है।

प्रवचनसारोद्धार, पूर्वभाग, नेमिचन्दजी, पत्राक–84

XXXI बीस बोल

इन बीस बोलो की आराधना प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरो ने की थी। मध्यम

बाईस तीर्थंकरो ने एक, दो, तीन अथवा सब बोलो की आराधना की ऐसा हरिभद्रीय आवश्यक वृत्ति मे कहा हैं –

"पुरिमेण पच्छिमेण य एए सव्वेऽवि फासिया ठाणा। मज्झिमएहि जिणेहि, एक्क दो तिण्णिसव्वे वा"

आवश्यक सूत्र, भाग I, प 119

XXXII तीर्थंकर

जो जीव निकाचित तीर्थंकर नाम कर्म बॉधता है, वह नियम से मनुष्य गति का होता है तथा उसके सम्यक् दृष्टि सहित शुभ लेश्या होती है।

लेश्या कोश (द्वितीय खण्ड) पृ 42

सम्पा स्व मोहनलाल बॉठिया, श्रीचन्द चोरडिया, प्रकाशक जैन दर्शन समिति, कलकत्ता, सन् 2001

XXXIII अतिशय

आचार्य अभयदेवसूरि व आचार्य हेमचन्द्र के अतिशय वर्णन मे कुछ अन्तर परिलक्षित होता है। भाषा दोनो ने भगवान् की अर्धमागधी मानी है। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार 19 अतिशय देवकृत हैं जबकि अभयदेव की दृष्टि से 15 अतिशय देवकृत है। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि भगवान् का मुख चारो ओर दिखाई देता हे वह देवकृत अतिशय है जबकि दिगम्बर दृष्टि से केवलज्ञान कृत है। तीन की रचना को भी देवकृत अतिशय माना है पर समवायाग के चौतीस अतिशयो मे उसका उल्लेख तक नहीं है। आचार्यो ने अतिशयो का जो विभाजन किया, उस सम्बन्ध मे सबल तर्क का अभाव हे। समवायाग मूल मे किसी प्रकार का विभाजन नहीं किया गया है।

समवायांग की भाँति अंगुत्तरनिकाय (5/121) में तथागत बुद्ध के पाँच अतिशय बतलाये हैं :–

1 वे अर्थज्ञ होते हैं।
2 वे धर्मज्ञ होते हैं।
3 वे मर्यादा के ज्ञाता होते हैं।
4 वे कालज्ञ होते हैं।
5 वे परिषद् को जानने वाले होते हैं।

XXXIV देशी भाषा

यहां देशी भाषा के सोलह नाम ही मिलते हैं। इस सम्बन्ध मे डॉ ए मास्टर ने (A Master-B Soas XIII-2, 1950 PP 41315) कहा हे कि सोलह भाषाओं मे औड्र और द्राविडी भाषाऍ मिलने पर अठारह देशी भाषाऍ हो जाती हे।

XXXV आठ देशो की भाषा

निशीथ चूर्णिकार ने भी इन्ही आठ देशो की भाषाओ को देशी भाषा माना है। भरत के नाट्यशास्त्र मे सात भाषाओ का उल्लेख मिलता है– मागधी, आवन्ती, प्राच्या, शौरसेनी, बहिध्का, दक्षिणात्य और अर्धमागधी।

XXXVI चौबीस तीर्थंकरों का प्राचीन उल्लेख

बौद्धग्रन्थो मे बुद्ध के समकालीन 6 तीर्थकरो का उल्लेख मिलता है। यथा–

1 पूर्णकाश्यप
2 मखलि गोशालक
3 अजितकेशकम्बल
4 प्रबुद्ध कात्यायन
5 निगठनाथ पुत्र
6 सजयवेलट्ठि पुत्र

दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद) सामञ्ञफलसुत्त, पृ 16-22

XXXVII बौद्ध धर्म की पूर्वापरता संबंधी जानकारी

पडित सुखलालजी ने अपनी पुस्तक चार तीर्थंकर मे बुद्ध को भी पार्श्वनाथ परम्परा का साधक मानते हुए लिखा है "खुद बुद्ध अपने बुद्धत्व के पहले की तपश्चर्या और चर्या का जो वर्णन करते है उसके साथ तत्कालीन निर्गन्थ आचार का जब हम मिलान करते हैं" (तुलना–दशवैकालिक 5/1 तथा अध्य 3 और मण्झिमनिकाय महासिहनाद सुत्त)

कपिल वस्तु के निर्ग्रन्थ श्रावक वप्पशाक्य का निर्देश सामने रखते हैं तथा बौद्ध पिटको में पाये जाने वाले खास आचार और तत्वज्ञान सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्द जो केवल निर्ग्रन्थ प्रवचन मे ही पाये जाते हैं, इन सब पर विचार करते है तो ऐसा मानने मे कोई खास सन्देह नहीं रहता है कि बुद्ध ने, भले ही थोडे समय के लिए हो, पार्श्वनाथ की परपम्रा को स्वीकार किया था। अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी ने अपनी अन्तिम पुस्तक पार्श्वनाथ चातुर्याम धर्म मे अपनी ऐसी ही मान्यता सूचित की है।

चार तीर्थंकर, पृष्ठ 141–42

XXXVIII श्रेणिक को राजगृह नगरी दूंगा

राजा प्रसेनजित एक बार घुडसवारी करके घूमने गया और बिना पानी मूर्च्छित हो गया तब एक यमदण्ड नामक भील ने पानी पिलाया। रात्रि मे अपने घर ले गया, खाना खिलाया तब राजा उसकी पुत्री तिलकवती पर मुग्ध बन गया और विवाह की मंगनी की तब यमदण्ड ने कहा कि यदि मेरी लडकी से उत्पन्न पुत्र को राज्य दोगे तब मैं विवाह करूँगा तब प्रसेनजित ने हॉ भर ली तथा यही कारण था कि आगे चलकर श्रेणिक को राज्य की बजाय देश निकाला देना पडा।

जैन कथाएँ, भाग 37

XXXIX कामार्त का भान भूलना

धूमज्योति सलिल मरूता–सन्निपात क्व मेघ
सदेशार्था क्व पटुकरणौ प्राणिभिद प्रापणीया
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्णकस्त ययाचे
कामार्ता हि प्रकृति श्चेतनाचेतनेषु,

मेघदूत, महाकवि कालिदास

XL मगध

मगध – यह देश महावीर के समय का एक प्रसिद्ध देश था। मगध की राजधानी राजगृह महावीर के प्रचार क्षेत्रो मे प्रथम और वर्षावास का मुख्य केन्द्र था। पटना और गया जिले पूरे और हजारीबाग का कुछ भाग प्राचीन मगध के अन्तर्गत थे। इस प्रदेश को आज कल दक्षिणी–पश्चिमी बिहार कह सकते हैं। इस देश के लाखो मनुष्य महावीर के उपदेश को शिरोधार्य करते थे। मागधी भाषा की उत्पत्ति इसी मगध से समझनी चाहिये।

XLI धूलि

द्रष्टव्य –

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया, निष्कम्प चामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णा
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलधनीया, धावन्त्यमी मृगजवाक्षयमेवरथ्या

अभिज्ञान–शाकुन्तलम् प्रथम अक, महाकवि–कालिदास

XLII औष्ट्रिक

औष्ट्रिक तप क्या होता है? इसका उल्लेख तो खोज का विषय है लेकिन अर्धमागधी कोश मे औष्ट्रिक श्रमण शब्द जरूर मिलता है जिसका विश्लेषण करते हुए बतलाया है कि मिट्टी के बडे बरतन मे बैठकर तपश्चर्या करने वाला।

XLIII मानोन्मान प्रमाण

जल से भरी द्रोणी (नाव) मे बैठने पर उससे बाहर निकला जल द्रोण (विशेष माप) प्रमाण हो तो वह पुरूष मान–प्राप्त कहलाता है। तुला पर बैठे पुरूष का वजन यदि अर्ध भार प्रमाण हो तो वह उन्मान प्राप्त कहलाता है। शरीर की ऊँचाई उसके अगुल से 108 अगुल हो तो वह प्रमाण प्राप्त कहलाता है।

समवायाग, पत्राक 157

48	व्यूह	— चक्रव्यूह आदि रचना।
49	प्रतिव्यूह	— व्यूह को भग करने की कला।
50	चक्रव्यूह	— चक्राकार व्यूह बनाना।
51	गरूडव्यूह	— गरूडाकार व्यूह बनाना।
52	शकट व्यूह	— शकटाकार व्यूह बनाना।
53	युद्ध	— सग्राम
54	नियुद्ध	— मल्लयुद्ध
55	युद्धातियुद्ध	— घमासान युद्ध का ज्ञान।
56	दृष्टियुद्ध	— दृष्टियुद्ध का ज्ञान।
57	मुष्टियुद्ध	— मुष्टियुद्ध का ज्ञान।
58	बाहुयुद्ध	— बाहुयुद्ध का ज्ञान।
59	लता युद्ध	— जैसे लता वृक्ष पर चढती है, वैसे एक योद्धा का दूसरे योद्धा पर चढ जाना।
60	इषुशास्त्र	— नाग बाण आदि का ज्ञान
61	त्सरू प्रवाद	— खडग शिक्षा
62	धनुर्वेद	— धनुर्विधा
63	हिरण्यपाक	— रजत सिद्धि
64	स्वर्ण	— स्वर्णसिद्धि
65	सूत्र खेल	— सूत्र क्रीडा
66	वस्त्र खेल	— वस्त्र क्रीडा
67	मालिका खेल	— द्यूत विशेष
68	पत्र–छेद्य	— पत्र छेदन।
69	कट–छेद्य	— पर्वतभूमि छेदन की कला।
70	सजीव करण	— मृत धातु को स्वामाविक रूप मे पहुँचाना।
71	निर्जीवकरण	— स्वर्ण आदि धातुओ को मारना।
72.	शकुनिरूत	— पक्षियो की आवाज जानना।

यहॉ कलाओ का निरूपण जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार किया है ज्ञातासूत्र मे कलाएँ समान–सी है लेकिन सख्या क्रम मे अन्तर है। समवायाग की कलाओ मे वहुत अन्तर है। औपपातिक मे पॉचवी कला गीत, पच्चीसवीं कला गीति और छप्पनवी कला दृष्टि युद्ध नहीं है। इनके स्थान पर औपपातिक मे चक्कलक्खण, चम्मलक्खण, वत्थुनिवेसन का उल्लेख है। ये सब सकलन भिन्नता से अवगतव्य

है। (तत्वतुकेवलिगम्यम्)

XLVI आठ प्रसाद

मेघ कुमार के माता–पिता ने कन्या अन्त पुर मे आठ लडकियॉ मेघ कुमार के समान उम्र वाली रखी थी इसलिए आठ प्रासाद बनवाये।

XLVII स्त्रियों की चौसठ कला

1 नृत्य	2 औचित्य	3 चित्र
4 वादित्र	5 मत्र	6 तंत्र
7 ज्ञान	8 विज्ञान	9 दम्भ
10 जल स्तम्भ	11 गीत मान	12 ताल मान
13 मेघवृष्टि	14 जलवृष्टि	15 आराम–रोपण
16 आकार–गोपन	17 धर्म–विचार	18 शकुन–विचार
19 क्रिया कल्प	20 सस्कृत–जल्प	21 प्रासाद–नीति
22 धर्मरीति	23 वर्णिका वृद्धि	24 स्वर्ण सिद्धि
25 सुरभि तैलकरण	26 लीला–सचरण	27 हय–गज परीक्षण
28 पुरूष–स्त्री लक्षण	29 हेमरत्न	30 अष्टादश लिपि परिच्छेद
31 तत्काल बुद्धि	32 वास्तु सिद्धि	34 वैद्यक क्रिया
33 काम विक्रिया	35 कुम्भ–भ्रम	36 सारिश्रम
37 अजन योग	38 चूर्ण योग	39 हस्त–लाघव
40 वचन पाटव	41 भोज्य विधि	42 वाणिज्य–विधि
43 मुख–मण्डन	44 शालि–खण्डन	45 कथा कथन
46 पुष्प ग्रथन	47 वक्रोक्ति	48 काव्यशक्ति
49. स्फार विधिवेश	50 सर्वभाषा विशेष	51 अभिधान ज्ञान
52 भूषण परिधान	53 भृत्योपचार	54 गृहोपचार
55 व्याकरण	56 पर–निराकरण	57 रधन
58 केश–बंधन	59 वीणा–नाद	60 वितण्डावाद
61 अंक विचार	62 लोक–व्यवहार	63 अन्त्याक्षरिका
64 प्रश्न प्रहेलिका		

XLVIII अन्त.पुर

यहॉ अन्त पुर का तात्पर्य रनिवास से है।

XLIX कौशाम्बी

अपने असाधारण, गुणो से पुरातन नगरो से भिन्नता स्थापित करने वाली प्रमुख या श्रेष्ठ नगरी कौशाम्बी थी।

उत्तराध्ययनसूत्र, 20

LX चिकित्सा

चार प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख मिलता है :–

1 यथा भिषक् (वैद्य), भेषज (औषधि), रूग्ण और परिचारक रूप चार चरणो वाली।

अथवा

2 वमन, विरेचन, मर्दन एव स्वेदन रूप चतुर्भागात्मिका।

अथवा

3 अजन, बन्धन, लेपन और मर्दन रूप चिकित्सा

4 स्थानाग सूत्र (चतुर्थ स्थान) मे वैद्यादि चारो चिकित्सा के अग कहे गये है।

वृहद वृत्ति पत्राक 475

उत्तराध्ययन, नेमीचन्दजी, दिव्यदर्शन ट्रस्ट, पृष्ठ–180

LXI स्वच्छन्द

जिनमत मे पॉच साधु अवन्दनीय (स्वच्छन्द) हैं –

1. **पासत्थ** – जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे पुरूषार्थ नहीं करता। इसके दो भेद हैं यथा–
   (अ) **सर्वपासत्थ** – जो मात्र वेश से साधु है, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना नहीं करता।
   (ब) **देशपासत्थ** – जो बिना कारण शय्यातर पिण्ड, राजपिण्ड, नित्यपिण्ड, अग्रपिण्ड और सामने लाया हुआ भोजन लेता है।
2. **अवसन्न** – साधु समाचारी मे प्रमाद करने वाला अवसन्न है।
3. **कुशील** – ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे दोष लगाने वाला कुशील है।
4. **संसक्त** – मूल, उत्तर गुणो मे दोष लगाने वाला ससक्त है।
5. **यथाछन्द** – सूत्र विरूद्ध प्ररूपणा करने वाला यथाछन्द है।

श्री जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग 1 सूत्र 347

LXII चैत्य

चैत्य शब्द का अर्थ भागवत मे आत्मा, अमरकोश मे यज्ञशाला, भरत के नाट्यशास्त्र मे यज्ञगृह, देवगृह, देवकुल, बुद्ध, विम्ब, वृक्षादि, मेदिन कोशकार ने

वृक्ष, सुन्दरकाण्ड की तिलक टीका मे चौराहे का वृक्ष, कल्पसूत्र मे जीर्ण–उद्यान, प्रश्नव्याकरण मे ज्ञान उववाई, अनुत्तरोप–पातिक, उपासकदशाग आदि शास्त्रो मे वृक्ष और उद्यान किया है।

चैत्य शब्द की मीमासा श्री घासीलालजी महाराज, प्र स सवत्–1987

LXIII गुणशील

यह राजगृह का प्रसिद्ध उद्यान है। भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर शिष्यो ने इसी गुणशील चैत्य मे अनशनपूर्वक निर्वाण प्राप्त किया था। आजकल का गुणावा, जो नवादा स्टेशन से लगभग तीन मील पर है, प्राचीन काल का गुणशील माना जाता है।

LXIV इन्द्र महोत्सव

इन्द्रमहोत्सव का उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र की टीका मे मिलता है। एक बार इन्द्रमहोत्सव आने पर द्विमुख राजा ने नगरजनो को इन्द्रध्वज स्थापित करने को कहा। तब नागरिको ने एक सौम्य स्तम्भ पर मनोहारी वस्त्र लपेटा। उसके ऊपर सुन्दर वस्त्र का ध्वज बॉधा उसको चारो ओर से छोटी–छोटी ध्वजाओ और घटियो से श्रृगारित किया और उसको ऐसे फूलो से सजाया जिन पर भ्रमर दौडे चले आते हो उन फूलो पर रत्नो और मोतियो को सुसज्जित किया। उन ध्वजा को गाजे–बाजे के साथ नगर के मध्य मे स्थापित किया। तत्पश्चात् लोगो ने फल–फूल आदि से पूजा की। कितने ही लोग वहॉ गाने लगे, नृत्य करने लगे, बाजे बजाने लगे, याचको को दान देने लगे। कर्पूर–केसर मिश्रित रग छिटकने लगे, सुगन्धित चूर्ण उडाने लगे। इस प्रकार सात दिन तक उत्सव चलता रहा। सातवे दिन पूर्णिमा आई तो द्विमुख राजा ने भी उस ध्वज की पूजा की।

उत्तराध्ययन, भावविजयजी, पत्राक – 210

LXV स्कन्द महोत्सव

1 **भूतों की गणना** – वाणव्यन्तर मे की गई है। वृहत्कल्प सूत्र भाग 5 मे हेमपुर नामक नगर मे इन्द्रपूजा का उल्लेख मिलता है कि 500 उच्च कुल की महिलाओ ने फूल, धूपदान आदि से युक्त होकर सौभाग्य के लिए इन्द्र की पूजा की।

2. **स्कन्दमह** – स्कन्द शिव के लडके थे। उसके सम्बन्ध मे यह पर्व भगवान् महावीर के काल मे मनाया जाता था, जब वे श्रावस्ती पहुँचे तब स्कन्द का जुलूस निकाला जा रहा था।

3 **रूद्रमह** .– रूद्रधर की चर्चा जैन ग्रन्थो मे मिलती है। रूद्र को महादेवता कहा है।

4 **मुकुन्दमह** `– जैन ग्रन्थों मे मुकुन्द पूजा का भी उल्लेख हैं। भगवान्

महावीर के समय मे श्रावस्ती और आलभिया के निकट मुकुन्द और वासुदेव की पूजा का उल्लेख मिलता है।

5 **शिवमह** – शिव की पूजा भी भगवान् महावीर के समय प्रचलित थी।

6 **वैश्रमण** :– वैश्रमण कुबेर को कहा है।

7 **नागमह** – इसका वर्णन ज्ञाता 8, पृ 95 पर मिलता है।

8 **यक्षमह** – तीर्थकरो के यक्ष–यक्षिणी होते हैं।

LXVI जृंभक

स्वच्छन्दाचारी की तरह चेष्टा करने वाले को जृम्भक कहते हैं। जृम्भक देव सदा प्रमोदी, अतीव क्रीडाशील, कन्दर्प मे रत और मोहन (मैथुन सेवन) शील होते हैं। जो व्यक्ति उन देवो को क्रुद्ध हुए देखता है वह महान् अपयश प्राप्त करता है और जो उन देवो को तुष्ट हुए देखता है, वह महान् यश को प्राप्त करता है सतत् क्रीडा आदि मे रत रहते हैं ऐसे तिर्छालोकवासी व्यन्तर जृम्भक देव हैं। ये अतीवक्रामकीडा रत रहते हैं। ये वैरस्वामी की तरह वैक्रिय लब्धि आदि प्राप्त करके शाप और अनुग्रह करने मे समर्थ होते हैं। इस कारण जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं उसे धनादि से निहाल कर देते हैं और जिन पर कुपित होते हैं उन्हे अनेक प्रकार से हानि भी पहुँचाते हैं।

जृंभक देव 10 प्रकार के कहे गये हैं –

अन्न जृंभक – भोजन को सरस–निरस कर देने या मात्रा घटा–बढा देने वाले देव।

पान जृंभक – वस्त्र को घटाने–बढाने आदि की शक्ति वाले देव।

लयन जृंभक – घर, मकान आदि की सुरक्षा करने वाले देव।

शयन जृंभक – शय्या आदि के रक्षक देव।

पुष्प फल जृंभक – फलों–फूलो व पुष्प फलों की रक्षा आदि करने वाले देव।

विद्या जृंभक – देवी के मत्रो–विद्याओं की रक्षा आदि करने वाले देव।

अव्यक्त जृंभक – सामान्यतया सभी पदार्थो की रक्षा आदि करने वाले देव। कहीं–कहीं इसके स्थान मे "अधिपति" जृभक पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ होता है, राजादि नायक के विषय मे जृभक देव।

जृंभक देव के निवास – 5 भरत, 5 ऐरावत, 5 महाविदेह इन 15 क्षेत्रो मे 170 दीर्घ वैताढ्य पर्वत है। प्रत्येक क्षेत्र मे एक–एक पर्वत है तथा महाविदेह क्षेत्र के प्रत्येक विजय मे एक–एक पर्वत है, जृभक देव सभी दीर्घ वैताढ्य मे

चित्र–विचित्र यमक पर्वतो मे तथा काचन पर्वत मे निवास करते है।

स्थिति – एक पल्योपम की देवकुरू मे शीतोदा नदी के दोनो तटो पर चित्रकूट पर्वत है। उत्तरकुरू मे शीतानदी के दोनो तटो पर यमक–समक पर्वत हे। उत्तरकुरु मे शीतानदी से सम्बन्धित नीलवान् आदि 5 द्रह हैं। उनके पूर्व–पश्चिम दोनो तटो पर 10–10 काचन पर्वत है। इस प्रकार उत्तरकुरू मे 100 काचन पर्वत है। देवकुरू मे शीतोदा नदी से सम्बन्धित निषध आदि 5 द्रहो के दोनो तटो पर 10–10 काचन पर्वत है। इस तरह ये भी 100 काचन पर्वत हुए दोनो मिलाकर 200 काचन पर्वत हैं। इन पर्वतो पर जृम्भक देव रहते है (भग सूत्र 14 शतक 8 उद्देश्क)

इन जृम्भक देवो का पल्योपम का आयुष्य होता है। ये नित्य प्रमुदित रहते हैं, क्रीडा करते हैं, सूरत समागम मे लीन रहते हैं। इनका स्वच्छन्दाचार नित्य (वि) जृम्भ प्राप्त करता (बढता–बढता) होने से ये जृम्भक कहलाते हैं। (गाथा 53–54, द्रव्यलोक)

लोक प्रकाश, प्रथम विभाग–द्रव्यलोक, पृ 477

LXVII विद्याधर

विद्या के बल से आकाश मे उडने वाला मनुष्य, वैताढय पर्वत की विद्याधर श्रेणी मे रहने वाला मनुष्य विद्याधर कहलाता है। जमीन से दस योजन ऊँचे दक्षिण और उत्तर दिशा मे वैताढय पर्वत के दोनो तरफ की श्रेणियॉ जिनमे विद्याधर रहते हैं।

जम्बू प्रथमवक्षस्कार

LXVIII निदान

निदान की घटना प्रथम वर्ष की है ऐसा उल्लेख जैन कथा माला भाग 7 एव 8 मे मिलता है।

मधुकरमुनिजी म सा, पृ.72

LXIX निदान

निदान को आयतिस्थान भी कहा हे। आयति–लाभ, किसका–जन्म मरण का। जिससे जन्म – मरण की प्रक्रिया वृद्धिगत हो उसे निदान कहते हैं।

LXX आठ मंगल का टिप्पण (मेघकुमार)

स्वस्तिक	–	साथिया
श्रीवत्स	–	तीर्थंकर के वक्षस्थल मे उठे हुए अवयव के आकार का चिन्ह विशेष श्रीवत्स कहलाता है।

नंदिकावर्त	–	प्रत्येक दिशा मे नव कोण वाला साथिया विशेष।
वर्धमानक	–	शराब (सकोरे) को वर्द्धमानक कहते है।
भद्रासन	–	सिहासन विशेष।
कलश	–	
मत्स्य	–	ये लोक प्रसिद्ध हैं।
दर्पण	–	

औपपातिक सूत्र 4 टीका, राजप्रश्नीय सूत्र 14

LXXI संयममार्ग

साधु के अठारह कल्प बतलाये हैं, छ व्रत, छ काया के आरम्भ का त्याग, अकल्पनीय वस्तु, गृहस्थ के पात्र, पर्यंक निषद्या, स्नान और शरीर की शुश्रूषा इनका त्याग करना।

दीक्षा अयोग्य अठारह प्रकार के पुरूष :– 1 बाल, 2 वृद्ध, 3 नपुसक, 4 क्लीब, 5 जड (भाष जड, शरीर जड, करण जड), 6 व्याधित, 7 स्तेन, 8 राजापकारी, 9 उन्मत्त, 10 अदर्शन, 11 दास, 12 दुष्ट, 13 मूढ, 14 ऋणार्त, 15 जुगिक, 16 अवबद्ध, 17 मृतक, 18 शैक्ष–निस्फैटिक।

LXXII दुर्गन्धा

आठ वर्ष पश्चात् राजगृह मे कौमुदी महोत्सव आया। उसमे अनेक युवक–युवतियॉ वस्त्रालकार आदि धारण कर आये थे। राजा श्रेणिक भी इस महोत्सव मे अभय कुमार के साथ वर योग्य परिधान पहिन कर गया। अत्यन्त भीड होने से राजा का हाथ उस युवती पर पड गया। जैसे ही हाथ का सस्पर्श हुआ श्रेणिक का अनुराग भाव जागृत बन गया। तब श्रेणिक ने अपनी मुद्रिका उस बाला के पल्ले के छोर से बॉध दी और श्रेणिक राजा ने अभय कुमार से कहा कि मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल था और उस समय मेरी मुद्रिका कोई हरण करके ले गया है अतएव तू चोर का पता लगा कर आ। तब अभय कुमार ने सारे द्वार बन्द करवा दिये और एक–एक मनुष्य को मुख, वस्त्र, केशादि बुद्धिमानी से देख–देख कर उसे दरवाजे से बाहर निकालने लगा। ऐसे करते–करते वह आभीरी कुमारी दुर्गन्धा आई उसके वस्त्र देखते हुए पल्ले पर बधी वह ॲगूठी नजर आई। तब अभय कुमार ने पूछा – बाला ये ॲगूठी तुमने क्यो ली? आभीरी बाला घबरा कर बोली – मैं कुछ भी नहीं जानती तब उसका सौम्य रूप देखकर अभय कुमार ने अपनी विलक्षण प्रज्ञा से चिन्तन किया कि इस बाला पर मेरे पिता मुग्ध बन गए है इसलिए मेरे पिता ने यह मुद्रिका स्वय इसके पल्ले पर

बॉध दी है, तब अभय कुमार उस बाला को लेकर श्रेणिक के पास पहुँचा। राजा श्रेणिक ने पूछा कि क्या मुद्रिका चुराने वाला चोर मिला?

तब अभय कुमार ने कहा कि मुद्रिका चुराने वाली यह बाला है परन्तु राजन् ! उसने मुद्रिका के साथ तुम्हारा चित्त भी चुरा लिया है, मुझे ऐसा लगता है। राजा ने कहा– दुष्कुल मे से भी स्त्री रत्न ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार कहकर राजा ने दुर्गन्धा के साथ विवाह किया और उस पर अनुराग होने से उसको पटरानी भी बनाया।

एक बार राजा अपनी रानियो के साथ खेल खेल रहा था और उसमे शर्त रखी कि जो हारेगा, उसकी पीठ पर जीतने वाला बैठेगा। इस प्रकार शर्त रखने के पश्चात् खेल चलने लगा। तब यदि कुलवान् नारियॉ जीतती तो वे राजा की पीठ पर वस्त्र डाल देती लेकिन जैसे ही यह गणिका– पुत्री दुर्गन्धा जीती, वह नि शक होकर उस पर चढ गई। उस समय श्रेणिक राजा को हॅसी आई। दुर्गन्धा ने हसी का कारण पूछा। राजा ने उसके पूर्व भव से लेकर अद्यतन पर्यन्त समस्त वृत्तान्त जैसा भगवान् से सुना, वैसा बता दिया। उसे श्रवण कर दुर्गन्धा को वैराग्य आया। उसने दीक्षा ग्रहण की।

"जैन कथाएॅ" मे भी दुर्गन्धा की शादी 15–16 के पश्चात् बतलाई हैं लेकिन भगवान् के केवलज्ञान के पश्चात् 15 वर्ष तक श्रेणिक जीवित नहीं रहा अतएव आठ वर्ष मे विवाह की धारणा ठीक लगती हे।

त्रिषष्टिशलाका पुरूषचारित्र पृ 151–52

LXXIII रोहिणेय

रोहिणेय भगवान् के केवलज्ञान के पश्चात् राजगृह के प्रथम चातुर्मास मे ही दीक्षित हुआ। ऐसा लगता है क्योकि त्रिषष्टि शलाका पुरूषाकार ने सर्ग 11 मे रोहिणेय की दीक्षा के पश्चात् अभय कुमार का हरण बतलाया है। अभय कुमार हरण से पहले श्रावकव्रतो को प्रथम चातुर्मास मे ही ग्रहण कर चुका था। उसका हरण पहले चातुर्मास के पश्चात् हुआ क्याकि प्रथम चातुर्मास मे उसके हरण का कोई उल्लेख नहीं। गोभद्र सेठ की दीक्षा के समय अभयकुमार नहीं था। उसका हरण हो गया था, ऐसा उल्लेख मिलता है। गोभद्र सेठ की दीक्षा की घटना प्रथम चातुर्मास के पश्चात् की लगती है क्योकि जिस समय अभय कुमार का हरण हुआ उस समय कोशाम्बी के युवराज उदयन का भी चण्ड प्रद्योतन द्वार हरण कर रखा था, ऐसा त्रिषष्टिशलाका पुरूप मे उल्लेख हैं। युवराज उदयन, शतानीक के राजा रहते ही चण्डप्रद्योतन द्वारा हरण कर लिया गया था। शतानीक की मृत्यु भगवान् के तृतीय चातुर्मास के पहले की है।

अतएव अभय कुमार का हरण प्रथम चातुर्मास के पश्चात् ही सभावित है चतुर्थ चातुर्मास मे तो वह राजगृह मे ही था।

तत्त्व तु केवलिगम्यम

LXXIV विदेह

गंडक नदी का निकटवर्ती प्रदेश, विशेष कर पूर्वी भाग जो तिरहुत नाम से प्रसिद्ध है, पहले विदेह देश कहलाता था। इसकी प्राचीन राजधानी मिथिला और महावीर के समय की वैशाली थी। भगवान् महावीर इसी देश मे अवतीर्ण हुए थे।

अनुत्तरज्ञानचर्या का द्वितीय वर्ष

उद्‌घाटित हुआ रहस्य

एक अद्‌भुतमिलन :

गडकी[1] नदी के कूल पर बसा ब्राह्मणकुण्ड नगर महीतल पर अपनी आभा विकीर्ण कर रहा था। अनेक बहुमजिली गगनचुम्बी हवेलियॉ वहॉ के कलाकौशल को प्रदर्शित कर रही थीं। स्थान-स्थान पर बने उद्यान अपनी सौम्य छटा से पथिको के आकर्षण का केन्द्र बने थे।

उसके ईशानकोण मे निर्मित बहुशाल उद्यान विविध तरुवृन्दो एव तरु-लताओ से अलकृत आगन्तुको का मन मुग्ध बना रहा था। पादपो के अवलम्बन पर पलने वाला खग समूह अपने कलरव नाद से वातावरण की कलुषता का अपहरण कर रहा था।

वहॉ के भद्रिक परिणामी लोग स्वभाव से सरल प्रकृति के थे। वे विशाल ज्ञान का भण्डार अपने मे समर्जित किये निरन्तर ज्ञान सरिता मे अवगाहन कर रहे थे। वहॉ रहने वाला ऋषभदत्त ब्राह्मण[1] अत्यन्त मेधा सम्पन्न था। वह ऋद्धि-समृद्धि की परिपूर्णता के साथ ज्ञान-समृद्धि मे भी वेभव की मिसाल था।

वैदिक साहित्य की दृष्टि से उसने चार वेदो का ज्ञान उपार्जित किया, तत्पश्चात् भगवान् पार्श्वनाथ के सामीप्य से उसने श्रावक योग्य वारह व्रतो को ग्रहण किया था।[2] वह जीव-अजीवादि नव तत्त्वो का ज्ञाता था और उनका पारायण करता हुआ अपनी जीवनचर्या को गतिमान कर रहा था।

उसकी अर्द्धांगिनी देवानन्दा ब्राह्मणी अपने भर्ता का अनुगमन करने वाली थी। सरलमना देवानन्दा का बाह्य सौन्दर्य नेत्राकर्षक था। कमनीय हाथ-पर वाली, मधुर भाषिणी देवानन्दा का सान्निध्य ऋषभदत्त के हृदय को आनन्दित करने वाला था। धर्म-मार्ग मे भी उद्यम करने वाली देवानन्दा ने वारह व्रतो को धारण कर, जीवाजीव आदि की ज्ञाता बनकर ज्ञान प्राप्ति के प्रति गहन अभिरुचि जागृत करली थी और समय-समय पर ज्ञान प्राप्ति का उपक्रम करती रहती थी। उनकी धार्मिक जिज्ञासा को ध्यान मे रखकर भगवान् महावीर अनेक भव्यात्माओ का उद्धार करने के लिए इसी ब्राह्मणकुण्ड मे पधारे और बहुशाल वन उद्यान मे ठहर कर तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करने लगे। ब्राह्मणकुण्ड मे गली-गली, चौराहे-चौराहे पर भगवान् महावीर के आगमन की चर्चा होने लगी। अदम्य उत्साह से लोगो के समूह के समूह भगवान् महावीर के दर्शनार्थ जाने लगे। ऋषभदत्त को भी यह सूचना कर्णगोचर हुई कि भगवान् पधार गये है। वह भी अत्यन्त हर्षित होकर घर आया और उसने देवानन्दा से

कहा–आज हमारा महान पुण्योदय है कि आज तीर्थपति भगवान् महावीर हमारे यहाँ पधारे हैं। ऐसे महान पुरुषो का तो नाम-गोत्र श्रवण करना भी दुर्लभ है, फिर उनके दर्शन, वदन एव वाणी-श्रवण से होने वाले लाभ के विषय मे कहना ही क्या !

देवानन्दा ने भगवान् के आगमन के समाचारो को जैसे ही ऋषभदत्त से सुना, उसका रोम-रोम पुलकित हो गया। उसने कहा–अपन भी प्रभु के दर्शन हेतु चलते हैं। दोनो ने धार्मिक स्थान मे जाने योग्य वस्त्राभूषणो को धारण किया एव रथ मे बैठकर प्रभु के समवसरण की ओर प्रस्थान कर दिया।[ii]

घोडो की टाप के साथ मन मे उत्साह भरने लगा। उनके नयन समवसरण का बेसब्री से इतजार कर रहे थे। शनै-शनै वे समवसरण के पास पहुँचे। समवसरण के पास पहुँचकर उन्होने धार्मिक रथ को रोका।

रथ से नीचे उतरकर ऋषभदत्त ब्राह्मण ने पॉच अभिगम धारण किये, यथा–

1 सचित्त द्रव्यो का त्याग किया (पुष्पमालादि उतार कर रथ मे रखे)।

2. अचित्त द्रव्यो का विवेक किया (जूते-चप्पल आदि उतारे)।

3 मुँह पर एक शाटिक–दुपट्टा लगाया।[iii]

4 समवसरण मे पहुँच कर प्रभु को दृष्टि-वदन किया।

5 अपने स्थान पर पहुँच प्रभु को विधियुक्त वदन किया और बैठ गया।[3]

तत्पश्चात् देवानन्दा ब्राह्मणी भी धार्मिक रथ से नीचे उतरी, उतरकर उसने पॉच अभिगम धारण किये –

1 सचित्त का त्याग किया (पुष्पमालादि)।

2 अचित्त वस्त्रादि का विवेक किया (जूते-चप्पल आदि उतारे)।

3 शरीर को विनय से झुकाया।

4 समवसरण मे प्रभु के दीदार को देखकर दृष्टि-वदन किया।

5 समवसरण मे अपने स्थान पर पहुँचकर विधियुक्त वदन किया और अपने स्थान को ग्रहण कर लिया।[4]

देवानन्दा ने शारीरिक दृष्टि से स्थान ग्रहण कर लिया, लेकिन उसका मन तो प्रभु के मुखचन्द्र को देखने मे समाकृष्ट था। वह भगवान् को देखते ही चित्रलिखित-सी रह गयी। प्रभु के दीदार को देखकर उसके हृदय मे वात्सल्य की धारा प्रवाहित होने लगी। उन्नत पयोधरो के विस्तीर्ण होने से कचुकी ने विस्तीर्णता धारण की और उसके उरोजो से दूध की धारा बहने लगी, लेकिन अब भी वह निरन्तर प्रभु को निर्निमेष दृष्टि से निहारे जा रही थी।

गणधर गौतम इस दृश्य का अन्तरावलोकन कर रहे थे। वे प्रत्यक्ष द्रष्टा बने हुए विस्मयान्वित हो रहे थे, चितन कर रहे थे कि यह क्या? यह देवानन्दा भगवान् को निर्निमेष निहारे जा रही है और भगवान् को निहारने से इसके शरीर मे अद्वितीय परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इसके पयोधरो से पयस बह रहा है। यह दृश्य तो मैं प्रथम बार ही देख रहा हूँ। लगता है, प्रभु का देवानन्दा से कोई सासारिक सम्बन्ध रहा होगा। मै भगवान् से पूछता हूँ। इस प्रकार विचार कर इन्द्रभूति गौतम बोले–भगवन् ! देवानन्दा ब्राह्मणी के पयोधरो से दुग्ध क्यो बह रहा है? यावत् इसका शरीर रोमाचित क्यो हो रहा है? यह आपको अपलक दृष्टि से क्यो निहार रही है?

भगवान् ने फरमाया–गौतम ! देवानन्दा मेरी माता है। प्रथम गर्भाधान काल मे मैं उसके गर्भ मे रहा। मैं उनका पुत्र हूँ। पुत्र के अनुरागवश ही उसके पयोधरो से यह दुग्ध की धारा बह रही है और वात्सल्य के कारण उसका शरीर रोमाचित हो रहा है। यही कारण है कि वह टकटकी लगाकर निरन्तर मुझे देख रही है।[4]

गौतम गणधर समाधान प्राप्त कर अत्यन्त हर्षित, सतुष्टित हुए। वे वदन कर प्रभु के समीप बैठ गये। तब भगवान् ने धर्मोपदेश फरमाया, जिसे श्रवण कर ऋषभदत्त एव देवानन्दा के मन मे वैराग्य का जागरण हुआ और उन्होंने प्रभु से कहा–आपकी अमृत वाणी श्रवण कर हम आपश्रीजी के चरणो मे प्रव्रज्या अगीकार करना चाहते हैं।

भगवान् ने फरमाया–जेसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य मे विलम्ब न करो।

तब दोनो ने ईशान कोण मे जाकर वस्त्रालकार उतारे और पचमुष्टि लोच करके प्रभु के चरणो में सयम अगीकार किया। देवानन्दा ने आर्या चन्दनाजी की शरण को स्वीकार किया। तत्पश्चात् दोनो सयमी यात्रा का निर्वहन करते हुए ग्यारह अगशास्त्रो का अध्ययन करने लगे।[5]

ऋषभदत्त एव देवानन्दा सयम जीवन का आनन्द ले रहे थे और प्रभु ब्राह्मणकुण्ड की जनता को अपनी भव्य देशना से सराबोर कर रहे थे। ब्राह्मणकुण्ड के समीप बसे हुए क्षत्रियकुण्ड[6] मे भी भगवान् के ब्राह्मणकुण्ड विराजने के समाचार निरन्तर पहुँच रहे थे। क्षत्रियकुण्ड से भी अनेक दर्शनार्थी प्रभु के चरणो की उपासना का निरन्तर लाभ ले रहे थे।

जमालि ने ली प्रभु की शरण :

एक दिन दर्शनार्थियो का समूह क्षत्रियकुण्ड से भगवान् महावीर की देशना

श्रवण करने हेतु निकला। उस समय वहाँ स्थित क्षत्रियकुमार जमालि जो भगवान् महावीर की बडी बहिन सुदर्शना का लडका होने से भानजा था, और भगवान् की पुत्री प्रियदर्शना का पति होने से जामाता था। अपने भव्य प्रासाद मे बत्तीस प्रकार के नाटको को देखता हुआ, मृदग, वाद्य[vi] आदि की ध्वनियो को श्रवण करता हुआ भोगानन्द मे निमज्जित था।

बाहर से आने वाले कोलाहल ने जमालि के मन मे हलचल पैदा कर दी। उसने महल के झरोखे से झॉककर देखा तो लोगो का समूह एक ही दिशा की तरफ मुँह करके जा रहा था। जमालि ने सोचा कि आज नगर मे कौनसा महोत्सव है? ये लोग कहाँ जा रहे हैं? उसे महोत्सव का स्मरण नहीं आया। तब उसने कचुकी पुरुष को बुलाया और उससे पूछा—आज नगर मे कौनसा महोत्सव है? ये लोग एकत्रित होकर कहाँ जा रहे हैं?

कचुकी—कुमार ! आज कोई उत्सव नहीं। ब्राह्मणकुण्ड मे भगवान् महावीर पधारे हुए हैं, उनकी धर्मदेशना श्रवण करने हेतु ये सभी जा रहे है।

कचुकी से जमालि यह श्रवण कर अत्यन्त हर्षित एव सतुष्ट हुआ। वह कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर कहता है—तुम चार घटा वाला अश्व-रथ लाओ। कौटुम्बिक पुरुष चतुर्घण्टा वाला अश्व-रथ लाते हैं, जिस पर समारूढ होकर वह ब्राह्मणकुण्ड नगर की ओर रवाना होता है। ब्राह्मणकुण्ड के बहुशाल वन उद्यान के समीप पहुँचकर उसने उद्यान के बाहर अपने रथ को रोका। वहीं पर पुष्प, ताम्बूल, आयुध (शस्त्र) एव जूते उतारे। आचमन किया तथा एक शाटिक उत्तरासन लगाकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप पहुँचा। प्रभु को दृष्टि वदन कर वह आगे बढा, तत्पश्चात् तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण करके पर्युपासना करने लगा।

प्रभु ने उस परिषद को सुधासभृत वाणी का पान कराया। जिनवाणी श्रवण कर परिषद् पुन लौट गयी। जमालि निर्ग्रन्थ प्रवचन श्रवण कर प्रभु से निवेदन करने लगा—हे भते ! आपका प्रवचन मुझे अत्यन्त सारभूत लगा। मैं माता-पिता की आज्ञा लेकर श्रीचरणो मे मुण्डित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

प्रभु ने फरमाया—हे देवानुप्रिय ! तुम्हे जैसा सुख हो वैसा करो, लेकिन धर्मकार्य मे विलम्ब न करो।

प्रभु के ऐसा कहे जाने पर वह जमालि रथारूढ होकर अपने प्रासाद की ओर क्षत्रियकुण्ड के लिए रवाना हुआ और महलो मे जाकर अपने माता-पिता से निवेदन किया—हे माता-पिता ! मैंने भगवान् महावीर से आज धर्म श्रवण किया, वह मुझे अत्यन्त इष्ट एव रुचिकर प्रतीत हुआ है।

माता-पिता ने कहा—हे पुत्र ! तू धन्य है, कृतार्थ है, भाग्यशाली है कि तूने

भगवान् के मुख से धर्म श्रवण किया और वह तुझे इष्ट, अभीष्ट और रुचिकर लगा है।

जमालि बोला—माता-पिता ! प्रभु द्वारा उपदिष्ट प्रवचन मुझे इष्ट लगा है, इसलिए मैं ससार के भय से उद्विग्न बना, जरा-मरण से भयभीत होकर सयम ग्रहण करना चाहता हूँ, आप मुझे सयम ग्रहण करने की अनुज्ञा प्रदान कीजिए।

जमालि की यह बात श्रवण कर माता के शरीर से पसीना छूटने लगा। वह शोक सतप्त हो कॉपने लगी। उसका मुख-कमल मुरझा गया। वह लावण्यशून्य एव कान्तिविहीन हो गयी। उसके आभूषण नीचे गिरने लगे। उसका उत्तरीय वस्त्र (ओढना) ऊपर से हट गया। शरीर भारी-भारी हो गया। चेतना नष्ट हो गयी और धडाम से वह धरतीतल पर गिर पडी।

तब दासियो ने स्वर्ण कलशो की जलधारा से सिचन कर उसके गात्र को स्वस्थ किया। बॉस के पखो से हवा की। तब उसकी मूर्च्छा अपगत हुई। मूर्च्छा दूर होते ही वह करुण विलाप करने लगी—बेटा ! तू हमारा इकलौता पुत्र है। तू हमे इष्ट, कान्त, प्रिय और मनोज्ञ है। हम तुम्हारे विना एक क्षण भी नहीं रह सकते। इसलिए जब हम परलोकवासी हो जाये, तेरी उम्र परिपक्व हो जाये और तेरे वश की वृद्धि हो जाये तब तू मुण्डित होकर प्रव्रजित हो जाना।

जमालि—माता-पिता ! यह मनुष्य-जीवन जन्म, जरा, मृत्यु, रोग तथा शारीरिक, मानसिक वेदनाओ से, सैकडो व्यसनो एव उपद्रवो से ग्रस्त है। यह कुश के अग्रभाग पर रही ओस-बिन्दु के समान क्षणिक एव चचल है। यह अवश्यमेव छोडने योग्य है। हे माता-पिता ! यह कौन जानता है कि हममे से कौन पहले जायेगा? कौन पीछे जायेगा? इसलिए आप मुझे सयम ग्रहण करने की अनुज्ञा प्रदान कीजिए।

माता-पिता—बेटा ! अभी तेरा शरीर यौवन के चरमोत्कर्ष को प्राप्त सबल, सामर्थ्यवान एव निरोग है, इसलिए अभी तो तू भौतिक ऋद्धि का उपभोग करले। फिर जब हम कालधर्म को प्राप्त हो जायेगे तब तू उम्र के परिपक्व होने पर कुल की वृद्धि होने पर सयम ग्रहण करना।

जमालि—माता-पिता ! यह शरीर दु खो का आगार है, सैकडो व्याधियो का खजाना है। अस्थि रूप काष्ठ पर खडा नाडियो और स्नायुओ के जाल से परिवेष्टित है। मिट्टी के बर्तन की तरह नाजुक और गदगी से दूषित है। इसको टिकाये रखने के लिए इसकी निरन्तर सम्हाल रखनी पडती है। यह सडन, गलन और विध्वसन गुणवाला है इसलिए आप मुझे सयम ग्रहण करने की अनुज्ञा दीजिए।

मै ससार के भोगो से विरक्त बनकर भगवान् महावीर की सन्निधि मे सयम ग्रहण करने जा रहा हूँ। माता-पिता की अनुज्ञा मिल गयी है और अब तुम भी

प्रियदर्शना—स्वामिन ! आपका शरीर अत्यन्त सुकुमाल और त्याग का मार्ग वह दुष्कर है सुदुष्कर है, अतीव दुष्कर है। तब कैसे उस मार्ग पर आप चल पायेगे?

जमालि—शूरवीरो के लिए सयम सुकर है। मैंने अपना दृढ निश्चय कर लिया है। अब मैं भोगो के कीचड मे नहीं रहूँगा।

प्रियदर्शना—जब आप चले जायेगे, तब हमारा क्या होगा ?

जमालि—तुम तो स्वय भगवान् की पुत्री हो। तुम क्यो नहीं भगवान् के बताये मार्ग का अनुसरण कर लेती हो?

प्रियदर्शना—ठीक है, मैं भी इस पर चल सकती हूँ, फिर क्यो न आपका ही अनुगमन कर लूँ।

ऐसा विचार कर प्रियदर्शना भी सयम के लिए तैयार हो गयी और उसने भी जमालि के साथ सयम लेने का दृढ निश्चय कर लिया।

जमालि दीक्षा के लिए पलक-पॉवडे बिछा रहा था कि मैं अतिशीघ्र इन मोह की बेडियो को तोड डालूँ। उसका मन सयम ग्रहण करने के लिए पूर्ण तत्पर था। उसके पिता ने भी उसकी तत्पर भावना का समादर करते हुए दीक्षा की तैयारियॉ प्रारम्भ करने का विचार किया।

जमालि राजकुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा—देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही पूरे क्षत्रियकुण्ड ग्राम मे पानी का छिडकाव करो और नगर की भूमि को साफ-स्वच्छ बना डालो। तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने जमालि के पिता की आज्ञा से नगर को स्वच्छ, सुथरा, परिमडित किया।

जमालि के पिता ने पुन कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा—हे देवानुप्रियों शीघ्र ही जमालि राजकुमार के लिए महामूल्य, महान पुरुषो के योग्य और विपुल निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी करो। पिता की आज्ञा होने पर कोटुम्बिक पुरुषों ने निष्क्रमणाभिषेक की सामग्री उपस्थित की।

तत्पश्चात् माता-पिता ने जमालि राजकुमार को पूर्वाभिमुख करके सिहासन पर विठलाया ओर एक सो आठ स्वर्ण कलशो से, एक सौ आठ रजत कलशों से, एक सौ आठ स्वर्ण-मणिमय कलशो से, एक सौ आठ रजत-मणिमय कलशों से, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणिमय कलशो से, एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से शख, प्रणव, भेरी, झल्लरी, खरमुही, मुरज, मृदग और दुदुभि के घोष सहित

वडे ठाठ-बाट से स्नान करवाया। अल्पभार, बहु-ऋद्धि वाले आभूषण-वस्त्रो से शरीर को अलकृत किया। पुष्प, गध, माला, अलकार से गात्र को विभूषित किया और उसका निष्क्रमणाभिषेक किया।

तत्पश्चात् उसको जय-विजय शब्दो से बधाया और माता-पिता ने पूछा–पुत्र! तुम बताओ, हम तुम्हारे लिए क्या करे?

जमालि–माता-पिता ! कुत्रिकापण से रजोहरण एव पात्र मॅगवाओ तथा नापित को बुलाओ।

तब पिता ने भण्डार से तीन लाख स्वर्ण मुद्राएँ निकाली, उनमे से एक-एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ देकर कुत्रिकापण से रजोहरण एव पात्र मॅगवाये तथा एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ देकर नापित को बुलाया।

जमालि के द्वारा बुलाये जाने पर नाई उपस्थित हुआ और उसने पिता से पूछा–देवानुप्रिय ! आप फरमाइये, मुझे क्या करना है?

तब पिता ने कहा–देवानुप्रिय ! तुम जमालि के निष्क्रमण योग्य चार अगुल वालो को छोडकर अत्यन्त यत्नपूर्वक बालो का कर्तन करो।

पिता का आदेश प्राप्त कर नाई अत्यन्त हर्षित हुआ। उसने सुगन्धित गधोदक से हाथ-पैर धोये। आठ पाटवाले शुद्ध वस्त्र से मुँह को बॉधा और अत्यन्त यत्नपूर्वक चार अगुल केशो को छोडकर शेष का कर्तन किया।

तव जमालि की मॉ ने हस चिह्न वाली चद्दर मे उन अग्र केशो को ग्रहण किया। फिर उन्हे सुगधित जल से धोया। श्रेष्ठ गध एव माला द्वारा अर्चन किया और शुद्ध वस्त्र मे बॉधकर रत्नो के पिटारे मे रखा।

तत्पश्चात् जमालि की माता सुदर्शना हार, जलधारा निर्गुण्डी के श्वेत फूल एव टूटी हुई मोतियो की माला के समान पुत्र के वियोग से ऑसू वहाती हुई इस प्रकार कहने लगी–जमालि के केश वहुत-सी तिथियो, पर्वो, उत्सवो, इन्द्रादि महोत्सवो के अवसर पर अन्तिम दर्शन के रूप मे होगे। फिर वे केश तकिये के नीचे रख दिये।

तत्पश्चात् जमालि के माता-पिता ने दूसरी वार उत्तराभिमुख सिहासन रखवाया और जमालि को कनक-रजत कलशो से स्नान करवाया। रोएँदार सुकोमल, गध कापायित सुगधित वस्त्र से उसके गात्र को पोछा। सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप उसके अग-प्रत्यगो पर किया। नासिका की निश्वास वायु से उड जाये ऐसे वारीक, नेत्रो को आह्लादक लगने वाला अत्यन्त सुन्दर सुकोमल, घोडे के मुख की लार से भी अधिक कोमल श्वेत एव स्वर्ण तार जडित महामूल्यवान

हस के चिह्न से युक्त रेशमी वस्त्र पहिनाया। अठारह लडी वाला हार, नवलडी वाला हार, एकावली, मुक्ताहार और रत्नावली गले मे पहनाई। भुजाओ मे अगद[क], केयूर[ख], कडा, त्रुटित[ग], करधनी[घ], दसो अगुलियो मे दस अगूठियॉ, वक्ष सूत्र, मुरवि (मादलिया), कठ मुरवि (कठी), प्रालब (झूमके), कानो मे कुण्डल तथा मस्तक पर चूडामणि (कलगी) और विचित्र रत्न जडित मुकुट पहिनाया। ग्रन्थिम (गूँथी हुई), वेष्टिम (लपेटी हुई), पूरिम (पूरी हुई) और सघातिम (साधकर बनाई हुई) चारो प्रकार की पुष्प मालाओ से कल्पवृक्ष के समान जमालिकुमार को अलकृत किया।

तत्पश्चात् जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनसे कहा—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही सैकडो खम्भो से युक्त एक शिविका तैयार करो जिसमे स्थान-स्थान पर हाव-भाव, विलासयुक्त अनेक पुतलियॉ नयनाभिराम हो। उस शिविका मे ईहा मृग (भेडिया), वृषभ (बैल), तुरग (घोडा), नर, मगरमच्छ, विहग (पक्षी), सर्प, किन्नर, रुरु (कस्तूरी मृग), सरभ (अष्टापद पक्षी), चमरी गाय, हाथी, वन लता, पद्मलता आदि के नयनाभिराम चित्र चित्रित हो। उसके स्तम्भो पर वज्र रत्नो की रमणीय वेदिका बनाओ, जहॉ समश्रेणि मे स्थित विद्याधर युगल यत्र चालित जैसे दिखलाई दे। वह शिविका हजारो किरणो से व्याप्त एव हजारो चित्रो से युक्त देदीप्यमान, अतीव देदीप्यमान प्रतीत हो। जिसे देखते ही दर्शको के नेत्र वहीं चिपक जाये। जिसका सस्पर्श सुखद एव श्रीसम्पन्न हो, जिसके हिलने-डुलने से उसमे लगी हुई घटियॉ मधुर एव मनोहर ध्वनि प्रसरित करे। जो वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना होने से कमनीय, दर्शनीय हो। निपुण शिल्पियो से निर्मित, देदीप्यमान मणि-रत्नो से, घुँघरुओ से व्याप्त एक हजार पुरुषो द्वारा उठाई जाने योग्य शिविका (पालकी) उपस्थित करो।

कौटुम्बिक पुरुषो ने जमालि के पिता की आज्ञा का पालन कर शिविका तैयार कर दी।

तत्पश्चात् जमालिकुमार केशालकार, वस्त्रालकार, माल्यालकार और आभरणालकार, इन चार प्रकार के अलकारो से अलकृत होकर, प्रतिपूर्ण अलकारो से सुसज्जित होकर सिहासन से उठा और दक्षिण की ओर से शिविका पर चढा और श्रेष्ठ सिहासन पर पूर्व की ओर मुँह करके बैठ गया।

तब जमालि की माता स्नानादि करके यावत् शरीर को अलकृत करके हस चिह्न वाला पट शाटक लेकर दक्षिण की ओर से शिविका पर चढकर जमालिकुमार की दाहिनी ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठ गयी।

(क) अंगद–भुजा का गहना, भूजवद (ख) केयूर–वाजूवद
(ग) त्रुटित–वज्जूवद (घ) करधनी–कदोरा

तत्पश्चात् जमालिकुमार की धायमाता शरीर को अलकृत कर रजोहरण और पात्र लेकर दाहिनी ओर से शिविका पर चढकर जमालि राजकुमार के बायीं ओर श्रेष्ठ भद्रासन पर बैठ गयी।

तब जमालि के पृष्ठ भाग मे (पीछे) शृगार की प्रतिमूर्ति, सुन्दर वस्त्रो से सुसज्जित, चारु[क] गति वाली, रूप और लावण्य की देवी, कमनीय अग- प्रत्यगो वाली एक उत्तम तरुणी हिम, रजत, कुमुद, कुन्द, पुष्प एव चन्द्रमा के समान श्वेत कोरण्ट पुष्पमाला से युक्त श्वेत छत्र हाथ मे लेकर धारण करती हुई खडी हुई।

जमालिकुमार के दाहिनी और बायीं ओर ऐसी सुन्दर दो तरुणियॉ हाथ मे चमर लिए हुए लीला सहित डुलाती हुई खडी हो गयीं। वे चमर अनेक मणियो, कनक, रत्नो तथा विशुद्ध एव महामूल्यवान तपनीय (लाल स्वर्ण) से निर्मित उज्ज्वल, विचित्र दण्डवाले एव देदीप्यमान थे और शख, अकरत्न, कुन्दपुष्प (मोगरा), चन्द्र जल बिन्दु एव मथे हुए अमृत के फेन के पुज के समान श्वेत थे।

तब क्षत्रियकुमार जमालि के ईशान कोण मे शृगारधर के समान, रूप-यौवन की लावण्यमयी प्रतिमा एक तरुणी शुद्ध जल से परिपूर्ण, उन्मत्त हस्ती के महामुख के आकार समान श्वेत रजत कलश हाथ मे लेकर खडी हो गयी।

जमालिकुमार के आग्नेय कोण मे शृगार की आगार रूप एक तरुण युवती विचित्र स्वर्णमय दड वाले ताड़पत्र के पखे को लेकर खडी हो गयी।

तब जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा— देवानुप्रियो! शीघ्र ही समवर्ण वाले, समवय वाले, समलावण्य वाले, रूप और योवन गुणो से सभृत समआभूषणो से विभूपित गात्र वाले, समवस्त्र धारण करने वाले एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्विक पुरुषो को बुलाओ।

तव उन्होंने पिता की आज्ञा से एक हजार श्रेष्ठ कौटुम्विक पुरुषो को वुलाया। उन कौटुम्विक पुरुषो ने एक-सरीखे आभूपण एव वस्त्रों को धारण किया, जमालि के पिता के पास उपस्थित हुए और कहा—हमारे योग्य कार्य का आदेश दीजिए।

जमालिकुमार के पिता ने कहा—तुम सव जमालिकुमार की शिविका उठाओ।

तव उन कौटुम्विक पुरुषो ने शिविका उठाई। उस शिविका के आगे-आगे सर्वप्रथम आठ मंगल—1 स्वस्तिक, 2. श्रीवत्स, 3 नन्दावर्त 4 वर्धमानक, 5 भद्रासन, 6 कलश, 7 मत्स्य और 8 दर्पण चले। इनके पश्चात् पूर्ण कलश, झारियॉ, दिव्य छत्र, पताका, चॅवर एव दर्शनीय गगनचुम्बी विजय ध्वजा लिए राजपुरुप चले।

तत्पश्चात् नीलम की प्रभा से देदीप्यमान उज्ज्वल, दडयुक्त लटकती हुई

(क) चारु-सुन्दर

हे देवानुप्रिय ! यह जन्म-जरा-मरण से भयभीत हुआ है। अतएव यह गृहस्थ से सन्यास जीवन को अगीकार करना चाहता है। हम आप देवानुप्रिय को शिष्य-भिक्षा देते है। आप इसे स्वीकार कीजिए।

भगवान् ने फरमाया–देवानुप्रिय ! तुम्हे जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य मे विलम्ब न करो।

भगवान् द्वारा ऐसा कहने पर जमालिकुमार हर्षित, सतुष्टित होकर, भगवान् को वदन-नमस्कार करके ईशान कोण मे गया जहॉ उसने आभूषण, माला और अलकार उतार दिये। जिन्हे जमालि क्षत्रियकुमार की मॉ ने हस चिह्न वाले रेशमी वस्त्र मे ग्रहण कर लिया और नेत्रो से ऑसू की लडी गिराती हुई बोली–पुत्र! सयम मे चेष्टा करना, सयम मे यत्न करना, सयम मे पराक्रम करना, सयमी क्रियाओ मे जरा भी प्रमाद मत करना।

ऐसा कहकर जमालि के माता-पिता जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा मे लौट गये।

तत्पश्चात् जमालिकुमार ने स्वयमेव पचमुष्टिक लोच किया और उसने 500 पुरुषो के साथ ऋषभदत्त ब्राह्मण की तरह ही भगवान् से प्रव्रज्या अगीकार की। सयम लेकर जमालि ने सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया और बहुत-से उपवास, बेला, तेला, अर्द्धमास, मासखमण आदि विचित्र तप कर्म से आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करने लगा।

जमालि के साथ प्रियदर्शना ने भी एक हजार स्त्रियो के साथ सयम अगीकार किया और प्रियदर्शना भी साध्वी चन्दनबालाजी आर्या के पास शास्त्रो का अध्ययन कर विविध प्रकार की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगी।[10]

इस प्रकार भगवती सूत्र मे ब्राह्मणकुण्ड मे ही जमालि की दीक्षा का उल्लेख है[11] जबकि त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र एव महावीरचरिय मे ऐसा उल्लेख है कि ब्राह्मणकुण्ड मे ऋषभदत्त एव देवानन्दा की दीक्षा के पश्चात् भगवान् क्षत्रियकुण्ड पधारे।[12] वहॉ भगवान् का समवसरण हुआ और स्वय राजा नन्दिवर्धन विशाल राज-परिवार सहित भगवान् की धर्मदेशना श्रवण करने के लिए पहुँचा।[13] उस समय भगवान् का जमाता जमालि एव पुत्री प्रियदर्शना[iii] भी धर्मदेशना श्रवण करने हेतु वहॉ उपस्थित हुई। धर्म श्रवण कर जमालि प्रतिबुद्ध हुआ और उसने 500 पुरुषो के साथ सयम अगीकार किया। प्रभु की पुत्री प्रियदर्शना ने भी एक हजार स्त्रियो के साथ सयम ग्रहण किया।[14]

जमालि की दीक्षा बहुशाल वन उद्यान मे हुई जो ब्राह्मणकुण्ड और क्षत्रियकुण्ड के मध्य मे था। इसलिए चाहे ब्राह्मणकुण्ड मे दीक्षा कहे या क्षत्रियकुण्ड मे, इसमे कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार जमालि की दीक्षा के पश्चात् विदेह जनपद के ग्राम-नगरो मे विचरण करते हुए, भगवान् अनेक भव्यात्माओ को प्रतिबुद्ध कर रहे हैं और अनेक भव्यात्माओ का उद्धार करते हुए विदेह जनपद मे विचरण करते हुए द्वितीय वर्षावास हेतु वैशाली पधार गये और वहीं अनेक भव्यात्माओ को ससार सागर से तिराते हुए तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

अनुत्तरज्ञानचर्या का द्वितीय वर्ष

टिप्पणी

I गण्डकी नदी

यह नदी हिमालय के सप्तगडकी और धवलगिरिश्रेणि से निकलती है। यह गडक, नारायणी आदि अनेक नामो से प्रसिद्ध है।

II देवानंदा

देवानन्दा के सन्दर्भ मे दासियो का विवरण औपपातिक सूत्र मे मिलता है, यथा कुबडी–किरात देश की, बौनी–झुकी कमर वाली, बर्बर देश की, बकुश देश की, यूनान देश की, पहलव देश की, इसिन देश की, चारूकिनिक देश की, लासक देश की, लकुश देश की, सिहल देश की, द्रविड देश की, बहल देश की, अरब देश की, पुलिन्द देश की, पकण देश की, मुरूड देश की, शबर देश की, पारस देश की, इस प्रकार विभिन्न देशो की दासियो का वर्णन है।

औपपातिक, अभयदेव, पृष्ठ 33–34

III दुपट्टा

एक शाटिक वस्त्र जो उत्तर दिशा से डाला जता है, वह उत्तरासन है। यह उत्तर से दक्षिण मे डाला जाता है।

औपपातिक, हस्तलिखित, सवत् 1211, सेठिया ग्रन्थालय, बीकानेर, पृ 40

IV गर्भ संहरण की घटना

आचार्य गुणचन्द्र ने महावीरचरिय मे ऐसा उल्लेख किया है कि भगवान् के गर्भ सहरण की बात इतने समय तक जन साधारण को ज्ञात नही थी। वह इसी समय ज्ञात हुई इसे श्रवण कर देवानन्दा, ऋषभदत्त के साथ–साथ सारी परिषद् आश्चर्यचकित हो गयी।

महावीरचरिय, गुणचन्द्र, वही, अष्टम प्रस्ताव, पृ 380

V क्षत्रियकुण्ड

मुजफ्फरपुर जिला मे बेसाडपट्टी के पास जो बसुकुण्ड गॉव है, वही महावीर की जन्मभूमि प्राचीन क्षत्रियकुण्डपुर है।

VI तात्कालीन वाद्य

शख, श्रृग, श्रृखिका, खरमुही (काहला) पेया (महती काहला) पिरिपिरिका (कोलिकमुखावमद्धमुख वाद्य) पणव (लघुपहट) पटह भभा (ढक्का) होरम्भ (महाढक्का) भेरी (ढक्काकृति वाद्य) झल्लरी (यह बाये हाथ मे पकडकर दाये हाथ से बजाई जाती हैं) दुन्दुभी (मगल और विजय सूचक होती है तथा देवालयो

मे बजाई जाती है) मुरज (महाप्रमाणमर्दल) मृदग (लघुमर्दल) नदी मृदग (एक ओर से सकीर्ण अन्यत्र विस्तृत मुरज विशेष) आलिग (गोपुच्छाकार मृदग जो एक सिरे से चौडा और दूसरे सिरे से सकरा होता था) कुस्तुव, गोमुखी मर्दल (दोनो ओर से सम) वीणा, विपची (त्रितत्री वीणा) वल्लवी (सामान्य वीणा) महती, कच्छभी (भारती वीणा) चित्रवीणा, सबद्धी, सुघोषा, नदिघोषा, भ्रामरी, षड्भ्रमरी, वरवादिनी (सप्ततत्री वीणा) तूणा, तुम्बवीणा, आमोद, झञ्झा, नकुल, मुकुन्द (मुरज वाद्य विशेष) हुडुक्का, विचिक्की, करटा, डिडिम, किणित, कडब, दर्दर, दर्दरिका, कलशिका, महुया, तल, ताल, कास्यताल रिंगिसिका, लत्तिया, मगरिका, शिशुमारिका, वश, वेणु, वाली (तूण विशेष, जो मुख से बजाया जाता था) परिली और बद्धक।

VII चतुष्क

श्रृगाटक त्रिक–1 चतुष्क 2 चत्वर 3 चतुर्मुख

हारिभद्रीय आवश्यक वृत्ति, पूर्व भाग, पत्राक–136 सन् 1917

VIII प्रियदर्शना

सुदर्शना भगवान् की बडी बहिन थी, उसके पुत्र का नाम था जमालि। भगवान् की पुत्री अनवद्या (प्रियदर्शना) उसकी पत्नी थी। अन्य ऐसा कहते है कि ज्येष्ठा, सुदर्शना, अनवद्या ये जमालि की पत्नी के नाम हैं।

आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि वृत्ति, पत्राक 405

अनुत्तर ज्ञानचर्या का तृतीय वर्ष

साहिल मिला भव्यों को

मन भाई मृगावती :

वैशाली[1] चातुर्मास मे अनेक भव्यात्माओ को मोक्ष मार्ग पर समारूढ कर भगवान् महावीर वत्स देश मे विचरण करने लगे। वत्स[11] देश की राजधानी कौशाम्बी उस समय की ऐतिहासिक नगरी थी, जहॉ राजा शतानीक धर्मानुरागी राजा चेटक का जॅवाई था।

राजा शतानीक क्षत्रियोचित गुणो से शोभित, उत्तम कुलोत्पन्न, करुणा की प्रतिमूर्ति था। उसका राज्य-कोष अत्यन्त समृद्ध था। वह दुर्भिक्ष एव महामारी के भय से रहित, निर्विघ्न राज्य का पालन करता था। एक दिन राजा शतानीक ने राज्यसभा मे उपस्थित जनसमुदाय से पूछा—मेरे इस राज्य मे आप लोगो को किस बात की कमी महसूस हो रही है? जनता ने कहा—यहॉ आपके राज्य मे और किसी बात की कमी नहीं है, लेकिन एक चित्रशाला नहीं है। शतानीक ने कहा—शीघ्र ही यह कमी पूर्ण हो जायेगी।

तत्काल राजा शतानीक ने अनेक चित्रकार बुलाये और उन्हे सजीव चित्रो को बनाने की आज्ञा दी। अनेक चित्रकार अपने कलाकौशल से विचित्र चित्र बनाने लगे। वहॉ उपस्थित चित्रकारो मे एक चित्रकार को यक्ष से वरदान मिला हुआ था। हुआ यो कि उस समय साकेतपुर नगर मे सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था। उस यक्ष की प्रतिमा को जो भी चित्रकार चित्रित करता, वह उसको मार डालता था और यदि उस यक्ष की प्रतिमा को कोई चित्रित नहीं करता तो वह उस नगर मे महामारी फैला देता। इस प्रकार प्रतिवर्ष एक चित्रकार की हत्या होने लगी। उस विकट परिस्थिति का अवलोकन कर अनेक चित्रकार शनै -शनै नगरी से पलायन करने की तैयारी करने लगे।

ऐसी स्थिति मे साकेतपुर नरेश ने महामारी फैलने के भय से जाते हुए उन चित्रकारो पर रोक लगाई तथा एक व्यवस्था कर दी कि सभी चित्रकारो के नाम चिट्ठियो पर लिखकर घडे मे डाल दिये जाए। प्रतिवर्ष उस घडे मे से एक चिट्ठी निकालते। जिसके नाम की चिट्ठी निकलती, वह उस यक्ष की प्रतिमा को चित्रित करता था।

एक बार कोशाम्बी से एक चित्रकार चित्रकला सीखने के लिए साकेतपुर पहुॅचा और एक वृद्धा स्त्री के घर उतरा। उस वृद्धा के एक पुत्र था, उसके साथ उस चित्रकार की मैत्री हो गई क्योंकि वृद्धा का पुत्र भी चित्रकार था। दोनो

मित्र बडे प्रेम से रहने लगे। इधर यक्ष की प्रतिमा को चित्रित करने का समय आया ओर उस घडे मे से चिट्ठी निकाली। सयोग से चिट्ठी वृद्धा के पुत्र के नाम की निकली। जब वृद्धा को इस बात का पता चला, तो वह जोर-जोर से करुण विलाप करने लगी। तब उस कौशाम्बी के चित्रकार ने कहा–माताजी ! आप चिता न करे, आपके पुत्र के स्थान पर मैं उस यक्ष की प्रतिमा को चित्रित कर दूँगा। वृद्धा ने कहा–बेटा ! तू भी तो मेरा ही पुत्र है। तब उस कौशाम्बी के चित्रकार ने कहा–मेरा भाई जाये, उससे अच्छा है मैं ही चला जाऊँ। ऐसा कहकर वह आगन्तुक चित्रकार चला गया।

यक्ष के मन्दिर मे पहुँचकर उसने बेले की तपस्या का प्रत्याख्यान कर लिया। अपने शरीर को शुचिमय बनाकर चन्दन का विलेपन कर लिया ओर यक्ष की मूर्ति के पास चित्राकन करने के लिए उपस्थित हुआ। चित्राकन करने के पश्चात् यक्ष को मूर्ति की समक्ष अत्यन्त विनयभाव से निवेदन किया–हे देव! आपकी मूर्ति को चित्रित करने मे अतिचतुर चित्रकार ही समर्थ हें। मै एक नन्हा गरीब बाल चित्रकार आपका सुन्दर चित्राकन नहीं कर सका, लेकिन आप तो करुणा के सागर हो, मेरी त्रुटि को अवश्यमेव क्षमा प्रदान करने की कृपा करावे।

उसकी विनय-सपृक्त मधुर वाणी को श्रवण कर यक्ष प्रसन्न हो गया ओर प्रकट होकर बोला–वत्स ! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ, तू कोई वरदान मॉग ले।

चित्रकार बोला–बस, यही एक विनति है कि आप अब आपकी प्रतिमा चित्रित करने वाले किसी चित्रकार को नहीं मारे।

यक्ष–यह तो मैंने तुम्हारे चित्राकन करते समय ही प्रतिज्ञा कर ली थी। तुम ओर कोई वरदान मॉगो।

चित्रकार–आप इतनी कृपा करना कि इस नगर मे महामारी न फंले।

यक्ष–मे महामारी भी नहीं फंलाऊँगा। लेकिन एक वरदान तुम स्वय के लिए मॉगो।

चित्रकार–मै यह चाहता हूँ कि जिस किसी मनुष्य या तिर्यंच के शरीर का एक अश भी देख लूँ, उसका सम्पूर्ण चित्र पूरा शरीर देखे बिना बना सकूँ।

यक्ष–वत्स ! आज के बाद ऐसा ही होगा।

वरदान प्राप्त कर वह चित्रकार लोट गया। उसे जीवित देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये। पूरा नगर हर्ष के वातावरण मे हिलोरे लेने लगा और साकेतपुर नरेश ने भी उसे यथोचित उपहार दिया। वह चित्रकार उपहारादि लेकर पुन कोशाम्बी लोट आया ओर वहीं चित्रकारी करने लगा।

राजा शतानीक के बुलाने पर वह चित्रशाला मे आकर्षक चित्र बनाने के लिए आतुर था। उसने अनेक आकर्षक चित्र उस चित्रशाला मे बना डाले। एक बार वह चित्र बना रहा था और महल के झरोखे की जाली से उसे शतानीक की महारानी मृगावती के पैर का अगूठा मुद्रिका सहित दिखाई दिया। अगूठा देखकर उसने विचार किया कि मुझे मृगावती महारानी का आकर्षक चित्र बनाना चाहिए। यह सोचकर वह मृगावती का चित्र बनाने लगा। मृगावती का पूर्ण चन्द्रवत् प्रहसता हुआ-सा मुख-मण्डल उसने अत्यन्त जीवत बनाया। वह आकर्षक पलको को चित्रित कर रहा था कि स्याही का एक बिन्दु मृगावती के चित्र की जघा पर गिरा। उसने उस बिन्दु को पोछ दिया, लेकिन पुन दूसरा बिन्दु वहीं पर गिरा। उसे भी उसने पोछ दिया तो तीसरा बिन्दु फिर वहाँ गिरा। तब यक्ष से वरदान प्राप्त चित्रकार समझ गया कि जरूर मृगावती की जघा पर लाछन होगा। अब उसने उस बिन्दु को नहीं पोछा और वह बिन्दु लाछन के रूप मे परिवर्तित हो गया। उस चित्रकार ने मृगावती का सजीव चित्र बना दिया।

इधर मृगावती महारानी का सजीव चित्र बनने के पश्चात् राजा शतानीक एक दिन चित्रशाला मे आया और मृगावती का चित्र देखते ही उसके होठ फडकने लगे, ऑखे लाल हो गयी, भौंहे तन गयी और क्रोध से उस चित्रकार को बोला—अरे निर्लज्ज ! तूने छुपकर कहाँ महारानी को देखा है? मै तुझे जान से मार डालूँगा।

तब अन्य सभी चित्रकारो ने कहा—राजन् ! यह चित्रकार शीलधर्म की मर्यादा पालने वाला है। इसने महारानीजी को नहीं देखा, लेकिन इसको यक्ष का वरदान प्राप्त है। यह जिस-किसी मनुष्य या तिर्यच के एक अग को देखता है उसको यथावत् चित्रित कर देता है। अभी भी इसने महारानी के पैर के केवल अगूठे को झरोखे की जाली से देखा और पूरा चित्र बना दिया।

तब राजा शतानीक ने उस चित्रकार की परीक्षा लेने के लिए अपनी कुबडी दासी का मात्र मुख दिखलाया। चित्रकार ने उसका वैसा हूबहू रूप बना दिया और राजा शतानीक को दिखलाया। लेकिन राजा शतानीक का क्रोध अभी तक शात नहीं हुआ था। क्रोध इसान को बहरा, गूगा, अधा और विवेक-विकल बना देता है। क्रोध से प्रज्ञा मलिन हो जाती है। क्रोध की भूमि पर अनेक विकारो का जन्म होता है। वे विकार हमारे समस्त सद्गुणो को धो डालते है। यही स्थिति राजा शतानीक की हुई। उसने आवेश मे आदेश दे दिया कि इस चित्रकार का दाये हाथ का अँगूठा काट डालो।

राजा का आदेश श्रवण कर चित्रकारो की मण्डली दग रह गयी। इतनी मेहनत करके जिसने चित्रशाला को सजाया, सँवारा और उसको अत्यन्त आकर्षक

बनाया, आज उसी चित्रकार का अग-भग करने का यह कठोर आदेश। अहह!
कैसी क्रूर नियति? न जाने अशुभ कर्म कब उदय मे आ जाये? और कब
आदमी को भयकर शोक-सागर मे निमग्न कर दे। सभी चित्रकारो के चेहरे पर उदासी, लेकिन राजा का आदेश आखिर कलालो ने अगूठे को काट ही दिया। चित्रकार का मन अत्यन्त ग्लानि से भर गया। वह विचार करने लगा—मै एकदम बेकसूर इसान कोई खता नहीं की फिर भी आज यह राजा चित्रकार आवेश मे आ गया। वह भूल गया कि यह सब मेरे ही कर्मो की सजा है। कर्म अनन्तानन्त भवो तक साथ चलते हैं। न जाने किस जन्म के कर्म का फल किस जन्म मे मिल जाता है! अशुभ कर्म करना सरल है, लेकिन उनका फलभोग बडा दुष्कर है। आवेशित चित्रकार व्यथित हो सोचने लगा कि मुझे राजा से बदला लेना है। उसने मेरी कला छीनकर मेरे पेट पर लात मारी है। मै भी उसको मजा चखाके रहूँगा। अब कहॉ जाऊँ कैसे करूँ दु ख की इस वेला मे उसे उपकारी यक्ष का स्मरण आया।

दु ख इसान को धर्मात्मा बना देता है। दु ख गुरुभक्त, प्रभुभक्त बनाता है। दु ख मे व्यक्ति कृतज्ञ और नमकहलाल बन जाता है। वह चित्रकार भी दु खी बनकर साकेतपुर नगर चला गया और सुरप्रिय यक्ष के यक्षायतन मे उपवास करके उसकी समर्चा करने लगा, क्योकि सुख मे सगी साथ जन खूब साथ देते हैं, लेकिन दु ख मे वे कोसो दूर चले जाते हैं। बात करना तो दूर रहा, लेकिन ऑख भी नहीं मिलाते। दु ख मे एकमात्र देव, गुरु, धर्म ही सहायक बनते है। वह भक्तिभाव मे लीन होकर उपासना करने लगा। भक्ति से यक्ष प्रसन्न हो गया और प्रकट होकर बोला—चित्रकार, तुम चितित न बनो। मैं तुम्हारे मन की पीडा को जान गया हूँ। तुम जैसा चित्र दाये हाथ के अगूठे से बनाते हो वैसा ही चित्र तुम अब बाये हाथ के अगूठे से भी बना पाओगे।

यह वरदान प्राप्त कर चित्रकार सतुष्ट हो गया और सतुष्ट होकर उसने वस्त्राभूषणो से सुसज्जित मृगावती महारानी का नयनाभिराम चित्र बनाया। चित्र बनाने के पश्चात् विचार किया कि यदि इस चित्र को मैं स्त्री-लोलुप उज्जयिनी नरेश चण्डप्रद्योतन के पास ले जाऊँ तो वह इसे अवश्यमेव प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा और चण्डप्रद्योतन की विशाल सेना से शतानीक अवश्यमेव पराजित बन जायेगा। मुझे यही करना चाहिए। ऐसा विचार करके वह उज्जयिनी पहुँच गया और वहॉ जाकर राजा चण्डप्रद्योतन से मिलने की अनुमति द्वार-रक्षक से मॉगी।

द्वारपाल ने जाकर चण्डप्रद्योतन राजा से कहा—महाराज की जय हो, एक विदेशी चित्रकार आपके दर्शन करना चाहता है।

मजबूत ईंटे लाकर कौशाम्बी मे एक मजबूत किला बनवा दो जिसमे रहकर उदयन अपनी रक्षा करेगा।

चण्डप्रद्योतन–तुम्हारी महारानी से कहो, हमे यह आदेश स्वीकार्य है।[1]

दूत चण्डप्रद्योतन के समाचार लेकर मृगावती के पास पहुँच गया। मृगावती को थोडी राहत मिली। वह अपने धर्म मार्ग मे अग्रसर बनकर कष्ट का समय व्यतीत करने लगी।

उसने राज्य सिहासन पर अपने नाबालिग पुत्र उदयन का राज्याभिषेक कर दिया और राज्य-धुरा का स्वयमेव सचालन करने लगी।

चण्डप्रद्योतन मृगावती को पाने की ललक लिए किला बनवाने की योजना करने लगा। इस हेतु उसने कौशाम्बी से उज्जयिनी के मध्य मार्गगत चौदह राजाओ से मैत्री सम्बन्ध सस्थापित कर लिया और उज्जयिनी से ईटे मँगवाकर किला बनवाना प्रारम्भ किया।

अनेक कारीगर अपनी प्रखर, निपुण कला से उस भव्य किले का निर्माण कर रहे हैं और किला बन रहा है।[2]

जयन्ती की जिज्ञासा :

इसी बीच भगवान् महावीर मोक्ष के किले की सैर भव्यात्माओ को करवाने हेतु कौशाम्बी पधार गये और वहाँ के चन्द्रावतरण नामक उद्यान में तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

राजा उदयन को भी भगवान् के चन्द्रावतरण उद्यान मे पधारने की सूचना मिली, जिसको श्रवण कर उसका रोम-रोम पुलकने लगा और प्रभु-दर्शन की तीव्र उत्कठा उसके हृदय मे जागृत हुई। कौशाम्बी नगर को स्वच्छ-सुथरा-सुरभित बनवाकर, स्नान-विलेपन आदि कर आकर्षक-सौम्य आभरण और परिधान से स्वय को परिमण्डित कर, अनेक सुभटो से परिवृत होकर, धार्मिक-श्रेष्ठ रथ पर समारूढ होकर प्रभु महावीर की सन्निधि प्राप्त करने हेतु राजप्रासादो से निकल चला।

राजा उदयन की बुआ जयन्ति श्रमणोपासिका जीवाजीव के स्वरूप को जानने वाली थी। वह भगवान् महावीर के श्रावक एव साधुओ को शय्या प्रदान करने वाली थी। जो भी साधक प्रथमबार कौशाम्बी आते वे सबसे पहले जयन्ती श्रमणोपासिका से बस्ती की याचना करते थे। साधुओ एव श्रावकों को सर्वप्रथम शय्या देने से वह पूर्व शय्यातरी के नाम से प्रसिद्ध थी।[3]

इस जयन्ति श्रमणोपासिका को भी प्रभु के आगमन की सूचना मिली, जिसे श्रवण कर उसका हृदय बाँसो उछलने लगा। उसी समय अपनी भाभी मृगावती के समीप आकर कहने लगी–देवानुप्रिये ! धर्म के आदिकर, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी,

छत्रादि अतिशयसम्पन्न श्रमण भगवान् महावीर सुखपूर्वक विचरण करते हुए यहाँ पधारे हैं। वे यहाँ के चन्द्रावतरण उद्यान मे विराज रहे है।

देवानुप्रिये ! उनका नाम-गोत्र श्रवण भी महाफलदायी है तब उनके सम्मुख जाना, वदन-नमस्कार करना, प्रश्न पूछना और पर्युपासना करना और धार्मिक प्रवचन सुनना, यह तो अत्यधिक रूप से महाफलदायी है। यह हमारे इस भव-परभव के लिए हितकर, सुखकर, क्षेमकर, नि श्रेयस्कर और शुभानुबधी है। अपनी ननद जयन्ति श्रमणोपासिका के वचनो को श्रवण कर मृगावती का रोम-रोम हर्षित हुआ और दोनो वस्त्रालकारो से सुसज्जित होकर, धार्मिक रथ पर समारूढ होकर, कुब्जादि दासियो से परिवृत होकर भगवान् की ओर चली।

वे चन्द्रावतरण के बाहर रथ को रोकती हैं और उदयन को साथ लेकर भगवान् की सेवा मे पहुँचती हैं। प्रभु को वदन-नमस्कार करती हैं और उदयन को आगे करके उसके पीछे बैठकर धर्मोपदेश श्रवण करती हैं।

धर्मोपदेश श्रवण कर उदयन[4], मृगावती एव परिषद लौट गयी। जयन्ति श्रमणोपासिका वहीं रुक गयी। उसके मन मे अनेक जिज्ञासाएँ थीं, जिनका समाधान वह प्रभु से प्राप्त करना चाहती थी। अतएव अवसर देखकर भगवान् को वदन-नमस्कार करती है और विनयावनत होकर पूछती है—भगवन् ! किस कारण से जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होता है?

भगवन्—जयन्ति ! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्यपर्यन्त अठारह पापस्थान सेवन करने से जीव शीघ्र गुरुत्व (भारीकर्मा) को प्राप्त होता है।

जयन्ति—भगवन् ! किस कारण जीव शीघ्र लघुत्व (हल्केपन) को प्राप्त होता है?

भगवन्—प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से विरत होने से जीव शीघ्र लघुत्व (अल्पकर्मत्व) को प्राप्त होता है।

जयन्ति—भगवन् ! किस कारण जीव कर्म द्वारा ससार बढाता है?

भगवन्—अठारह पाप-सेवन करने से जीव ससार बढाता है।

जयन्ति—भगवन् ! जीव किस कारण ससार घटाता है?

भगवन्—जयन्ति ! अठारह पाप से विरत होने से जीव ससार घटाता है।

जयन्ति—भगवन् ! किस कारण जीव ससार दीर्घकाल वाला करता है?

भगवन्—जयन्ति ! अठारह पाप-सेवन से जीव ससार दीर्घकाल वाला करता है।

जयन्ति—भगवन् ! किस कारण से जीव ससार अल्पकाल वाला करता है?

भगवन्—जयन्ति ! अठारह पाप से निवृत्त होने पर जीव ससार अल्पकाल वाला करता है।

जयन्ति–भगवन् ! जीव किस कारण से ससार मे बार-बार परिभ्रमण करता है?

भगवन्–जयन्ति ! अठारह पापो के सेवन से जीव बारम्बार ससार मे परिभ्रमण करता है।

जयन्ति–भगवन् ! जीव किस कारण ससार-सागर से तिरता है?

भगवन्–जयन्ति ! अठारह पापो की निवृत्ति से जीव ससार-सागर से तिरता है।

जयन्ति–भगवन् ! जीवो का भवसिद्धिकत्व स्वाभाविक है या पारिणामिक?

भगवन–जयन्ति ! वह स्वाभाविक है, अर्थात् जीव अपने अनादिकालीन स्वभाव से ही भवसिद्धिक–मोक्ष जाने की योग्यता वाले होते है।

जयन्ति–भगवन् ! क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष मे जायेगे?

भगवन–हॉ, जयन्ति ! सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष मे जायेगे।

जयन्ति–भगवन् ! सभी भव्य जीव मोक्ष मे जायेगे, तो क्या यह लोक भवसिद्धिक जीवो से रहित हो जायेगा? क्योकि जब सभी भव्य मोक्ष मे जायेगे तो एक दिन यहॉ ऐसा आयेगा कि इस ससार मे एक भी भव्य जीव नहीं रहेगा।

भगवन्–नहीं जयन्ति, ऐसा नहीं होगा।

जयन्ति–भगवन् ! सभी भव्य जीव मोक्ष मे भी जायेगे और यह लोक भव्य जीवो से रहित भी नहीं होगा, ऐसा कैसे सम्भव है?

भगवन्–जैसे आकाश की श्रेणि अनादि-अनन्त है, उसमे से एक-एक परमाणु प्रतिदिन निकाले और अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालपर्यन्त निकालते रहे तो भी आकाश की श्रेणि खाली नहीं होगी। इसी प्रकार हे जयन्ति ! सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष चले जायेगे तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवो से रहित नहीं होगा।

जयन्ति–भगवन् ! जीवो का सुप्त रहना अच्छा है, या जागृत रहना?

भगवन्–जयन्ति ! कुछ जीवो की सुषुप्ति अच्छी हे, कुछ जीवो की जागृति अच्छी है।

जयन्ति–भगवन् ! आप किस कारण फरमाते है कि कुछ जीवो की सुषुप्ति श्रेष्ठ हे ओर कुछ का जागरण श्रेष्ठ हे?

भगवन्–जयन्ति ! जो जीव अधार्मिक, धर्मानुसार नही चलने वाले, अधर्मिष्ठ (श्रुत रूप धर्म जिन्हे इष्ट नहीं) और अधर्म मे रँगे हुए, प्रसन्नतायुक्त धर्म नहीं करने वाले, अधर्म से जीविका चलाने वाले हैं, उनकी सुषुप्ति श्रेष्ठ हे, क्योकि वे जागृत रहते हुए अन्य जीवो को कष्ट पहुँचाते हे।

इसके विपरीत जो जीव धार्मिक, धर्मानुसारी, धर्मप्रिय, धर्म का कथन करने

वाले, धर्मावलोकी, धर्मानुरजित, धर्माचरणी और धर्मजीविका चलाते है, उन जीवो का जागृत रहना अच्छा है, क्योकि ये जागृत रहकर आचार्य से लेकर साधार्मिकपर्यन्त सभी की वैयावृत्य मे स्वय को नियोजित करने से निर्जरा रूप परम धर्म लाभ को प्राप्त करते है।

जयन्ति–भगवन् ! जीवो की सबलता अच्छी है या दुर्बलता?

भगवन्–जयन्ति ! कई जीवो की सबलता अच्छी है, कई जीवो की दुर्बलता।

जयन्ति–भगवन् ! ऐसा किस कारण कहते हैं?

भगवन्–जयन्ति ! जो जीव अधार्मिक है यावत् अधर्म से आजीविका चलाते है, उनकी दुर्बलता अच्छी है क्योकि वे दुर्बल होने से किसी प्राण[क], भूत[ख], जीव[ग] और सत्त्व[घ] आदि को दु खादि नहीं पहुँचा सकते और जो जीव धार्मिक है, उनकी सबलता अच्छी है, क्योकि वे सबल रहते हुए दूसरो की सहायता कर सकते हैं, उन्हे साता पहुँचा सकते है।

जयन्ति–भगवन् ! जीवो का दक्षत्व अच्छा है या आलसीपन?

भगवन्–जयन्ति ! कुछ जीवो का दक्षत्व अच्छा है, कुछ का आलसीपन।

जयन्ति–भगवन् ! ऐसा आप किस कारण फरमाते है?

भगवन्–जयन्ति ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म से जीविका चलाते है, उनका आलसीपन अच्छा है क्योकि वे आलसी होगे तो जीव मात्र को परिताप पैदा करने मे प्रवृत्त नहीं होगे और धार्मिक जीवो का दक्षत्व श्रेष्ठ है क्योकि वे जागृत रहेगे तो आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान[घ], शैक्ष[ङ], कुल, गण, सघ और साधार्मिक–इन दस की वैयावृत्य करेगे, जिससे निर्जरा रूप परमलाभ को प्राप्त करेगे।

(क) प्राण–बेन्द्रिय आदि

(ख) भूत–वनस्पति

(ग) जीव–पचेन्द्रिय

(घ) सत्व–एकेन्द्रिय (पृथ्वी, अप, तजस, वायु)

(ड) ग्लान–रोगी

(च) शैक्ष–नवदीक्षित

जयन्ति–अहो भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के वशीभूत हुआ जीव क्या बॉधता है? क्या करता है? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है?

भगवन्–हे जयन्ति ! श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय–इन पॉच इन्दियो के वशीभूत हुआ जीव आयुकर्म को छोडकर शेष सात कर्म-प्रकृतियो को, जो शिथिल बधन मे बॅधी है, उनको गाढ-बधन मे बॉधता हे। अल्पकालीन कर्मस्थिति को दीर्घकालीन करता है। अल्प कर्मरस को तीव्र रस मे परिणत करता है। कर्म-प्रकृतियो के अल्प-प्रदेशो को बहु-प्रदेशी करता है। आयुकर्म कदाचित् बॉधता है, कदाचित् नहीं बॉधता। असातावेदनीय बारम्बार बॉधता है। अनादि-अनन्त ससार-अरण्य मे अनवरत परिभ्रमण करता है। इस कारण वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त नहीं होता और न ही समस्त दु ख-परम्परा का अत कर सकता हे।

जयन्ति–भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय–इन एक से लेकर पॉच इन्द्रियो को वश मे करने वाला जीव क्या बॉधता है? क्या करता है? किसका चय करता है? किसका उपचय करता है?

भगवन्–जयन्ति ! श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय को वश मे करने वाला जीव आयुष्य कर्म के अतिरिक्त गाढ-बधन मे बद्ध सात कर्म-प्रकृतियो को शिथिल बधनबद्ध कर देता है। कर्मो की दीर्घ स्थिति को घटाकर ह्रस्व स्थिति कर देता है। तीव्र रस वाली कर्म-प्रकृतियो को मद-रस वाली कर देता है ओर बहुत प्रदेशवाली कर्म-प्रकृतियो को अल्प प्रदेश वाली कर देता है। वह असातावेदनीय कर्म का बार-बार उपचय* नहीं करता। इस कारण वह अनादि-अनन्त-चतुर्गति रूप ससार-कातार को पार कर सिद्ध बन जाता है, दु ख-परम्परा का अत कर देता हे।

जयन्ति श्रमणोपासिका प्रभु से अपनी जिज्ञासाओ का समाधान प्राप्त कर अत्यन्त हर्षित हुई और उसके मन मे विरक्तिपरक भावो का सचार हुआ। उसने प्रभु से निवेदन किया–भते ! मैं आपकी अमृतोपम वाणी से सराबोर होकर श्रीचरणो मे प्रव्रजित होना चाहती हूॅ।

भगवान्–हे देवानुप्रिये ! तुम्हे जैसा सुख हो वेसा करो, लेकिन धर्म-कार्य मे विलम्ब न करो।[5]

तब ईशानकोण मे जाकर जयन्ति श्रमणोपासिका ने वस्त्रालकार उतारे एव

(क) उपचय – ग्रहण करके जमाना

पचमुष्टि लोच करके प्रभु के चरणो मे प्रव्रजित हुई। आर्या चन्दनाजी के सान्निध्य को स्वीकार कर ग्यारह अगो का अध्ययन करने लगी।*

जयन्ति श्रमणोपासिका की दीक्षा के पश्चात् भगवान् ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वत्स-भूमि से उत्तरकोसल[iii] की तरफ पधारे। वहाँ अनेक स्थानो पर विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी पधारे और वहाँ के कोष्ठक चैत्य मे विचरने लगे।[6]

कोष्ठक चैत्य मे विराजकर प्रभु ने धर्मोपदेश की पावन गगा प्रवाहित की, जिसे श्रवणकर अनेक गृहस्थो ने सयम व्रत एव श्रावक व्रत ग्रहण किये। अणगार सुमनोभद्र एव सुप्रतिष्ठित की दीक्षाएँ भी यहाँ सम्पन्न[7] हुई।**

कोसल प्रदेश से विहरण करते हुए भगवान् विदेह-भूमि पधारे और वहाँ के वाणिज्यग्राम नगर मे ईशान कोण मे स्थित दूतिपलाश चैत्य मे तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगे।[8]

आनन्द का आगार धर्म :-

उस समय वाणिज्यग्राम मे जिन-धर्म पर श्रद्धा-समन्वित जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उसी वाणिज्यग्राम मे आनन्द नामक धनाढ्य गाथापति (सम्पन्न गृहस्थ) रहता था। वह अत्यन्त प्रभावशाली और लोगो द्वारा अपरिभूत (अतिरस्कृत) रहता था।

वह आनन्द गाथापति बारह करोड स्वर्ण मुद्राओ का स्वामी था। उसकी चार करोड स्वर्ण मुद्राएँ[iv] खजाने मे थी, चार करोड स्वर्ण मुद्राएँ व्यापार मे लगी थी, चार करोड [v]स्वर्ण मुद्राएँ[v] धन्य, धान्य, द्विपद[क], चतुष्पद[ख] आदि साधन-सामग्री मे एव गृहकार्यो मे नियोजित[ग] थी।

उसके चार गोकुल[vi] थे। एक-एक गोकुल मे दस-दस हजार गाये थी। इस प्रकार वह चालीस हजार गायो का एव अन्य भैंस, भेड, बकरी आदि पशुओ का पालक था।

उस आनन्द गाथापति का अत्यन्त वर्चस्व था। प्रज्ञा का धनी होने से अनेक राजा (माडलिक राजा), ईश्वर (ऐश्वर्यशाली पुरुष), तलवर (राज- सम्मानित

---

*11 अगो का अध्ययन कर विविध तपश्चरण कर इसी भव मे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था को श्रीजयन्ति साध्वी ने प्राप्त किया।

** सुमनोभद्र ने बहुत वर्षो तक श्रमण पर्याय का पालन कर राजगृह के विपुलाचल पर अनशनपूर्वक मुक्ति प्राप्त की। सुप्रतिष्ठित मुनि ने भी 27 वर्ष पर्यन्त सयम पालनकर विपुलगिरि पर सिद्धि प्राप्त की।

(क) द्विपद- दो पैर वाले दासादि (ख) चतुष्पद- चार पैर वाले गाय भैस आदि
(ग) नियोजित- लगी हुई

विशिष्ट नागरिक), माडबिक (जागीरदार), कौटुम्बिक (बडे परिवारो के मुखिया), इभ्य (वैभवशाली), श्रेष्ठिन्-सेठ, सेनापति, सार्थवाह (अनेक छोटे व्यापारियो को लेकर देशान्तर यात्रा करने वाले समर्थ व्यापारी) को वह अनेक कार्यो मे, कारणो मे, मत्रणाओ मे, पारिवारिक समस्याओ मे, गोपनीय बातो मे, एकात विचारणीय विषयो मे तथा परस्पर पूछने योग्य विषयो मे सलाह देता रहता था। वह अपने सम्पूर्ण परिवार का मेढीभूत[vii] मुखिया था। उसकी कार्यक्षमता विशिष्ट थी, इसलिए वह सभी का आधारभूत और मार्गदर्शक था। प्रामाणिक व्यक्तित्व वाला वह सब कार्यों को आगे बढाने वाला था।

उसकी शिवानन्दा नामक पत्नी प्रतिपूर्ण इन्द्रियो वाली उत्तम [viii]लक्षण-व्यजन-गुणसम्पन्न सर्वांग सुन्दरी थी। वह सौम्य, कमनीय और रूप-लावण्य की प्रतिमूर्ति थी। आनन्द गाथापति को इष्ट लगने वाली वह अपने पति के प्रति अत्यन्त अनुरागशील[ix] थी। वह आनन्द गाथापति के प्रतिकूल होने पर भी सदैव उनके अनुकूल[x] रहती थी। भर्ता की इच्छानुसार शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गधमूलक-पॉच प्रकार के सासारिक भोगो को भोगती हुई रहती थी।

वाणिज्यग्राम के ईशानकोण मे कोल्लाक नामक सन्निवेश था। वहॉ आमोद-प्रमोद के साधनो की प्रचुरता होने से वहॉ के नागरिक एव अन्य आगन्तुक व्यक्ति प्रसन्न रहते थे। घनी आबादी वाले उस कोल्लाक सन्निवेश मे अनेक खेत थे, जिनमे ईख, जौ आदि धान की फसले लहलहाती थी। गाय-भैसादि की प्रचुरता के साथ शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने, वहॉ के चैत्य[क], दर्शको का मन मुग्ध करने वाले थे। चुँगी आदि के कर-रहित वहॉ रिश्वतखोरो, जेबकतरो और चोरो का अभाव होने से सदैव शाति का माहौल रहता था। वहॉ साधुओ को भिक्षा सुखपूर्वक मिलती थी, इसलिए लोग वहॉ निवास करने मे स्वय को सुखी मानते थे। अनेक प्रकार के नृत्य, नाटक, बाजीगर आदि खेल-तमाशे दिखाने वाले वहॉ आजीविका कमाते थे। जगह-जगह बने हुए उद्यान, बावडियॉ आदि से सुशोभित वह नन्दन वन समान रमणीय लगता था।

चहुँओर कगूरेमय तोरणो और द्वारो से परिमण्डित परकोटे से घिरे हुए उसके कपाट अत्यन्त सुदृढ थे, जिनके बद होने पर शत्रु का प्रवेश असम्भव था। वहॉ के बाजार मे अनेक प्रकार की दुकाने थी जिनमे विविध प्रकार की सामग्रियॉ उपलब्ध होती थीं। राजा की सवारी अकसर निकलने के कारण राजमार्गो पर भीड बनी रहती थी। वहाँ हाथी, घोडे, यान और वाहनो का जमघट-सा रहता था। कमलो से सुशोभित जलाशयो का सुगधित पानी मनमोहक था।

(क) चैत्य- यक्षायतन

उत्तम श्वेतवर्णी भवन निर्निमेष नेत्रो द्वारा प्रेक्षणीय, चित्ताकर्षण, दर्शनीय, अभिरूप (मन मे अपने को रमाने वाले) तथा प्रतिरूप (मन मे समाहित होने वाले) थे।

इस कोल्लाक सन्निवेश मे आनन्द गाथापति के अनेक मित्र, ज्ञातिजन (समान आचार-विचार वाले अपनी जाति के लोग), निजक (माता, पिता, पुत्र, पुत्री आदि), स्वजन (बधु-बाधवादि), सम्बन्धी (श्वसुर, मामा आदि), परिजन (दास-दासी आदि) निवास करते थे।

वे भी बडे समृद्धिशाली और लोगो द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त थे। इस प्रकार वाणिज्यग्राम और कोल्लाक सन्निवेश मे धनाढ्यो की बस्तियाँ थीं।

जब भगवान् महावीर इस वाणिज्यग्राम मे पधारे तो राजा जितशत्रु स्वय उनके दर्शन, वदन एव प्रवचन श्रवण हेतु घर से निकला, दूतिपलाश चैत्य मे पहुँचकर प्रभु की पर्युपासना करने लगा।

जब आनन्द गाथापित को भगवान् के आगमन की जानकारी मिली तब वह भी भगवान् के दर्शन, वदन एव पर्युपासना हेतु जाने की तैयारी करने लगा। उसने स्नानादि कर मगल परिधान धारण किया। वस्त्राभूषणो से परिमण्डित, कोरट के पुष्पो की माला युक्त छत्र धारण कर, अनेक पुरुषो से घिरा हुआ पैदल ही दूतिपलाश चैत्य मे पहुँचा। भगवान् को वदन-नमस्कार कर उनकी पर्युपासना करने लगा।

भगवान् महावीर ने उस समय आनन्द गाथापति एव विशाल परिषद को अर्धमागधी भाषा[४१] मे धर्मोपदेश दिया–

लोक का अस्तित्व है और अलोक का भी अस्तित्व है। जीव, अजीव, बध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आश्रव, सवर, वेदना, निर्जरा, अर्हत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नरक, नैरयिक, तिर्यच, माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्ध भगवान्, सिद्धि आदि ये सब काल्पनिक नहीं हैं, इनका अस्तित्व है। प्राणातिपातादि अठारह पाप-स्थान का यथार्थ ज्ञान करके इनका त्याग करना चाहिए। प्रशस्त दान, शील, तप आदि उत्तम फल देने वाले हैं, जबकि अप्रशस्त पाप-कर्म दु खमय फल देने वाले हैं। जीव पुण्य और पाप से शुभाशुभ कर्म का बध करता है, जो कि निष्फल नहीं होता।

वस्तुत इस लोक मे निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य, सर्वोत्तम, अद्वितीय, सर्वभाषित, अत्यन्त शुद्ध, परिपूर्ण, न्यायसगत, शल्य निवारक, सिद्धावस्था प्राप्त करने का उपाय, मुक्ति-मार्ग, निर्याण-मार्ग, निर्वाण-मार्ग, अवितथ–वास्तविक, अविसधि–विच्छेद रहित, सब दु खो को क्षीण करने वाला हे। इसमे स्थित जीव बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त होकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं। जिन मनुष्यो के एक भव धारण करना अवशेष रहा है, वे देवलोक मे दीर्घायु एव विपुल ऋद्धि के स्वामी होते है। वे देवशय्या मे युवावस्था रूप मे ही उत्पन्न होकर बहुमूल्य वस्त्राभरणो

से अलकृत रहकर वहाँ की ऋद्धि का उपभोग कर मनुष्य भव प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्त करते है।

परिणामो की विषमता से जीव भिन्न-भिन्न आयु का बध करते हैं। जीव अपने कलुषित परिणाम होने से नरकायु का बध करता है। नरकायु बध के चार कारण हैं, यथा– 1 महाआरभ–घोर हिसा के भाव रखना या घोर हिसा करना, 2 महापरिग्रह–पदार्थो के प्रति अत्यधिक मूर्च्छा भाव रखना, 3 पचेन्द्रिय वध–मनुष्य या तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो का घात करना और 4 मास-भक्षण।

चार कारणो से जीव तिर्यंच योग्य आयु का बध करता है–1 माया करना, 2 अलीक वचन–असत्य भाषण करना, 3 अत्कचनता–अपनी धूर्तता को छिपाना, 4 वचनता–प्रतारणा या ठगी करना।

चार कारणो से जीव मनुष्य योग्य आयु का बध करता है–1 प्रकृति भद्रता–भद्रिक–सरल प्रकृति का होना, 2 प्रकृति विनीतता–स्वाभाविक विनय प्रकृति होना, 3 सानुक्रोशता–दयाशील, करुणाशील प्रकृति होना, 4 अमत्सरता–ईर्ष्या का अभाव होना।

चार कारणो से जीव देवगति मे उत्पन्न होता है–1 सराग सयम–सरागी साधु का सयम, 2 सयमासयम–देशविरति श्रावक धर्म पालन, 3 अकाम-निर्जरा–बिना मोक्षाभिलाषा के अथवा विवशतावश कष्ट सहना, 4 बाल-तप–अज्ञानजनित तप करना।

इस प्रकार जीवन अपने ही परिणामो से एव आचरणो से नरकादि गतियों मे जाता है। नरक गति मे जाने वाला भीषण नारकीय यातना को प्राप्त करता है। तिर्यंच योनि मे जाने वाला अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक दु ख को प्राप्त करता है। मनुष्य-जीवन भी अनित्य है। उसमे व्याधि, वृद्धावस्था, मृत्यु और अनेक प्रकार की वेदनाओ सम्बन्धी बहुत कष्ट होते हैं। देवलोक मे दिव्य ऋद्धि एव दिव्य सुख का अनुभव करते हैं, लेकिन वहाँ भी राग-द्वेषजन्य दु ख-परम्परा बनी रहती है।

राग-द्वेष आदि कारणो से जीव बधन को प्राप्त करते हैं और कषाय- विजयी बनकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं। अनासक्त व्यक्ति दु खो का अत करते हैं और पीडा, वेदना एव आकुलतायुक्त चित्त वाले दु ख-सागर को प्राप्त करते हैं। वैराग्य से कर्मदलिक ध्वस्त होते हैं, जबकि रागादि से कर्मो का फल-विपाक पाप-पूर्ण होता है। कर्म-रहित जीव ही मोक्ष मे गमन करता है।

मोक्ष मे गमन धर्म करने से होता है, वह धर्म दो प्रकार का है–1 आगार धर्म और 2 अणगार धर्म।

अणगार धर्म मे सावद्य प्रवृत्तियो का परिपूर्ण त्याग कर, गृहवास त्याग कर,

मुण्डित होकर साधु बनता है। वह प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह एव रात्रि भोजन का सर्वथा त्यागी होता है। इस प्रकार पचमहाव्रत अगीकार कर उनका पालन करने वाले साधु-साध्वी निर्ग्रन्थ धर्म के आराधक होते है।

आगार धर्म बारह प्रकार का है—पॉच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। पॉच अणुव्रत—1 स्थूल (मोटे रूप में) प्राणातिपात का त्याग, 2 स्थूल मृषावाद विरमण, 3 स्थूल अदत्तादान से निवृत्ति, 4 स्वदार सतोष—परिणीता पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियो के साथ रतिक्रीडा का परित्याग, 5 अपरिग्रह—परिग्रह की सीमा करना।

तीन गुणव्रत—1 अनर्थदण्ड विरमण—आत्मगुण घातक निरर्थक प्रवृत्तियो का त्याग करना, 2 दिग्व्रत—छहो दिशाओ मे जाने की मर्यादा करना, 3 उपभोग-परिभोग-विरमण। उपभोग—जिन्हे एक बार भोगा जा सके ऐसे पदार्थ, जैसे भोजनादि, परिभोग—जिन्हे अनेक बार भोगा जा सके ऐसे पदार्थ, जैसे वस्त्रादि, इनकी सीमा करना। चार शिक्षाव्रत—1 सामायिक—समत्व भाव की साधना के लिए 48 मिनिट तक सावद्य प्रवृत्ति का त्याग करना, 2 देशावकाशिक— दिशाओ की मर्यादा करना 3 पौषधोपवासवृत्त- धर्म एव अध्यात्म को पुष्ट करने वाले विशेष नियम धारण करके उपवास सहित पौषध करना। 4 अतिथिसविभाग—साधक या साधार्मिक को 14 प्रकार की वस्तुऍ आदरपूर्वक देना।

अन्तिम समय मे सलेखणा सथारापूर्वक देह-त्याग का लक्ष्य रखना। यह गृहस्थ धर्म के बारह प्रकार हैं, जिनकी आराधना कर अनेक श्रमणोपासक, श्रमणोपासिकाऍ आज्ञा के आराधक होते है।

इस प्रकार भगवान् ने अपनी दिव्य देशना प्रवाहित की जिसे श्रवण कर कई मनुष्य अत्यन्त हर्षित एव वैराग्यपरक भावो से ओत-प्रोत हुए। उन्होने उसी समय गृहत्याग कर श्रमण धर्म अगीकार कर लिया। कई मनुष्यो ने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये।[10] शेष परिषद्[xii] ने भी भगवान् को वदन-नमस्कार करके भगवान् के यशोगान करते हुए कहा —

आपका हृदयस्पर्शी प्रवचन अन्तस्थल को छूने वाला है, आपने जो धर्मोपदेश दिया वह अनुत्तर (श्रेष्ठ) है। आपने कषाय त्याग कर, विवेक धारण कर, आगार और अणगार[क] धर्म ग्रहण करने हेतु जो ज्ञान-गगा प्रवाहित की हे, वह अन्य कोई श्रमण, ब्राह्मण प्रवाहित नहीं कर सकता। इस प्रकार भगवान् की यश गाथा गाकर परिषद् और राजा पुन लौट गये।

तब आनन्द श्रावक, जिसका हृदय हर्षातिरेक से प्रभु के प्रति समर्पित बन रहा था, उसने भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके

(क) अणगार- साधु

वन्दन-नमस्कार किया और कहा–भते ! मैं अनेक ऐश्वर्यशाली राजा, महाराजा आदि की तरह गृहत्यागी बनकर, मुडित होकर अणगार के रूप मे प्रव्रजित होने मे असमर्थ हूँ, अतएव मैं आपके सान्निध्य मे पॉच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहस्थ धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ।

भगवान्–देवानुप्रिय ! तुम्हे जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य मे तनिक भी विलम्ब मत करो।

भगवान् के फरमाये जाने पर आनन्द प्रभु के मुखारविन्द से श्रावकव्रत ग्रहण करता है –

1 स्थूल प्राणातिपात विरमण–भगवन् मैं जीवनपर्यन्त दो करण–करना, कराना तथा तीन योग–मन, वचन एव काया से स्थूल हिसा का परित्याग करता हूँ। अर्थात् मै मन, वचन, काया से स्थूल हिसा न करूँगा न कराऊँगा।

2. स्थूल मृषावाद विरमण–मैं जीवनपर्यन्त मन, वचन एवं काया से स्थूल असत्य का न प्रयोग करूँगा, न कराऊँगा।

3 स्थूल अदत्ता दान विरमण–मैं जीवनपर्यन्त मन, वचन एव काया से स्थूल अदत्त दान का त्याग करता हूँ।

4 स्वदार सतोष–मै एक अपनी शिवानन्दा भार्या के अतिरिक्त अवशेष सर्वमैथुन-विधि का परित्याग करता हूँ।

5 इच्छा परिमाण–इच्छा परिमाण व्रत मे आनन्द श्रावक ने स्वर्ण-रजत का इस प्रकार परिमाण किया –

मेरे कोष मे रखी चार करोड स्वर्ण मुद्राओ, व्यापार मे प्रयुक्त चार करोड स्वर्ण मुद्राओ एव घर के उपकरणो मे प्रयुक्त चार करोड स्वर्ण मुद्राओ[xiii] के अतिरिक्त मैं समस्त स्वर्ण मुद्राओ का परित्याग करता हूँ।

तदनन्तर आनन्द गाथापति ने चतुष्पद पशु सम्पत्ति का परिमाण किया।"

दस-दस हजार गायो के चार गोकुलो के अतिरिक्त मैं सभी चौपाया पशुओ के परिग्रह का त्याग करता हूँ।

तब उसने क्षेत्र वास्तु[क]-विधि का परिमाण किया कि सौ निर्वतन (भूमि का नाप-विशेष) के एक हल[12] के हिसाब से पॉच सौ हल[xiv] के अतिरिक्त मैं समस्त क्षेत्र वास्तु-विधि का परित्याग करता हूँ।

तत्पश्चात् शकट-विधि (गाडियों) के परिग्रह का परिमाण किया।

पॉच सो गाडियॉ–बाहर यात्रा मे, व्यापार आदि मे प्रयुक्त तथा पॉच सौ

(क) वास्तु–मकान

गाडियॉ माल आदि ढोने मे प्रयुक्त है, उनके अतिरिक्त मै समस्त गाडियो के परिग्रह का त्याग करता हूँ।

तदनन्तर उसने वाहन-विधि जहाजो[13] का परिमाण किया।

चार वाहन दिग्यात्रा के लिए, चार वाहन (जहाज) माल ढोने के लिए उनके अतिरिक्त सभी वाहनो का त्याग किया।

उपभोग-परिभोग[xv]-परिमाण करते हुए आनन्दजी ने कहा –

1 उल्लणिया[xvi]-विधि–सुगधित लाल, एक प्रकार के तौलिये, के अतिरिक्त सभी तौलियो का त्याग करता हूँ।
2 दतण-विधि–हरी मुलहठी के अतिरिक्त सभी प्रकार के दतौन का त्याग करता हूँ।
3 फल-विधि[xvii]–दूधिया ऑवले के अतिरिक्त अवशेष फल-विधि का परित्याग करता हूँ।
4 अभ्भगन-विधि–शतपाक[xviii] एव सहस्त्रपाक[xix] तेलो के अतिरिक्त सभी अभ्यगन (मालिश के तेलों) का परित्याग करता हूँ।
5 उबटन-विधि–मैं एकमात्र सुगधित गधाटक (गेहूँ के आटे के साथ कतिपय सौगन्धिक पदार्थो के उबटनों) का परित्याग करता हूँ।
6 स्नान-विधि–पानी के आठ ओष्ट्रिक, जिनका मुँह ऊँट की तरह सँकडा, गर्दन लम्बी और आकार बडा हो, ऐसे घडे के अतिरिक्त स्नानार्थ जल का परित्याग करता हूँ।
7 वस्त्र-विधि–दो सूती वस्त्रो के सिवाय सबका त्याग करता हूँ।
8 विलेपन-विधि–अगरु, कुमकुम और चन्दन के अतिरिक्त सभी विलेपन द्रव्यो का परित्याग करता हूँ।
9 पुष्प-विधि–श्वेत कमल और मालती कुसुम की माला के अतिरिक्त सभी प्रकार के पुष्पो का परित्याग करता हूँ।
10 आभरण-विधि–सोने के कुण्डल और अँगूठी के अतिरिक्त सभी प्रकार के आभरणो का त्याग करता हूँ।
11 धूप-विधि–अगर, लोबानादि धूप के अतिरिक्त सभी प्रकार के धूप का परित्याग करता हूँ।
12 पेज्ज-विधि–मूँग के रस अथवा घी मे तले हुए चावलो से बने एक विशेष प्रकार के पेय के अतिरिक्त सभी पेय पदार्थों का परित्याग करता हूँ।
13 भक्ष्य-विधि–घृतपूर्ण घेवर और खाजे के अतिरिक्त सभी पकवानो का

परित्याग करता हूँ।

14 ओदन-विधि–कलम सालि (वासमती) चावलो के अतिरिक्त सभी प्रकार के चावलो का परित्याग करता हूँ।

15 सूप-विधि–मटर, मूँग और उडद की दाल के अतिरिक्त सभी दालो का परित्याग करता हूँ।

16 घृत-विधि–शरद ऋतु के गोघृत के अतिरिक्त समस्त गोघृत[xx] का परित्याग करता हूँ।

17 शाक-विधि–बथुआ, लौकी, सुआपालक और भिण्डी इन चार के अतिरिक्त समस्त सब्जियो का त्याग करता हूँ।

18 माधुरक-विधि–पालग माधुरक–शल्ल की वृक्ष के गोद से बनाये हुए मधुर पेय के अतिरिक्त अन्य सभी मधुर पेयो का परित्याग करता हूँ।

19 व्यजन-विधि–कॉजी बडे, खटाई युक्त मूँग की दाल के पकौडे के अतिरिक्त सब प्रकार के चटपटे पदार्थो का परित्याग करता हूँ।

20 पाणिय-विधि–आकाश से गिरे वर्षा के पानी के अतिरिक्त सब प्रकार के पानी का परित्याग करता हूँ।

21 मुखवास-विधि–पॉच सुगधित वस्तुओ सहित मुख को सुगधित करने वाले सभी पदार्थो का परित्याग करता हूँ। यथा- इलाचयी, लोग, कर्पूर, ककोल, जायफल (शीतल चीनी)।[xxi]

अनर्थदण्ड–विरमण :

तदनन्तर आनन्दजी ने चार प्रकार के अनर्थदण्ड–अपध्यानाचरित, प्रमादाचरित, हिस्रप्रदान और पापकर्मोपदेश का प्रत्याख्यान किया।[xxii]

तदनन्तर भगवान् महावीर ने श्रमणोपासक आनन्द से कहा–आनन्द! जिसने जीवादि नौ पदार्थो को जान लिया, जो स्वय पुरुषार्थी है, जिसे देव, दानव, मानव भी अपने धर्म से विचलित नहीं कर सकते, उसको सम्यक्त्व के पाँच प्रधान अतिचारो को जानना चाहिए, लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए।

1 शका–जिनेश्वर वचनो मे सदेह रखना शका है। इस शका से श्रद्धा डोलायमान हो जाती है। यद्यपि जिज्ञासा बुद्धि से शका करना अतिचार नहीं है, तथापि सदैव यही चितन रहना चाहिए कि वही सत्य और नि शक है, जो भगवान् ने फरमाया है।

2 काक्षा–बाहरी आडम्बर या दूसरे प्रलोभनो से प्रभावित होकर अन्य मत की ओर झुकना काक्षा है। यह सम्यक्त्व को दूषित करने वाली प्रकृति है। इससे सदैव दूर रहना चाहिए।

3 विचिकित्सा–धर्म के फल मे सदेह करना विचिकित्सा है कि मैने इतना धर्म किया, अभी तक मुझे कोई फल नहीं मिला, आगे भी मिलेगा या नहीं? इस प्रकार की प्रवृत्ति से अनुत्साह बढता है, कार्य सिद्ध नही होता। अतएव इसका परित्याग करना चाहिए।

4 पर-पाषड प्रशसा–पाषड शब्द आज ढोग अर्थ मे प्रचलित है, जबकि पूर्वकाल मे यह अन्यमतियो के लिए प्रयुक्त होता था। अन्यमत की प्रशसा से तात्पर्य है कि अन्यमतियो के शौचमूलक आदि हिसात्मक धर्म का सम्मान करना, इससे हमारी आत्मा का पतन होने की सम्भावना रहती है। इसलिए इसको सम्यक्त्व का अतिचार माना है।

5 पर-पाषड सस्तव–हिसात्मक धर्म मानने वाले आदि मिथ्यादृष्टियो के साथ परिचय रहने से मोक्षमार्ग से विचलन की स्थिति पैदा हो जायेगी। अतएव पर-पाषड सस्तव भी अतिचार है।

इसके पश्चात् भगवान् ने फरमाया–आनन्द ! श्रमणोपासक को स्थूल प्राणतिपात-विरमण व्रत के प्रमुख पॉच अतिचारो को जानना चाहिए[xxiii], लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए। यथा –

1 बध–पशु आदि को निर्दयतापूर्वक बॉधना। शास्त्र मे दो तरह के बध का निरूपण है। 1 अर्थबध, 2 अनर्थबध। प्रयोजनवश रोगी आदि को चिकित्सा के लिए अथवा सुरक्षा के लिए बॉधना अर्थबध है और बिना किसी प्रयोजन बॉधना अनर्थबध है। वह आठवे व्रत अनर्थदड मे निहित है। यहॉ किसी पशु-दासादि को प्रयोजनवश बॉधना बध नहीं, लेकिन क्रूरता, कलुषितता आदि से बॉधना बध नामक अतिचार है।

टीकाकारो ने अर्थबध के दो भेद किये हैं –

1 सापेक्ष, 2 निरपेक्ष। जिस बध से छूटा जा सके वह सापेक्ष है, जैसे किसी बाडे मे आग लग गयी। वहॉ साधारणतया बॅधे पशु छूट जायेगे, वह अतिचार नहीं। लेकिन पशु को ऐसे बधन से बॉधा कि वह छूटेगा ही नहीं, मरण को प्राप्त हो जायेगा, वह अतिचार है।

2. वध–कलुषित भाव से ऐसा निर्दयतापूर्वक किसी को पीटना कि उसके अग-उपाग खडित हो जाये, वह वध नामक अतिचार है।

3 छविच्छेद–छविच्छेद का तात्पर्य शोभारहित करना है। क्रोधावेशादि मे आकर किसी की चमडी आदि अगो को काटना छविच्छेद नामक अतिचार है। यद्यपि करुणा की भावना से रोगी की चीरफाड करना छविच्छेद अतिचार नहीं है, लेकिन प्रयोग के लिए (सीखने के लिए)

निरपराधी प्राणी को चीर डालना छविच्छेद नामक अतिचार है।

4 अतिभार–पशु-दास-दासी आदि पर उनकी शक्ति से अधिक भार डालना अतिभार है। इससे मनुष्य एव पशुओ के शरीर और मन को क्षति पहुँचती है और मन की निर्दयता ही प्रकट होती है। किसी अक्षम व्यक्ति पर योग्यता से अधिक भार डालना भी अतिभार-रोपण अतिचार है। जैसे नाबालिग बालक-बालिकाओ पर विवाह की जिम्मेदारी डालना, वृद्ध एव अनमेल विवाह करना, प्रजा पर अधिक कर या चुंगी का आरोपण करना, अयोग्य व्यक्तियो पर सघ, समाज या शासन सचालन की जिम्मेदारी डालना आदि-आदि सभी अतिभार आरोपण के अन्तर्गत हैं।

5 भक्त-पान व्यवच्छेद–अपने आश्रित दास-पशु आदि के खान-पान मे बाधा डालना, उनको समय पर भोजन नहीं देना। कर्मचारियो आदि को उचित समय पर उचित वेतन नहीं देना। गर्भवती स्त्री द्वारा उपवास करके गर्भस्थ जीव को भूखा रखना आदि इसी अतिचार में शामिल हैं।[15]

स्थूल मृषावाद के पाँच अतिचारो को जानना चाहिए लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए। यथा –

1 सहसा अभ्याख्यान–यकायक, बिना सोचे-समझे किसी पर झूठा आरोप लगाना, सहसा अभ्याख्यान है। तीव्र क्लेशयुक्त झूठ बोलने से तो अनाचार भी बन जाता है।

2. रहस्याभ्याख्यान–किसी की गुप्त बात को प्रकट करना या एकान्त मे बैठे व्यक्तियो को बात करते हुए देखकर उन पर झूठा दोषारोपण करना रहस्याभ्याख्यान अतिचार है।

3 स्वदारमत्र-भेद–अपनी स्त्री की गुप्त बात या मर्मकारी घटना प्रकट करना स्वदारमत्र-भेद नामक अतिचार है, क्योकि ऐसा करने से लज्जावश स्त्री आत्महत्या तक कर लेती है।

4 मृषोपदेश–दूसरो को झूठा उपदेश देना मृषोपदेश है। यथा–झूठ बोलने, चालाकी करने, तोल-माप मे गडबडी करने, ठगी-बेईमानी करने की प्रेरणा देना, ट्रेनिग देना, प्रोत्साहित करना आदि इसी मे सम्मिलित हैं।

5 कूटलेखकरण–झूठा लेख लिखना, दूसरो को ठगने के लिए झूठे, जाली कागजात तैयार करना। यह अतिचार प्रमादवश या अविवेक से झूठा लेख लिखने से लगता हे। जानबूझकर करने पर तो यह अनाचार की कोटि मे आता है।[16]

तदनन्तर भगवान् ने फरमाया–आनन्द ! अदत्तादान विरमण व्रत के पाँच अतिचारो को जानना चाहिए लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए। यथा –

1 स्तेनाहृत–स्तेन (चोर), आहृत (चुराई गयी) अर्थात् चोर द्वारा चुराई वस्तु, बहुमूल्य वस्तु सस्ते मे खरीदना।

2 तस्कर प्रयोग–अपने व्यवसायिक कार्यो मे चोरो को प्रेरणा देना, उनका उपयोग करना।

3 विरुद्ध राज्यातिक्रम–राज्य-विरुद्ध कार्य करना।

4 कूटतूल कूटमाप–कूडा तोल, कूडा माप करना अर्थात् बिना उपयोग के किसी से अधिक लेना और कम देना। सकल्पपूर्वक, जानबूझकर ऐसा करने से यह अनाचार बन जाता है।

5 तत्प्रतिरूपक व्यवहार–नकली वस्तु को असली और असली वस्तु को नकली बताना तत्प्रतिरूपक व्यवहार है। घी मे चरबी मिलाना आदि भी इसी अतिचार मे सम्मिलित हैं।[17]

तदनन्तर स्वदार सतोष-व्रत के पॉच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं –

1 इत्वरिका परिगृहीता गमन–कुछ दिन या कुछ मास के लिए किराये पर रखी हुई स्त्री से मैथुन सेवन करना। यह अतिचार नियमो का आशिक रूप से खडन करने से लगता है।

2 अपरिगृहीता गमन–गणिका या किराये पर रखी हुई दूसरे की स्त्री से मैथुन सेवन करना। यह अतिचार व्रत के अतिक्रम से लगता है।

3 अनगक्रीडा–रतिक्रीडा हेतु किसी परकीया के कुच-मर्दन, उदरादि का विकारी भावना से दर्शन, मुख-चुम्बन, हास्यादि कौतुहल करना। यह अतिचार पर स्त्री से मैथुन सेवन का त्याग होने से उसके साथ प्रेमालिङ्गन करने से लगता है।

4 पर-विवाह करना–अपनी सतान के अतिरिक्त दूसरो का विवाहादि करवाना।[18]

5 काम भोग की तीव्र अभिलाषा करना।

तदनन्तर इच्छा-परिमाण व्रत के पॉच अतिचार जानने चाहिए, लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए –

1 क्षेत्र-वस्तु-परिमाणातिक्रमण[xxiv]–क्षेत्र (खुली भूमि), वस्तु (मकान)। व्रत ग्रहण करते समय जितनी खुली भूमि एव मकानादि की मर्यादा की, उसका परिमाण बढाने के लिए दूसरे क्षेत्र को, बाड आदि तोडकर, पहले मे मिला देना क्षेत्रप्रमाणातिक्रमण अतिचार है।

2. हिरण्य-सुवर्ण प्रमाणातिक्रमण–जितने सोने-चॉदी का परिमाण किया

उसकी सीमा का अतिक्रमण कर जाना।

3 धन-धान्य प्रमाणातिक्रमण–मणि, मोती आदि धन और चावल, मूँगादि धान्य, इनका जितना परिमाण किया उससे अधिक रखना।

4 द्विपद-चतुष्पद परिमाणातिक्रमण–नौकर, दास[xxv]-दासी आदि द्विपद और गाय, भैंस, घोडा आदि चतुष्पद का जितना परिमाण किया, उससे अधिक रखना।

5 कुप्य प्रमाणातिक्रमण–कुप्य–गृहोपयोगी वस्तुओ का प्रमाण-अतिक्रमण करना। जैसे जितनी थाली, कटोरी रखी है, उनको बिना उपयोग के अधिक रखना, या कारण-विशेष से सख्या पूरी हो जाये तो दो मिलाकर एक कर देना, जैसे थाली ज्यादा हो गयी तो दो को मिलाकर एक बडा थाल बना देना।

तदनन्तर छठे दिशिव्रत के पॉच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण योग्य नहीं हैं। यथा –

1 ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रमण–ऊँची दिशा मे जाने की मर्यादा का अतिक्रमण करना।

2. अधोदिशि प्रमाणातिक्रमण–नीची दिशा मे जाने की मर्यादा का अतिक्रमण करना।

3 तिर्यक्दिशि प्रमाणातिक्रमण–तिरछी दिशा मे जाने की मर्यादा का अतिक्रमण करना।

4 क्षेत्रवृद्धि करना–चार दिशाओ मे सौ योजन रखी, उसको एक मे बढाकर 150 करना, दूसरी मे पचास कर देना।

5 स्मृत्यन्तर्धान–दिशा की मर्यादा को भूल जाने से आगे अधिक जाना।[xxvi]

उपभोग-परिभोग व्रत दो प्रकार का कहा गया है–भोजन की अपेक्षा और कर्म की अपेक्षा।

1 सचित्त आहार–जिस सचित्त आहार का त्याग किया है या मर्यादा की, उसको प्रमादवश या मर्यादापूर्ण हुए बिना खाना।

2. सचित्त पडिवद्ध आहार–जिस सचित्त पदार्थ का त्याग है, उसको सचित्त से सलग्न खाना। जैसे सचित्त आम का त्यागी आम्रफल को गुठली सहित चूसे तो यह अतिचार लगता है।

3 अपक्व औपधि भक्षणता–अग्नि आदि से असस्कारित शालि आदि ओषधियों का दिना उपयोग भक्षण करना।

4 कुष्पक्व औषधि भक्षण—अर्धअपक्व औषधियो का पक्व बुद्धि से भक्षण करना।

5 तुच्छोषधि भक्षण—सार वस्तु कम और फेकने योग्य अधिक हो, ऐसे सीताफल आदि का भक्षण।

जिन व्यवसायो से ज्ञानावरणादि कर्मो का प्रबलता से आदान ग्रहण होता है, वे कर्मादान हैं। कर्मादान मे हिसा की प्रचुरता रहने से भगवान् महावीर ने आनन्दजी से कहा—आनन्द ! पन्द्रह कर्मादान श्रावक को जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं। यथा –

1 इगाल कर्म—कोयला बनाने का धधा। अन्य भी ईट, चूना, बरतन आदि पकाने का धधा। अग्नि का आरम्भ करके करना अगार कर्म अतिचार है।

2. वन कर्म—बडे-बडे जगलो को ठेके से कटवाना एव लकडियॉ बेचने का धधा करना।

3 शकट कर्म—गाडी आदि वाहन बनाकर बेचने का धधा करना।

4 भाटिक कर्म—ऊँट, घोडा, बैलादि पशु किराये पर देकर अति बोझ लादकर कमाना।

5 स्फोटक कर्म—कुदाल, हल आदि से भूमि खोदने का कार्य करना। खाने खोदना, पत्थर फोडना आदि स्फोटक कर्म है।[xxvii]

6 दत वाणिज्य—हाथीदॉत, शख, कोडी, गाय की खाल, बाल और जीवो के अग बेचने का व्यापार कर आजीविका चलाना।

7 लाक्षा वाणिज्य—लाख आदि का व्यापार करना।

8 रस वाणिज्य—मदिरादि मादक रसो का व्यापार करना।

9 विष वाणिज्य—विष, शस्त्रादि प्राणघातक वस्तुओ का व्यापार करना।

10 केश वाणिज्य—केश वाले दास-दासी, अन्य द्विपद, चतुष्पद पशु-पक्षी आदि बेचने का व्यवसाय करना।

11 यत्र पीडन कर्म—यत्रो से तिल, गन्ना आदि पीलने का व्यवसाय करना।

12. निलाछन कर्म—पशुओ को नपुसक बनाने का काम करना।

13 दावाग्निदापनता—वन मे आग लगाने का धधा करना।

14 सरहदतडाग शोषणता–जलाशय, तालाब आदि को सुखाने का धधा करना।

15 असतीजन पोषणता–दुष्ट, व्यभिचारिणी स्त्री का पोषण करके उसके व्यापार से आजीविका चलाना।

तदनन्तर आठवे अनर्थदंड व्रत के पॉच अतिचार श्रावक के जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं –

1 कदर्प–काम-विकार पैदा करने वाले, राग-मोहोद्दीपक हास्यजनक वचन बोलना कदर्प अतिचार है।

2 कौत्कुच्य–विकृत चेष्टाऍ करना।

3 मौखय–निर्लज्ज होकर व्यर्थ की बाते बनाना, बकवास करना और असत्य वचन बोलना मौखर्य है।

4 सयुक्ताधिकरण–ऊखल, मूसल, शस्त्रादि हिसामूलक साधनो को इकट्ठा करना।

5 उपभोग-परिभोगातिरेक–उपभोग, परिभोग सम्बन्धी सामग्री को अनावश्यक एकत्रित करना।

अब सामायिक व्रत के पॉच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं।

1 मन दुष्प्रणिधान–सामायिक लेने के पश्चात् गृह सम्बन्धी शुभाशुभ कार्य का चितन करना।

2. वचन दुष्प्रणिधान–सामायिक मे सावद्य कठोर वचन बोलना।

3 काय दुष्प्रणिधान–बिना प्रमार्जन किये बैठना आदि।

4 सामायिक स्मृत अकरणता–सामायिक का समय विस्मृत हो जाना कि मैंने सामायिक कब ली अथवा सामायिक ली या नहीं ली।

5 सामायिक अनवस्थित करणता–सामायिक का समय पूर्ण हुए विना सामायिक पार लेना अथवा बिना इच्छा सामायिक करना।

इन पॉच अतिचारो मे से पहले के तीन अतिचार बिना उपयोग के कारण लगते हैं और अन्तिम दो प्रमाद की बहुलता से लगते हैं।

इसके अनन्तर दसवॉं देशावकाशिक व्रत है, जिसके पॉंच अतिचार जानने योग्य है, न कि आचरण योग्य हैं। यथा –

1 आनयन प्रयोग–जितनी भूमि की मर्यादा की है, उससे अधिक भूमि से सचित्तादि द्रव्य किसी से मॅगवाना या सदेशा भेजकर मॅगवाना।

2 प्रेष्य प्रयोग–मर्यादित क्षेत्र के बाहर के कार्यो को सम्पादित करने हेतु भेजकर आदेश करना कि वहॉ जाकर मेरी गाय ले आना या अमुक काम कर देना।

3 शब्दानुपात–मर्यादित क्षेत्र का कार्य ध्यान मे आने पर पास मे रहने वाले को खॉसी आदि करके सूचित करना।

4 रूपानुपात–मर्यादित क्षेत्र के बाहर का कार्य करने के लिए अपना रूप बनाकर अगुली आदि से सकेत करना।

5 बा.हि पुद्गल प्रक्षेप–मर्यादित क्षेत्र के बाहर का काम करने के लिए ककर आदि फेककर दूसरो को सूचित करना।

तदनन्तर श्रमणोपासक के पौषध व्रत के पॉच अतिचारो को जानना चाहिए, लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए।

1 अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित शय्या-सस्तारक–शय्या (शयन का स्थान) और सस्तारक (बिछौना) बिना देखे या अच्छी तरह से न देखे गये स्थान और सस्तारक का पौषध मे उपयोग करना।

2 अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित शय्या-सस्तारक–बिना प्रमार्जन किये या अच्छी तरह से प्रमार्जन नहीं किये गये शय्या-सस्तारक का पौषध मे उपयोग करना।

3 अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित उच्चार-प्रस्त्रवण भूमि–बिना देखी या अच्छी तरह से न देखी उच्चार (मल प्रस्त्रवण मूत्र विसर्जन) भूमि का उपयोग करना।

4 अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित उच्चार प्रस्त्रवण भूमि–बिना पूजे या अच्छी तरह से न पूजी गयी उच्चार प्रस्त्रवण भूमि का उपयोग करना।

5 पौषधव्रत का सम्यक् अननुपालन–उपवास युक्त पौषध का सम्यक् रूप से पालन नहीं करना।[xxviii]

तदनन्तर अतिथि-सविभाग व्रत के पॉच अतिचार श्रमणोपासक के जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण करने योग्य नहीं हैं। यथा –

1 सचित्त निक्षेपण–साधु को दान न देने की इच्छा से निर्दोष आहार को सचित्त आहार मे रखना।

2. सचित्तापिधान–साधु को आहार न देने की इच्छा से आहारादि को सचित्त फलादि से ढॅकना।

3 कालातिक्रम–साधुओ की भिक्षा का समय व्यतीत होने पर भिक्षा देने

की भावना रखना। ऊपर से दातार बनने का अभिनय करना किन्तु भीतर दान देने की भावना नहीं होना।

4 परव्यपदेश—दान न देने की भावना से स्वय की वस्तु दूसरो की बतलाना।

5 मत्सरिता—दूसरो ने इस प्रकार का दान दिया तो क्या मैं कजूस हूँ, जो इस प्रकार का दान नहीं दे सकता। इस प्रकार ईर्ष्याभाव से दान देना।

ये पॉच-पॉच अतिचार प्रत्येक व्रत के बतलाये हैं, य सब उपलक्षण भाव मात्र हैं। अतएव अतिचार के अनेक भेद सभव हैं। ये अतिचार मात्र प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से होते हैं क्योकि सर्वविरति के लिए एकमात्र सज्वलन कषाय ही देशघाती है। शेष अनन्तानुबधी आदि बारह कषाय तो सर्वघाती हैं, उनके उदय से मूल व्रत भग हो जाता है।

तदनन्तर अपश्चिम मारणान्तिक सलेखणा झूषणा के पॉच अतिचारो को जानना चाहिए लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए।

अन्तिम समय मे मारणान्तिक—मरणपर्यन्त सलेखना—शरीर और कषायो को कृश करके झूषणा, उसकी सेवना, आराधना करना सलेखना[xxix] है। उसके पॉच अतिचार हैं। यथा —

1 इहलोकाशसा प्रयोग—मनुष्यलोक मे सेठ, राजा, मत्री आदि ऋद्धि वाले मनुष्य होने की इच्छा करना।

2 परलोकाशसा प्रयोग—परलोक मे देव, देवेन्द्र होने की अभिलाषा करना।

3 जीविताशसा प्रयोग—सलेखणा सथारा लेने से लोगो मे अत्यधिक यशकीर्ति होते देखकर सोचना कि मै अधिक समय तक जीवित रहूँ तो अच्छा है।

4 मरणाशसा प्रयोग—अपनी यश कीर्ति नहीं होने से जल्दी मरने की इच्छा करना।

5 कामभोगाशसा प्रयोग—मनुष्य सम्बन्धी दिव्य कामभोगों की अभिलाषा करना।

इस प्रकार प्रभु के मुखारविन्द से इन अतिचारो को श्रवण करके आनन्द श्रावक ने श्रावक के आचरण करने योग्य बारह व्रतो को ग्रहण किया और प्रभु को वदन-नमस्कार करके वह भगवान् से कहने लगा —

भगवन्! आज से निर्ग्रन्थ धर्मसघ के अतिरिक्त अन्य सघो से सम्बद्ध पुरुषों को, उनके देवो को, उनके साधुओ को वन्दन-नमस्कार करना, उनके पहले बिना बोले उनसे बातचीत करना, उन्हे अशन—रोटी आदि, पान—पानी, दूधादि, खादिम—फल-मेवा आदि, स्वादिम—लोग, इलायची, मुखवासादि वस्तुएँ धर्म समझ

कर नहीं दूँगा। किन्तु राजा, समुदाय, बलवान, देव, माता-पिता, गुरु की आज्ञा से और आजीविका के लिए धर्म मानकर दान देना पडे तो मुझे आगार है।

मैं आज से श्रमण-निर्ग्रन्थो को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादपोछन, पीठ[क], फलक[ख], शय्या[ग], सस्तारक[घ], औषध[ङ] और भैषज[च] आदि वस्तुएँ दूँगा।[xxx] इस प्रकार का अभिग्रह आनन्द श्रावक ने स्वीकार किया। तत्पश्चात् उन्होने भगवान् से कई प्रश्न पूछे और भगवान् द्वारा समाधान फरमाये जाने पर प्रभु को तीन बार वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके दूतिपलाश चैत्य से निकले, अपने रथ पर आरूढ हुए और आरूढ होकर अपने घर की ओर रवाना हो गये।

आनन्द व्रत ग्रहण करके अपने अन्तर मे अत्यन्त प्रफुल्लित हो रहे थे और वे मार्ग मे ही चिन्तन कर रहे थे कि आज का दिन कितना श्रेयस्कर है कि आज मैंने स्वय भगवान् महावीर से श्रावक योग्य बारह व्रतो को ग्रहण कर धर्ममार्ग मे अपने चरण गतिमान कर लिये। अब मेरी पत्नी शिवानन्दा, वह भी बहुत ही सरल स्वभाव वाली है, उसे भी कहूँ कि तुम भी व्रत ग्रहण कर लो, तब वह भी व्रत ग्रहण कर लेगी। अपने जीवन को धन्य बना ही लेगी। इसी प्रकार चिन्तन करते-करते वह अपने घर पहुँचा और घर पहुँच कर शिवानन्दा से कहा–देवानुप्रिय ! मैंने आज श्रमण भगवान् महावीर से आगार धर्म के बारे मे सुना, वह मुझे इष्ट, कान्त, अत्यन्त रुचिकर लगा। अतएव हे देवानुप्रिय ! तुम भी भगवान् महावीर के पास जाओ, उनको वन्दन-नमस्कार करके उनका सत्कार, सम्मान करो क्योकि वे कल्याणरूप, मगलरूप, देवरूप और ज्ञानरूप हैं। इस प्रकार तुम उनकी पर्युपासना करके श्रावक योग्य पॉच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह व्रत स्वीकार करो।

आनन्द श्रमणोपासक के मुखारविन्द से नि सृत वाणी को देवानन्दा ने सुना ही नहीं, बल्कि अपने हृदय मे धारण कर लिया और हृदय मे अतीव आनन्द का अनुभव करती हुई सौम्य भावो से समन्वित हर्षातिरेक से हाथ जोडकर आदरपूर्वक अपने पति से इस प्रकार बोली–आपका कथन यथार्थ है। मैं आपके वचनो का आदर करती हुई, जैसा आपने कहा है, वैसा ही करती हूँ।

इस प्रकार शिवानन्दा की स्वीकृति मिलने पर आनन्द ने अपने सेवको को बुलाया और कहा–हे देवानुप्रियो ! तुम त्वरित गतिवाले, एक समान खुर एव पूँछ वाले, रग-बिरगे चित्रो से चित्रित सींग वाले, गले मे स्वर्ण के आभूषण और

(क) पीठ–पाटा (ख) फलक–बाजोट (ग) शय्या–ठहरने का स्थान
(घ) संस्तारक–दर्भादि का बिछौना (ङ) औषध–दवा (च) भैषज–अनेक वस्तुओ के संयोग

जोत धारण करने वाले, गले मे चाँदी की घटियो सहित नाक मे उत्तम सोने के तारो से मिश्रित पतली-सी सूत की नाथ से जुडी रास के सहारे वाहको द्वारा सम्हाले हुए, नीलकमलो से बनी कलगीयुक्त मस्तक वाले, दो युवा बैलो द्वारा खींचे जाते, अनेक प्रकार की मणियो और स्वर्ण की बहुत-सी घटियो से युक्त, श्रेष्ठ लकडी के एकदम सीधे, उत्तम और सुन्दर बने हुए जुए सहित, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त, धार्मिक कार्यो मे उपभोग मे आने वाले श्रेष्ठ रथ को शीघ्र ही उपस्थित करो।

आनन्द श्रमणोपासक द्वारा यो कहे जाने पर उन कौटुम्बिक पुरुषो ने उसके कथनानुसार बैलो को सुसज्जित कर, धार्मिक यान[xxxi] को तैयार कर उपस्थित कर दिया।

तत्पश्चात् शिवानन्दा ने स्नान किया, बलिकर्म[क], कौतुक[ख], मगल[ग] और प्रायश्चित[घ] किया। धार्मिक स्थल पर प्रवेश योग्य शुद्ध मागलिक वस्त्रो को धारण किया, अल्पभार वाले बहुमूल्य आभूषणो को धारण किया और दासियो के समूह से घिरी वह धार्मिक रथ पर सवार हुई। धार्मिक रथ पर सवार होकर वह दूतिपलाश चैत्य पहुँच गयी। वहाँ जाकर धार्मिक रथ से नीचे उतरी और भगवान् महावीर के पास पहुँची। वहाँ पहुँचकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा कर, वन्दन-नमस्कार किया और भगवान् से न अति निकट, न अति दूर बैठकर, हाथ जोडकर पर्युपासना करने लगी।

तब भगवान् महावीर ने उस विशाल जनभेदिनी को एव शिवानन्दा को धर्मोपदेश दिया, जिसे श्रवण कर शिवानन्दा ने अपने हृदय मे उतार लिया और उसने भगवान् महावीर से श्रावक योग्य बारह व्रत ग्रहण किये। व्रत ग्रहण करने के पश्चात् उत्तम रथ पर आरूढ होकर वह पुन अपने घर लौट गयी।

आनन्द श्रावक के व्रत ग्रहण करने के पश्चात् इन्द्रभूति गौतम, जो भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य थे, उनके मन मे एक जिज्ञासा समुद्भूत हुई और वे अपनी जिज्ञासा शात करने के लिए भगवान् महावीर के चरणो मे वन्दन-नमस्कार कर प्रभु से पूछने लगे—भते ! श्रमणोपासक आनन्द क्या आप देवानुप्रिय के पास मुडित होकर प्रव्रजित होने मे समर्थ है?

भगवान्—गौतम ! ऐसा संभव नहीं है। आनन्द श्रमणोपासक बहुत वर्षो तक श्रावक धर्म का पालन कर, ग्यारह उपासक प्रतिमा अगीकार कर, एक मास का अनशन कर, आलोचना-प्रतिक्रमण कर अन्त समय मे देह त्याग कर सौधर्म कल्प मे अरुणाभ विमान मे चार पल्योपम की स्थितिवाला देव बनेगा।

(क) बलिकर्म-नित्य नैमित्तिक कार्य
(ख) कौतुक-देह मज्जा की दृष्टि से आँखो में काजल आंजना
(ग) मंगल-ललाट पर तिलक लगाना
(घ) प्रायश्चित-दोष निवारण हेतु चन्दन, कुंकुम, दधि और अक्षत से मंगल विधान किया।

गौतम गणधर की जिज्ञासा का समाधान होने पर वे प्रभु को वन्दन-नमस्कार करके तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करने लगे।

भगवान् महावीर भी वाणिज्यग्राम निवासी एव अन्य अनेक भव्यात्माओ को प्रतिबोध देकर उन्हे जिनेश्वर मार्ग पर आरूढ कर अपना वर्षावास वाणिज्य ग्राम मे सम्पन्न करने लगे। भगवान् तो जयन्ति श्रमणोपासिका को दीक्षा देकर वहॉ से विहार कर गये लेकिन उनके उस वर्ष मे अनेक नगरियो मे अनेक घटनाऍ घटित हुई। जो चण्डप्रद्योतन उज्जयिनी का सम्राट् स्त्री-लम्पट और पर-द्रव्यहरण मे खूब आगे था, वह चौदह मुकुटबद्ध राजाओ के साथ स्वय मिलकर मानो पन्द्रह परमाधामी धरती पर उतर आये हो। ऐसे विशाल बर्बर राजाओ सहित चतुरगिणी सेना सजाकर वह मगध पर आक्रमण करने हेतु उज्जयिनी से चल पड़ा। मगध के गुप्तचरो को इस वार्ता का पता लग ही गया, तब उन्होने सारा वृत्तान्त राजा श्रेणिक से आकर निवेदन किया।

राजा श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलवाया और सारी समस्या उसके सामने रखी। तब अभयकुमार ने कहा—इसमे क्या घबराना? मैं शस्त्रास्त्र के साथ प्रज्ञा से उसे जीतने का प्रयास करूँगा। अभय की बात श्रवण कर राजा श्रेणिक निश्चित-से बन गये।

अभयकुमार ने अपना कार्य करना प्रारम्भ किया। उसने जहॉ-जहॉ शत्रुओ की छावनी थी वहॉ-वहॉ गुप्तचरो को भेजकर छावनी एव आस-पास की भूमि मे लोटो मे सोनैया भर-भर जमीन में गडवा दी। गुप्तचर अपना काम करके यथास्थान लौटे और प्रद्योतन की सेना ने पूरी राजगृह नगरी को घेर लिया। उस समय एक पत्र अभयकुमार ने राजा प्रद्योतन को लिखकर भेजा कि –

पूज्य मौसाजी ! मैं मेरी प्रिय मौसी शिवादेवी और मातेश्वरी चेलना मे किसी प्रकार का भेद नहीं मानता। अत आप शिवादेवी के प्राणप्रिय भर्ता होने से मेरे सम्माननीय मौसा हैं। मै तुम्हारा एकान्त हित करना चाहता हूँ इसलिए मै मगध सम्राट् श्रेणिक के गुप्त षड्यत्र को तुम्हे बतला रहा हूँ कि अभी श्रेणिक राजा ने आपके साथ क्या षड्यत्र किया है। राजा श्रेणिक ने तुम्हारे साथ आने वाले सारे राजाओ के साथ समझौता कर लिया है और उनको स्वाधीन करने के लिए खूब सोनैया दी है, इससे वे अवसरानुसार तुम्हे बॉधकर मेरे पिताश्री को सौंप देगे। राजा श्रेणिक ने उन राजाओ की खातिरदारी करने के लिए उनके वासगृह मे सोनैया जमीन मे छिपा रखी है, तुम भले ही उनको खुद खुदवाकर देख लो।"

जैसे ही प्रद्योतन ने यह पत्र पढा, उसके नीचे की धरती मानो खिसक गई। उसने एक राजा के आवास के नीचे की भूमि खुदवाई तो वहॉ वस्तुत खूब

सोनैया लोटे मे गडी हुई मिली। तब प्रद्योतन बदी बनाये जाने के भय से वहाँ से पडाव हटाकर बेतहाशा उज्जयिनी की ओर भागने लगा। प्रद्योतन को इस तरह भागते हुए देखकर अन्य मुकुटबद्ध राजा एव महारथी भी भाग खडे हुए। उन्हे केश सज्जा का अवकाश तक न मिलने के कारण उनके मुकुट भी जमीन पर गिर पडे, लेकिन वे भयभीत हुए भागते ही जा रहे थे और भागते-भागते सभी उज्जयिनी पहुँच गये।

उज्जयिनी जाकर सब मिले तो प्रद्योतन ने उन राजाओ से पूछा कि क्या तुम मगध सम्राट् श्रेणिक को मुझे बदी बनाकर सौंप रहे थे? तब उन्होने कहा–"राजन्! यह सर्वथा मिथ्या बात है। हमे ऐसा करना होता तो हम उज्जयिनी आते ही क्यो?" आखिर विचार-विमर्श करके वे इस निर्णय पर पहुँच गये कि यह सब अभयकुमार की ही माया है।

राजा प्रद्योतन अभयकुमार के इस कृत्य से अत्यन्त क्षुब्ध बन गया और उसके मन मे प्रतिशोध की अग्नि निरन्तर जलने लगी।

उसके मन मे निरन्तर अभयकुमार से प्रतिशोध लेने के भाव जागृत होते रहते थे। आखिरकार एक बार उसने अपनी सभा मे घोषणा कर ही दी कि जो अभयकुमार को बॉधकर उज्जयिनी लायेगा, उसको मैं खुश करूँगा। इस पर उस सभा मे एक गणिका ने हाथ ऊपर किया। प्रद्योतन राजा ने उस गणिका को आज्ञा प्रदान की और कहा–"तू जा और यह कार्य सम्पन्न कर दे।"

वह गणिका अब अभयकुमार को छलने की युक्ति सोचती है कि अभयकुमार अन्य किसी कार्य से हमारे वश मे आने वाला नहीं है। अतएव धर्मछल करके ही उसे मैं वश मे कर सकती हूँ। यह सोचकर उसने अपने कार्य की सफलता के लिए राजा से दो बुद्धिमती युवतियो की मॉग की। प्रद्योतन ने गणिका को, दो बुद्धिमती युवतियॉ एवं पुष्कल द्रव्य देकर विदा किया। वह गणिका उन दो युवतियो को साथ लेकर बहुश्रुता साध्वी के पास पहुँची एव आदरपूर्वक साध्वी की पर्युपासना करने से वे कुशाग्र बुद्धिशाली और बहुश्रुता बन गयीं। तत्पश्चात् वे राजगृह नगर के बाहर उद्यान मे आई और वहॉ धर्म-उपासना करने लगी। सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषधादि से लोगो को आकृष्ट करने लगी।

उनकी उस उपासना की खबर अभयकुमार तक भी पहुँची। तब अभयकुमार स्वय उनके पास आया और उनका परिचय पूछा कि तुम कोन हो?

उस गणिका ने, जो श्राविका बनने का पाखण्ड कर रही थी, अभयकुमार को बताया कि मैं उज्जयिनी के धनाढ्य व्यापारी की विवाहिता विधवा स्त्री हूँ। ये मेरी दोनो पुत्रवधुएँ भी क्रूर काल के जाल से विधवा बन गयी हैं। अब इनके मन मे सयम लेने के भाव जगे हैं। चूँकि सयम सरल नहीं है, अतएव हम पहले

घूम-घूमकर सयमी जीवन का अभ्यास कर रही है।

तब अभयकुमार ने कहा—चलो, आज हमारा आतिथ्य स्वीकार करो।

गणिका—आज तो हमारे उपवास है।

अभयकुमार—कल आना।

गणिका—कल का कोई भरोसा नही।

अभयकुमार—चलो, मैं फिर कल आऊँगा। यो कहकर अभयकुमार लौट गया।

दूसरे दिन प्रात काल ही अभयकुमार उन्हे बुलाने के लिए चला गया। अभयकुमार के भावभरे निमत्रण को उन्होने स्वीकार किया और वे उसके साथ चली गयीं। उनका खूब सम्मान कर, भोजन खिलाकर, वस्त्रादि से सत्कार कर अभयकुमार ने उनको विदा किया तो उन्होने अभयकुमार को भोजन का निमत्रण दिया, जिसे अभयकुमार ने स्वधर्मी वात्सल्य भाव से स्वीकार कर लिया।

गणिका अपना जाल बिछाकर मन मे आनन्द का अनुभव कर रही थी। वे दूसरे दिन भोजनादि विविध सामग्री तैयार कर अभयकुमार का इन्तजार कर रही थी। अभयकुमार अपने वचनानुसार वहाँ पर आया। गणिका ने खूब सत्कार-सम्मान से उसे भोजन करवाया और मदिरायुक्त जल का पान कराया जिससे अभयकुमार को गहरी नींद आ गयी। तब गणिका ने उसको सकेत से रथ मे सुलाकर उज्जयिनी पहुँचा दिया।

इधर अभयकुमार के महलो मे न पहुँचने से राज्य मे खलबली मच गयी। श्रेणिक राजा ने कर्मचारियो को अभयकुमार की खोज के लिए उन कपटी श्राविकाओ के पास भेजा, लेकिन वे कपटी श्राविकाएँ तो कहने लगी कि अभयकुमार हमारे यहाँ से तो भोजन करके कब के ही लौट गये। राजकर्मचारी यह उत्तर श्रवण कर चले गये और वे कपटी श्राविकाएँ अतिशीघ्र वहाँ से उज्जयिनी पहुँच गयी और वहाँ जाकर राजा प्रद्योतन को अभयकुमार को ले जाकर सौंप दिया।[25]

जब राजकुमार अभय प्रद्योतन के पास बदी बनकर पहुँचा तो प्रद्योतन ने उपहास करते हुए अभयकुमार को कहा—"तेरे जैसे नीतिज्ञ मेधावी पुरुष को स्त्रियो ने बॉध दिया।"

तब अभयकुमार व्यग्य-परिहास करते हुए बोला—अरे ! तुम इस जगत मे एकमात्र ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति हो कि इस प्रकार की ऐसी बुद्धि से तुम्हारा राजधर्म वृद्धि पा रहा है।"

अभयकुमार के वचन श्रवण कर प्रद्योतन शर्मिन्दा हुआ और साथ-साथ आवेशित भी। उसने उस आवेश के क्षणो मे भ्रमित बुद्धि से अभयकुमार को काष्ठ के पिजरे मे बद कर दिया।[xxxi]

अभयकुमार पिजरे मे भी समाधिस्थ बना हुआ है और प्रद्योतन सगर्व राज्य का सचालन कर रहा है। उस समय प्रद्योतन के राज्य मे चार रत्न माने जाते थे–अनलगिरि हस्ती, अग्निभीरु रथ, शिवादेवी रानी और लोहजघ नामक दूत। राजा प्रद्योतन उस लोहजघ को आदेश देकर बार-बार भृगुकच्छ भेजता था। उसके बार-बार आने से भृगुकच्छ के लोग परेशान हो गये। वे सोचने लगे–ये प्रतिदिन उज्जयिनी से 25 योजन चलकर भृगुकच्छ आता है और राजा के प्रतिदिन नये-नये आदेश लाता है, इससे हम अत्यन्त व्यथित हो गये हैं, अतएव इसको मार देना चाहिए। ऐसा विचार कर वहॉ के लोगो ने एक बार लोहजघ के नाश्ते मे विषमिश्रित लड्डू रख दिये जिन्हे लेकर वह वहॉ से रवाना हो गया।

मार्ग मे चलते-चलते लोहजघ ने सोचा कि मुझे भूख लग गयी है, इसलिए अब लड्डू खा लेने चाहिए। वह जैसे ही मोदक खाने बैठा कि उसे अपशकुन हुए। तब उसने लड्डू नहीं खाये। फिर आगे चला, लड्डू खाने बैठा, पुन अपशकुन हुए। तब उसने लड्डू नहीं खाये। तीसरी बार खाने बैठा कि पुन अपशकुन हुए, तो उसने लड्डू खाये नहीं, अपितु वह उन्हे लेकर उज्जयिनी मे लौट गया और उसने सारी बात प्रद्योतन से कह डाली।

राजा प्रद्योतन सुनकर विस्मयान्वित हो गया और इसका निर्णय करने हेतु तत्पर हो गया। तभी उसे अभयकुमार का खयाल आया और राजा ने सारी बात अभयकुमार से कही। अभयकुमार ने वह लड्डू की कोथली मगवाई और उसे सूघकर बतलाया कि इस कोथली मे तो उस प्रकार के द्रव्यो के सयाग से दृष्टिविष सर्प उत्पन्न हो गया है।[xxxiii] अतएव यदि लोहजघ यह कोथली छोड भी देगा तो वह उस सर्प के प्रभाव से दग्ध हो जायेगा। इसलिए अब इस कोथली को अरण्य मे छोडकर मुँह फेर लो। अभयकुमार की पैनी प्रज्ञा से समाधान को प्राप्त कर लोहजघ जगल मे गया। उसने वृक्ष के पास कोथली फेककर तुरन्त मुँह फेर लिया। तब उस सर्प के प्रभाव से वृक्ष जल गया और लोहजघ बच गया।[26] इससे प्रद्योतन का मन प्रफुल्लित हुआ और उसने अभयकुमार से कहा–"कैदमुक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई वरदान मॉगो।"

अभयकुमार बोला–"आप इसे मेरी धरोहर के रूप मे अपने पास रखो।"

महामत्री का चयन

अभयकुमार तो प्रद्योतन के यहॉ कैद बना हुआ हे लेकिन उसके अपहरण के पश्चात् राजगृह की व्यवस्थाएँ अव्यवस्थित होने लगी, क्योकि वहॉ की समस्याओं का समाधान करना अब टेढी खीर हो गया। राजा श्रेणिक भी बडे चिन्तित थे कि कोई योग्य व्यक्ति मिल जाये तो उसे अभयकुमार का पद दे दूँ, लेकिन उन्हें

चारो तरफ दृष्टि फैलाने पर भी उसकी सानी का कोई योग्य व्यक्ति नजर नहीं आया। फलत वे निरन्तर खोज कर रहे थे कि अचानक एक दिन उनका पट्टहस्ती सेचनक मदोन्मत्त होकर बेतहाशा भागने लगा। वह कही वृक्षो को उखाड रहा है, कहीं दुकानो को, कही मकानो को अस्त-व्यस्त कर रहा है। तब राजा श्रेणिक ने घोषणा करवाई कि जो इस हाथी को वश मे करेगा उसको राजकीय सम्मान और यथेष्ट पुरस्कार दिया जायेगा।

उस समय राजगृह मे रहने वाले धनसार श्रेष्ठी के पुत्र धन्ना ने जब यह घोषणा सुनी तो उन्होने सेचनक को वश मे करने का बीडा उठाया और बहुत प्रयत्न करने के पश्चात् आखिरकार जब हाथी भाग-भागकर थक गया और एक वृक्ष से अपनी पीठ खुजलाने लगा, उस समय अवसर जानकर वृक्ष पर चढकर धन्ना उसकी पीठ पर बैठ गया और उसे वश मे कर लिया। राजा श्रेणिक धन्ना के इस कार्य पर बडे प्रसन्न हुए। उन्होने अपनी पुत्री सोमा से उनका विवाह सम्पन्न करवाया, बहुत-से रत्नाभूषण और एक हजार गॉव पुरस्कार मे दिये। साथ-साथ उन्हे राजगृह का मत्री पद भी।[27]

परिचय–

एक दिन सोमा ने कुसुमश्री से पूछा कि हमारे स्वामी क्या राजगृह के मूल निवासी हैं? कुसुमश्री ने कहा–नहीं?

सोमा–तब उनका आगमन कहॉ से हुआ?

कुसुमश्री–प्रतिष्ठानपुर से।

सोमा–प्रतिष्ठानपुर से आगमन यहॉ !

कुसुमश्री–लो सुनो, मैं सुनाती हूॅ जीवन-वृत्तान्त। यो कहकर कुसुश्री ने धन्ना के जीवन-वृत्तान्त को सुनाना प्रारम्भ किया।

गोदावरी के कूल पर बसा प्रतिष्ठानपुर नामक नगर ऋद्धि-समृद्धि से परिपूर्ण व्यापार का केन्द्र था। यहॉ का जितशत्रु राजा, गुणसुन्दरी महारानी और राजकुमार शत्रुदमन प्रजावत्सलता के कारण कीर्ति प्राप्त थे।

अनेक सेठ-साहूकारो की इस नगरी मे राजकीय सम्मान प्राप्त धनसार श्रेष्ठी एव उनकी शीलवती नामक पत्नी अपने तीन पुत्रो–धनदत्त, धनदेव और धनचन्द्र तथा क्रमश तीन पुत्रवधुओ–धनश्री, धनदेवी ओर धनचन्द्रा के साथ सुखपूर्वक निवास करते थे।

एक दिन शीलवती सेठानी ने अपने गृह-ऑगन मे एक हराभरा लहलहाता कल्पवृक्ष देखा जिसके परिणामस्वरूप उन्होने समय आने पर एक शिशु का प्रसव किया। शिशु का नाला गाडने जैसे ही दासी ने खड्डा खोदा कि स्वर्ण

मुहरो से भरा एक कलश निकला। सेठ ने खूब धूम-धाम से पुत्रोत्सव मनाया और पुत्र का नाम धन्य रख दिया। धन्यकुमार पॉच धायो द्वारा परिपालित होने लगा और घर के सभी सदस्य प्यार से उसे धन्ना कहने लगे। धन्ना अनेक प्रकार की कलाओ और विद्याओ मे पारगत बन गया। जब धन्ना ने युवावस्था मे प्रवेश किया तो वह अपनी सुतीक्ष्ण मेधा से अनेक समस्याओ को निपटा दिया करता था। इससे धन्ना का सम्मान निरन्तर बढने लगा। धन्ना के सम्मान को देखकर तीनो भाइयो के कलुषित हृदय मे ईर्ष्या का जागरण हुआ और उन्होने पिता से अनेक बार कहा कि आप परीक्षा लेकर देखो कि हम मे से कौन बुद्धिमान है? पिता ने पुत्रो को समझाने का अनेक बार प्रयास किया और जब वे नहीं माने तो परीक्षाऍ भी ली, लेकिन हर बार धन्ना को ही सफलता मिली। तब ईर्ष्या की प्रबल आग मे जलकर तीनो भाइयो ने धन्ना को मारने का षड्यत्र रचा, लेकिन धन्ना को इस बात का पता चला तो वह रात्रि मे ही घर से निकलकर चला गया। चलते-चलते नर्मदा के तट पर पहुॅच गया और वहॉ विश्राम करने लगा। जब ब्रह्ममुहूर्त मे वह उठा तब एक सियार बोल रहा था कि नदी मे तैर कर जो शव आ रहा है उसकी जघा मे अमूल्य पॉच रत्न छिपे हैं। धन्ना यह श्रवण कर रहा था। वह नदी के किनारे खडा हो गया और उस शव मे से पॉच रत्न निकाल लिये, जिन्हें लेकर धन्ना यात्रा करते-करते उज्जयिनी पहुॅच गया। वहॉ के महामत्री का पद खाली था और प्रद्योतन ने घोषणा कर दी थी कि सरोवर के बीच एक खभा है, सरोवर के बाहर उसके सामने एक वृक्ष है, जो व्यक्ति सरोवर मे बिना उतरे खभे और वृक्ष को एक रस्सी से बॉध देगा वह महामत्री पद पर प्रतिष्ठित होगा। तब धन्ना ने यह बीडा उठाया। उसने वृक्ष से रस्सी का एक छोर बॉधा और रस्सी का दूसरा छोर लेकर सरोवर की परिक्रमा की। फिर रस्सी को खींचा तो स्तम्भ और वृक्ष रस्सी से बध गये। तब धन्ना को महामत्री के पद पर प्रतिष्ठित किया।

इधर धन्ना के घर से जाते ही माता-पिता एव भाइयो के हाल बेहाल हुए। धन्ना के भाइयो ने राजघराने से चुराई वस्तुऍ एक चोर से सस्ते भाव मे खरीद ली। जब राजा को यह स्थिति ज्ञात हुई तब उसने धन्ना के घर और दुकान का सारा माल अपहरण करवा लिया। फलत पूरा परिवार प्रतिष्ठानपुर नगर छोडकर निकल गया। यत्र-तत्र मजदूरी करके उदर पोषण करते हुए उज्जियिनी पहुॅच गये। जब एक बार धन्ना ने उन्हे उज्जियिनी मे फटे हाल घूमते देखा तो उनको ससम्मान अपने महल मे बुलाया और वहॉ रहने लगे।

इधर धन्ना ने शव की जघा से प्राप्त हुए बहुमूल्य रत्न अपने पिता को दिखलाये, जिन्हे देखकर पिताजी अत्यन्त प्रमुदित हुए। जब भाइयो को इन रत्नो की जानकारी हुई तब वे पिता से कहने लगे कि ये रत्न धन्ना की कमाई

के नहीं हैं। ये तो पैतृक सम्पत्ति है, अत इनका बॅटवारा होना चाहिए। धन्ना ने देखा सम्पत्ति के कारण गृहकलह हो रहा है तो रत्न पिता को दे दिये और मत्री पद त्याग कर वहॉ से बनारस की ओर प्रस्थान कर दिया।

बनारस मे गगा नदी के तीर पर बैठकर वह समनस्क बनकर महामत्र नवकार का जाप करने लगा तभी गगादेवी ने प्रकट होकर धन्ना को चिन्तामणि रत्न दिया, जिसे प्राप्त कर उसने राजगृह की ओर प्रस्थान किया। चिन्तामणि को लेकर जब धन्ना राजगृह के मेरे पिता के (श्रेष्ठी कुसुमपाल के) शुष्क उद्यान मे गया और चिन्तन किया कि यह बाग हरा-भरा हो जाये तो कितना अच्छा ! बस, चिन्तन करते ही बाग हरा-भरा होकर फल-फूलो की सौरभ से महकने लगा। मेरे पिताजी को इस वार्ता का पता लगा तो वह धन्ना को अपने घर ले गये और मुझसे उसका विवाह तय किया। धन्नाकुमार ने भी नगर के बाहर चिन्तामणि रत्न के प्रभाव से महल बनाया और वहॉ से बरात सजाकर मेरे साथ पाणिग्रहण किया।

इस प्रकार धन्नाजी का प्रतिष्ठानपुर से राजगृह आना हुआ है। देखो अपने स्वामी अपने बुद्धि कौशल से राजगृह के महामात्य पद प्राप्त कर गये।

कुसुमश्री के मुख से अपने स्वामी का जीवन-वृत्तान्त श्रवण कर सोमा गद्गद हो गयी। वे दोनो अत्यन्त प्रेम से रहकर समययापन कर रही है और धन्नाजी अपनी योग्यता से राजकार्य का सकुशल सचालन।[28]

गोभद्र दीक्षा :

राजगृह नगर भी उस समय की प्रमुख नगरी थी जहॉ ऋद्धि-समृद्धि से सम्पन्न पुण्यवान सेठ-साहूकारो का बाहुल्य था। सम्पत्ति के साथ-साथ सद्सस्कारों से समन्वित वे परिवार सदैव देव, गुरु, धर्म के प्रति दृढ आस्थावान बने हुए थे।

न्याय-नीति से सम्पन्न वहॉ के लोग बहुत प्रामाणिकता से जीवनयापन करते थे। ऐसे श्रेष्ठीवर्यो मे अग्रगण्य थे—गोभद्र सेठ, जिनके यहॉ ऋद्धि-सम्पत्ति की किसी प्रकार कोई कमी नहीं थी। उनकी भद्रा सेठानी शीलगुणसम्पन्न रूपयौवना मानो अप्सरा ही थी। स्वभाव से सौम्य प्रकृति वाली भद्रा सेठानी गोभद्र सेठ के साथ अनुरक्त रहकर उन्हीं के निर्देशानुसार चलने वाली थी। एक यामिनी मे भद्रा सेठानी अपने शयन कक्ष मे शयन कर रही थी। अर्धरात्रि के समय अर्धनिद्रित अवस्था थी। उस समय उसने स्वप्न मे शालि (धान, चावल) का हराभरा लहलहाता खेत देखा जिसकी परिपक्व बालियॉ मन को आकृष्ट कर रही थी। स्वप्न देखकर भद्रा सेठानी जागृत हुई। उसने, जहॉ गोभद्र सेठ का शयन कक्ष था, वहॉ जाकर श्रेष्ठीवर्य को मधुर-मधुर शब्दो से जागृत किया। नीद मे से जागृत होकर गोभद्र सेठ बोला—प्रिये ! इस समय तुम? तुम?

भद्रा–हाँ देवानुप्रिय ! मैं आज एक खुशखबर बताने हेतु आई हूँ।

गोभद्र–अर्धरात्रि मे खुशखबर ?

भद्रा–हाँ, आज अभी मैने एक शुभ स्वप्न देखा है।

गोभद्र–अच्छा, बताओ क्या देखा?

भद्रा–परिपक्व शालि खेत।

गोभद्रा–तुम वीर प्रसवा सन्नारी का पद प्राप्त करोगी।

भद्रा सलज्ज सिर झुकाये खडी रहती है।

गोभद्र–जैसे शालि का खेत धान्य से परिपूर्ण था, वैसे ही वीर सतान के आने से हमारा घर धन-धान्य से परिपूर्ण बनेगा। तुम्हारा यह स्वप्न अतिश्रेष्ठ है।

भद्रा–आपके वचन यथार्थ हो स्वामिन् ! यो कहकर स्वय के शयन कक्ष की ओर लौट जाती है। अवशिष्ट रजनी शुभ भावनाओ के साथ व्यतीत करती है।

निरन्तर दान, शील, तप और सुन्दर भावनाओ से स्वय का परिपोषण करती हुई भद्रा सेठानी समय आने पर सुकोमल शिशु का प्रसव करती है और स्वप्नानुसार उसका नाम शालिभद्र रखती है। शालिभद्र गोभद्र श्रेष्ठी के यहाँ पाँच धायो से परिपालित होकर शनै -शनै वृद्धिगत होने लगा। आठ वर्ष की उम्र मे कलाचार्य से शिक्षा प्राप्ति हेतु गुरुकुल मे प्रविष्ट हुआ। तरुणाई की देहली पर कदम रखते बहत्तर कलाओ मे निष्णात बन गया। युवावय के सम्प्राप्त होने पर बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओ के साथ माता-पिता ने पाणिग्रहण किया। बत्तीस श्रेष्ठ प्रासादो में बत्तीस रमणियो के साथ वह भोग भोगने लगा।[29]

शालिभद्र की एक अनुजा थी–सुभद्रा। यथानाम तथागुण-सम्पन्न सुभद्रा थी। युवावय मे प्रवेश कर रूप और लावण्य से आकर्षक व्यक्तित्व को धारण किये हुए थी। गोभद्र सेठ स्वय अपनी दुहिता के लिए योग्य वर की तलाश कर रहे थे। वे अपने ही समान खानदानी परिवार मे ही पुत्री को देने के लिए कटिबद्ध थे, लेकिन अभी तक उनके ध्यान मे ऐसा सुयोग्य युवक नहीं आया।

एक दिन गोभद्र सेठ अपनी बेठक मे बैठा हुआ था कि एक एकाक्षी ठग व्यापारी पाँच पुरुषो के साथ वहाँ उपस्थित हुआ। उसने गोभद्र सेठ को अभिवादन किया और बोला–श्रेष्ठीवर्य ! ये एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ लीजिये और मेरी आँख मुझे पुन लौटा दीजिये।

गोभद्र–तुम्हारी आँख कैसी आँख .. ?

ठग–अरे ! एक महीने के अन्दर ही विस्मृत हो गये।

गोभद्र–क्या पहेली बुझा रहे हो?

ठग–पहेली नहीं, हकीकत है।

गोभद्र–हकीकत !

ठग–हॉ हकीकत ! अभी मैं कुछ दिन पहले राजगृह नगर आया था। तब माल खरीदने मे धन की कमी पड गयी थी, तो मैंने एक ऑख गिरवी रखकर एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ आपसे उधार ली थी। अब मै एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ लाया हूँ जिन्हे ग्रहण कर आप मेरी ऑख मुझे पुन लौटा दीजिये।

गोभद्र–ये तुम क्या अनर्गल प्रलाप कर रहे हो? मैं ऑख गिरवी रखने की वार्ता आज प्रथम बार तुम्हारे मुख से श्रवण कर रहा हूँ।

ठग–श्रेष्ठीवर्य ! चिकनी-चुपडी बाते न करो। मेरी ऑख मुझे लौटा दो।

गोभद्र–अरे ! क्यो असत्य भाषण कर रहे हो। चले जाओ यहॉ से। नहीं तो श्रेणिक राजा तुम्हे दण्डित करेगे।

ठग–दण्डित । अहा ! क्या बात करते हो? चलो मैं स्वय चलता हूँ श्रेणिक राजा के दरबार मे।

गोभद्र–अरे ! क्यो मौत के मुँह मे जाना चाहते हो?

ठग–श्रेष्ठीवर्य, मृत्यु ! उससे तो कायर पुरुष डरते हैं। मुझे तो न्याय चाहिए।

गोभद्र–न्याय न्याय यह कैसा न्याय? न्याय के बहाने तुम मुझे नहीं ठग सकते।

ठग–तुम ठगी की बात करते हो? अब तो मैं न्याय करवाके ही छोडूँगा।

यो कहकर ठग उन पॉच पुरुषो को लेकर राजा श्रेणिक के दरबार की ओर रवाना हो जाता है।

राजा श्रेणिक के पास पहुँचकर वे कहते हैं–राजन् ! आपके नगर मे आपके रहते हमारे साथ अन्याय हो रहा है।

श्रेणिक–अन्याय कैसा अन्याय ?

ठग–राजन् ! आपके यहॉ एक बार मै माल खरीदने आया तब रुपयो की कमी होने से मैंने गोभद्र सेठ के यहॉ एक ऑख गिरवी रखी और एक लाख रुपये लिये। अब मैं पुन रुपये देकर मेरी ऑख लेने हेतु आया हूँ और गोभद्र सेठ देने से इनकार कर रहा है। राजन् ! आप न्याय करके मेरी ऑख मुझे पुन दिलवाइये।

ठग की बात सुनकर राजा समझ गया कि यह धूर्त व्यक्ति छलने आया है। अभी अभयकुमार नहीं तो यह अवसर का लाभ कमाने आया है। अतएव समस्या को पेचीदा जानकर राजा ने धन्ना की ओर देखा। तब धन्नाकुमार ने ठग से कहा—यदि तुमने ऑख गिरवी रखी है तो मिल जायेगी। मै गोभद्र सेठ के खाते आदि देख लूँगा। तुम कल आना, तुम्हारा फैसला हो जायेगा।

दूसरे दिन वह ठग पॉच गवाह लेकर राजदरबार मे उपस्थित हुआ और धन्नाजी ने गोभद्र सेठ को भी बुलवा लिया। अनेक लोग फैसला सुनने को उत्सुक थे। तब धन्नाजी ने ठग से कहा—देखिये, गोभद्र सेठ के यहाँ पर बहुत लोगो ने ऑखे गिरवी रख रखी हैं इसलिए आपकी ऑख का पता ही नहीं चल पा रहा है कि कौनसी ऑख है। अस्तु आप अपनी दूसरी ऑख भी निकालकर दे दीजिए ताकि मिलान करके आपकी ऑख छॉटकर आपको दे देगे। फिर आप दोनो ऑखे यथास्थान लगा लेना क्योकि आपके तो ऑख निकालने का और लगाने का व्यापार है।

अब ठग व्यापारी बगले झॉकने लगा। धन्ना ने उसे बहुत धमकाया और दण्ड देना चाहा लेकिन वह धन्ना के चरणो मे सदा-सर्वदा के लिए ठगाई छोडकर समर्पित बन गया। तब धन्ना ने उसका अपराध माफ कर दिया।

धन्ना के फैसले को देखकर गोभद्र सेठ अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसने अपनी पुत्री सुभद्रा का विवाह अत्यन्त आग्रह सहित धन्ना के साथ धूम-धाम से सम्पन्न कर दिया।

पुत्र शालिभद्र एव पुत्री सुभद्रा का विवाह करने के पश्चात् गोभद्र सेठ के मन मे अपार ऋद्धि का परित्याग कर सयम लेने के भाव जागृत हुए।

वे चितन करते हैं, यह नश्वर शरीर और क्षणिक ऋद्धि तो अवश्यमेव परित्याग योग्य है अतएव मुझे इस दुर्लभ मानव-तन का लाभ उठाना चाहिए। इसमे तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिए। यह सोचकर उन्होने अपनी पत्नी भद्रा एवं पुत्र शालिभद्र को कहा—मैं इस घर का भार तुम्हे सुपुर्द करता हूँ।

शालिभद्र—घर का भार मैं समझा नहीं।

गोभद्र—मैं गृहत्याग कर मुनि वनना चाहता हूँ।

शालिभद्र—मुनि ! क्या यह समय मुनि वनने का है?

गोभद्र—मैंने ससार के समस्त सुख भोग लिए हैं। अब आत्मिक सुख ही मेरा लक्ष्य है। इस समय मुनि न वनूँगा तो कव वनूँगा? क्योकि निर्मम काल का भरोसा नहीं।

शालिभद्र मूक वन जाता है। तव गोभद्र सेठ भद्रा सेठानी को घर का सारा

भार सम्हलाते हुए कहते हैं–देवानुप्रिय ! शालिभद्र सरीखे पुत्र का खयाल रखना और समय आने पर तुम भी परमात्मा की शरण को स्वीकार करना।

भद्रा भी त्याग मार्ग के आगे नतमस्तक थी। गोभद्र सेठ समस्त कुटुम्बीजनो एव नगरवासियो सहित भगवान् महावीर की शरण मे पहुँचे। सब उच्च स्वर मे कहने लगे–गोभद्र सेठ धन्य है, गोभद्र सेठ धन्य है। इनका जीवन सफल है, सुफल है। देखते ही देखते गोभद्र सेठ ने वस्त्राभूषण परित्याग कर पचमुष्टि लोच किया और भगवान् के सानिध्य मे पहुँचकर सयम अगीकार किया।[31]

वासवदत्ता का हरण :–

राजगृह की व्यवस्था धन्ना अपनी योग्यता से सुचारु रूप से चला रहे हैं और अभयकुमार कैदखाने मे अभी उज्जयिनी है। राजा चण्डप्रद्योतन का अन्त पुर अनेक महारानियों से अलकृत है। उनके महल मे रूप और लावण्य की सीमास्वरूप अनेक महारानियाँ थी। उनमे एक महारानी थी–अगारवती। अगारवती शीलगुणो से सम्पन्न सद्व्रता नारी थी। उसने समय आने पर एक नवजात बाला का प्रसव किया जिसका नाम वासवदत्ता रखा गया। वासवदत्ता रत्नाकर मे से लक्ष्मी की तरह निरन्तर पॉच धायो द्वारा पालित की जाने लगी। सर्वलक्षणसम्पन्न, विनय गुणो की साक्षात् मूर्ति वह वासवदत्ता अनेक कलाओ मे निष्णात बन गयी पर एक गधर्व कला सिखाने वाला उसको कोई नहीं मिला।

राजा वासवदत्ता की प्रतिभा पर मत्र मुग्ध था इसलिए वह उसे हर सभव गधर्व कला सिखाने के लिए प्रयासरत था लेकिन उसे कोई भी कला सिखाने वाला नहीं मिला। तब एक बार राजा प्रद्योतन ने अपने मत्री से पूछा–वासवदत्ता को गन्धर्व वेद की शिक्षा दिलवाऊँ तो इसका गुरु कौन होगा?

तब मत्री ने कहा–वत्सराज उदयन की गधर्व कला अतिशय सम्पन्न है। वह अपने गधर्व गीत से विशालकाय गजेन्द्रो को मत्रमुग्ध कर बॉध लेता है। यहॉ तक कि खूखार जगली हाथियो को भी अपने गीतो की ध्वनियो से आकृष्ट कर बधनयुक्त कर देता है।

राजा–वत्सराज उदयन लेकिन उसको यहॉ कैसे लाये ? यद्यपि उम्र मे वह छोटा है लेकिन वीरता उसकी सानी नहीं है।

मत्री–उसको वश मे करने का एक उपाय है।

राजा–बताओ।

मत्री–आप काष्ठ का एक ऐसा हाथी बनवाओ जो देखने से असली हाथी लगे। उस हाथी के शरीर में एक ऐसा यत्र प्रयोग करवाओ जिससे वह चल सके। उस काष्ठधारी हाथी के शरीर मे एक यंत्र चालक पुरुष को बिठा दो जो हाथी को गति

करवा सके। वह हाथी वत्सराज के समीपवर्ती जगल मे ले जाया जाये। जब उदयन उसे वश मे करके उसके ऊपर चढे तक वह उदयन को बॉधकर यहॉ ले आये।

राजा–ओह ! बहुत सुन्दर उपाय तुमने बता दिया। ऐसा ही करता हूँ।

राजा ने काष्ठ का हाथी बनाने का कलाकारो को आदेश दिया। कलाकारो ने सच्चे हाथी से भी गुणो मे श्रेष्ठ हाथी को तैयार किया। वह ऐसा दतघात सूँड उत्क्षेप, गर्जनादि करता जिससे वह कृत्रिम हाथी लगता ही नहीं था। उस हाथी मे एक पुरुष को विठाकर उन जगलो मे भेज दिया जहॉ वत्सराज उदयन ने वनचरो को निर्देश दे रखा था। जैसे ही वह हाथी शून्य अरण्य मे प्रविष्ट हुआ, वनचरो ने उसकी सूचना राजा उदयन को दी। उदयन उसे बाँधने के लिए वन मे आया। उसने अपने परिवार को दूर रखकर धीरे-धीरे वन मे प्रवेश किया और किन्नरो को भी पराभव कर दे ऐसी मधुर वाणी से उच्च स्वर मे गाने लगा। तब वह हाथी अपने अगो को स्तब्ध करने लगा जिससे उदयन ने सोचा कि हाथी गधर्व गीत से मुग्ध बन गया है। उदयन उस समय हाथी पर बैठा तब चण्डप्रद्योतन के सैनिको ने उसे पकडकर बॉध दिया और अवति (उज्जयिनी) लाकर प्रद्योतन के सुपुर्द कर दिया।

प्रद्योतन ने वत्सराज उदयन से कहा–मेरी एकाक्षी दुहिता है, तुम उसे गधर्व कला सिखाओ और मेरे घर पर सुखपूर्वक रहो, अन्यथा मैं तुम्हे बधन मे बॉध दूँगा।

उदयन (अवसर को जानकर)–ऐसा ही करूँगा।

प्रद्योतन–तुम उसको यदि देखने का प्रयास करोगे तो वह एकाक्षी होने से लजा जायेगी।

उदयन–नहीं, मे ऐसा नहीं करूँगा।

प्रद्योतन (अपनी पुत्री वासवदत्ता के पास जाकर)–बेटी, तुम्हे गधर्व विद्या सिखाने वाले गुरु आये हें, लेकिन तू उनकी तरफ मत देखना क्योकि वे कुष्ठी हैं।

वासवदत्ता–पिताश्री ! आपके आदेश का पालन करूँगी।

राजा प्रद्योतन ने एक परदा लगवा दिया। परदे के एक तरफ उदयन और दूसरी तरफ वासवदत्ता को विठाया। वह अव गधर्व कला सीखने लगी। वहुत अच्छे तरीके से सीखने-सिखाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। दोनो परदे की आड मे अपने कार्य मे व्यस्त थे। किन्तु मन अत्यन्त चचल स्वभाव वाला है। उसमे न जाने कव वासना का अकुर किस रूप मे पेदा हो जाये ओर वह किस स्थिति मे ले जाकर डाल दे ! इस वासना ने ही चरम शरीरी-रथनेमि के मन मे ऊहापोह

भी भोगी बन गये। मन की उत्ताल तरगे ठहर न पायी और वह सती-साध्वी के समक्ष भी काम की भीख मॉगने लगा। काम अधा होता है। काम बहरा होता है। काम गूगा होता है। काम अविवेक बुद्धि को पैदा कर देता है और राजसी वैभव मे भी आदमी को भिखमगा बना देता है। विजातीय का आकर्षण जबरदस्त होता है। भगवान् ने इस आकर्षण को समाप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य की नवबाड निरूपित कर दी और श्रमण-श्रमणी को उसकी अनुपालना के निर्देश दिये।

वासवदत्ता का मन लालायित है, नैत्र चचल है वीणावादक उदयन का रूप देखने के लिए, लेकिन परदे के उस पार देखे कैसे? वह चितन कर रही है, क्या परदा हटा लूँ? इससे तो मेरी धृष्टता लगेगी तब क्या करूँ, कैसे देखूँ या मेरा अभीष्ट अनिर्दिष्ट रहने दूँ इन्हीं विचारो मे शून्य मन वाली बन गयी और उदयन ने जो सिखाने का प्रयास किया वह सीख न पाई। तब झुझलाकर उदयन बोला—अरे ! नेत्रहीना ! तू अमनस्क होकर गधर्व कला को नहीं सीखने से गधर्व कला का विनाश कर रही है।

वासवदत्ता (तुनक कर)—अरे कुष्ठी ! क्या तू नहीं देख रहा है कि मैं नैत्रहीन नहीं हूँ।

तब वत्सराज ने चितन किया कि ऐसा लगता है कि चण्डप्रद्योतन ने मुझे गुमराह किया है। यह लडकी एकाक्षी नही है। परदा हटा देना चाहिए। यकायक परदा हटने पर उदयन ने देखा, अरे ! सर्वांगसुन्दरी, मृगनयनी, चन्द्रवदना, अधर किसलय रागरूपा कृशागी यौवन की देहली पर अत्यन्त रमणीय लग रही है।

वासवदत्ता ने देखा, रूप और सौन्दर्य मे कामदेव को भी परास्त करने वाला, सर्वांगसुन्दर यह युवक अतिकमनीय लग रहा है। अत वह क्षमायाचना करती है कि मैंने मेरे पिता के कहने से तुमको कुष्ठी कहा, अत तुम क्षमा करना।

उदयन—मैंने भी तुम्हारे पिता के कहने से एकाक्षी कहा, तुम भी क्षमा करना।

वासवदत्ता—तुम कौन?

उदयन—मैं कौशाम्बी नरेश उदयन।

वासवदत्ता—उदयन ! उदयन ! तुम-सा और कोई मुझे कहाँ मिलेगा?

उदयन—धैर्य धारण करो। अभी कला तो सीख लो। यो कहकर कला सिखाने का कार्य प्रारम्भ करता है।

अब दोनो कला सिखाने-सीखने का कार्य कर रहे हैं, परन्तु वासवदत्ता का मन उदयन पर समासक्त हे। वह उदयन के समक्ष पुन-पुन प्रणय निवेदन प्रस्तुत

करती है। तब एक दिन उदयन उसकी प्रणयवार्ता पर अनुग्रह करते कहता है–देवी! अभी तो यहीं रहना योग्य है, अवसर आने पर मैं तुम्हारा हरण करूँगा।

वासवदत्ता का मन आश्वस्त बन गया और वह मन की लालसाओ से उदयन के करीब होती चली गयी। उसकी विश्वासपात्र दासी कचनमाला उनके इन सम्बन्धो को जानती थी, लेकिन वह उनको गोपनीय रखने मे अत्यन्त सामर्थ्यवान थी।

सुखद समय निरन्तर व्यतीत हो रहा था। एक दिन उज्जयिनी के रत्न अनलगिरी हाथी के कपोलो से मद झरने लगा। वह उसमे इतना मदोन्मत्त बन गया कि उसने बधन तोडकर महावतो को गिरा दिया। वह तीव्रगति से बेतहाशा इधर-उधर दौडता हुआ नगरजनो को अतीव क्षुब्ध करने लगा। पूरे नगर मे हाथी के कारण कुहराम मच गया। प्रद्योतन चिन्ताग्रस्त हो अभयकुमार के पास गया और बोला–अभयकुमार ! अनलगिरी हाथी बडा कुहराम मचा रहा है। पूरा नगर उसके आतक से त्रस्त है, उसको वश मे कैसे करूँ?

अभयकुमार–राजन् ! उदयन और वासवदत्ता हाथी पर बैठकर वीणावादन करेगे, तो वह शीघ्र ही वश मे हो जायेगा।

प्रद्योतन उदयन को आदेश देता है कि तुम वासवदत्ता के साथ हस्ती पर बैठकर वीणावादन से अनलगिरी को वश मे करो।

उदयन और वासवदत्ता हाथी पर आरूढ होकर वीणावादन करते हैं जिससे लुब्ध बना वह हस्ती स्तब्ध बनकर शात-प्रशात बन जाता है। राजा अभयकुमार से कहता है–तुमने मेरे आपत्ति के मेघो को अपनी पैनी प्रज्ञा की मरीचियो से छिन्न-भिन्न कर दिया, अत कैद रियायत के अतिरिक्त अन्य कोई वरदान माँगो। तब अभयकुमार कहता है, आप इसे धरोहर के रूप मे सुरक्षित रखे।

प्रद्योतन शात-प्रशात बना राज्य सचालन मे लग जाता है। एक दिन राजा प्रद्योतन नगर मे उत्सव होने से अन्त पुर-परिवार सहित महर्द्धिक नगर-जनो के साथ उद्यान मे गया। वह वहाँ महोत्सव मे आनन्द की डुबकियाँ लगाने लगा।

इधर राजा उदयन का मत्री यौगन्धरायण उदयन की कैद मुक्ति का उपाय सोचने लगा और उसी उधेडबुन मे वह वेश बदलकर उज्जयिनी आ पहुँचा। प्रात काल उषा की किरण ने जैसे ही जमीन पर लालिमा बिखेरी उसने अपने बुद्धि वैभव से जान लिया कि आज मेरे राजा उदयन की कैद-मुक्ति हो जायेगी। अतएव वह जहाँ चण्डप्रद्योतन था, वहाँ आया और अपने भीतरी उद्वेग को वाहर निकालता हुआ बोला–"मृगनयनी स्त्री को मेरे राजा के लिए हरण करके न ले जाऊँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।" जैसे ही अजनवी व्यक्ति से यह सुना, चण्डप्रद्योतन ने तीक्ष्ण कटाक्ष से भौंहें तिरछी करके उसको देखा। तव यौगन्धरायण ने समझ लिया कि राजा कुपित हो गया है अतएव अपनी सुरक्षा के लिए उसने

वस्त्रादि खोलकर प्रेत चेष्टा आकृति बनाकर ऐसी चेष्टा की मानो वह पिशाच हो, तब राजा ने उसे पिशाचग्रसित जानकर अपना कोप शात कर लिया।

चण्डप्रद्योतन उद्यान मे चहुँ ओर सुरभित वातावरण देखकर चचल चित्त वाला बन चुका था। उसने अब कामदेव रूपी उन्मत्त हस्ती को उत्तेजित करने के लिए गधर्व गोष्ठी प्रारम्भ की और गधर्व विद्या की नवीन कुशलता देखने हेतु राजा ने उदयन और वासवदत्ता को भी वहॉ आमत्रित किया।

प्रद्योतन के आमत्रण को प्राप्त कर वत्सराज उदयन ने वासवदत्ता से कहा–सुन्दरी ! आज वेगवती हथिनी के ऊपर बैठकर कौशाम्बी भाग जाने का समय आ गया है। वासवदत्ता अपने मनोवाछित शब्दो को श्रवण कर वेगवती हथिनी को शृगारित करवा कर उसे बुलवाती है।

जब उस हथिनी को बॉधने लगते है तब वह हथिनी जोर से गर्जना करती है। उसी समय एक प्रज्ञाचक्षु ज्योतिषी वहॉ मौजूद था। हथिनी की गर्जना श्रवण कर वह कहता है कि यह हथिनी बॉधने से गर्जना कर रही है। अत यह सौ योजन जाने के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हो जायेगी।

उदयन और वासवदत्ता को सौ योजन ही जाना था। वे इस बात से आश्वस्त हो गये कि हथिनी सौ योजन तक चलेगी ही चलेगी। तब उदयन की आज्ञा से बसन्त महावत ने हथिनी के दोनो तरफ उसी के मूत्र के चार घडे बॉध दिये और वत्सराज उदयन, घोषवती, वासवदत्ता, कचनमाला धाय एव बसन्त महावत–ये पॉचो जने वेगवती हथिनी पर आरूढ होकर, सभी को बोलकर जाने लगे कि हम वासवदत्ता का हरण करके ले जा रहे हैं क्योकि वीर क्षत्रिय अपने भुजबल पर विश्वास रखते है। वे गुप्तरीति से भागकर नहीं जाते।

जैसे ही प्रद्योतन के कानो तक यह खबर पहुँची वह हाथ मलने लगा ओर उसने अनलगिरी हाथी को तुरन्त तैयार करवाकर उस पर महायोद्धा को बिठाकर उदयन के पीछे रवाना किया। इधर उदयन को पता था कि अनलगिरी हाथी आने वाला है, वह पहले से ही सतर्क था कि 25 योजन पार करने पर अनलगिरी हाथी, वेगवती हथिनी के नजदीक आ गया। उदयन ने अनलगिरी को देखा और हथिनी के मूत्र का एक घडा उसने पृथ्वी पर डाल दिया। अनलगिरी हाथी उसे सूघने लगा। कई देर तक मशक्कत करने पर भी वह हाथी वहाँ से आगे नहीं गया। बडी मुश्किल से खूब देर के पश्चात् महावत ने उस हाथी को हॉका, फिर वेगवती हथिनी 25 योजन चली और अनलगिरी पास मे आया तो उदयन ने एक घडा फिर फोडा, जिससे वह हाथी फिर उस मूत्र को सूघता हुआ वही खड़ा रहा। इस प्रकार पच्चीस-पच्चीस योजन पर एक-एक घडा फोड कर अनलगिरी हाथी की गति को रोककर सौ योजन चलकर कौशाम्बी नगरी मे

प्रवेश किया। वेगवती हथिनी ने वहाँ प्रवेश करने के पश्चात् प्राणो का उत्सर्ग किया। अनलगिरी से युद्ध करने के लिए कौशाम्बी की सेना आई जितने मे महावत और वह महायोद्धा अनलगिरी हाथी को लेकर पुन लौट गये।[xxxiv]

प्रद्योतन वासवदत्ता के लौटने का इतजार कर रहा था लेकिन वह अनलगिरी हाथी को वासवदत्ता से रहित लौटते देखता है। वह यमराज जैसा अत्यन्त कोपायमान होकर युद्धभेरी बजवा देता है। तब कुलमत्री राजा के पास आकर निवेदन करता है–राजन् ! अब युद्ध करने मे क्या सार है? तुम्हे अपनी कन्या को किसी योग्य वर को ही देना था, तब वत्सराज से अधिक योग्य तुम्हे कौन मिल पायेगा? तिस पर भी तुम्हारी स्वय की दुहिता ने वत्सराज का वरण किया है। अतएव युद्ध की बजाय वत्सराज को जमाता मान लेना उचित है। प्रद्योतन का आवेश यह सुनकर शांत हो गया और उसने उदयन को जॅवाई मानकर बहुत भेट भिजवाई।

अभय का राजगृह गमन :

एक बार उज्जयिनी मे भयकर महामारी फैलने लगी। उसकी शाति के लिए चिन्तित बने प्रद्योतन ने अभयकुमार से महामारी शाति हेतु उपाय पूछा, तब अभयकुमार ने बतलाया कि तुम अपने अन्त पुर मे जाओ और विभूषित हुई जो महारानी तुम्हारी दृष्टि जीत ले, उसका नाम मुझे बतलाओ। अभयकुमार के कहने पर चण्डप्रद्योतन ने वैसा ही किया, वहाँ जाने पर शिवादेवी ने उसकी दृष्टि को जीत लिया। तब प्रद्योतन ने आकर अभयकुमार को शिवादेवी का नाम बतलाया।

अभयकुमार ने कहा–महारानी शिवादेवी अपने हाथ के क्रूर (धान्य के बाकले) का बलिदान कर भूतो की पूजा करे। वे भूत सियाल के रूप मे सामने आये अथवा आकर बैठे।[xxxv] उनके मुख मे शिवादेवी अपने हाथ से क्रूर बलि देवे तो महामारी तुरन्त शात हो जायेगी।

तब प्रद्योतन ने महारानी शिवादेवी से वैसा ही करवाया और महामारी शात हो गयी। तब प्रद्योतन ने अभयकुमार से कहा–वरदान माँगो। अभयकुमार ने वरदान माँगा–''राजन् ! तुम अनलगिरी हाथी पर महावत बनकर बैठो ओर मैं शिवादेवी की गोद मे पीछे बैठूँ। तत्पश्चात् अग्निभीरु रथ को तोडकर उसके लकडी की चिता बनाओ और आप और हम सब उसमे प्रवेश करे।

तब यह वरदान पूर्ण करने मे प्रद्योतन सफल नहीं हुआ ओर उसने अभयकुमार को मुक्त करके राजगृह की तरफ विदा किया। विदा होते समय अभयकुमार ने प्रतिज्ञा की कि तुमने तो छल से पकडकर मुझे बुलाया हे, लेकिन मैं दिन-दहाडे 'प्रद्योतन का हरण कर रहा हूँ'–ऐसा बोलता हुआ तुम्हारा हरण करूँगा। ऐसा कहकर अभयकुमार राजगृह नगर आया ओर बुद्धि से कितना ही समय व्यतीत किया।

एक दिन अभयकुमार वणिक् का वेश बनाकर गणिका की दो रूपवती पुत्रियो को लेकर उज्जयिनी आया और राजमार्ग पर एक घर किराये लेकर रहने लगा। एक दिन प्रद्योतन उस मार्ग से गुजरा। उसने विलासपूर्वक उन दो गणिका-पुत्रियो को देखा और उनके रूप पर मुग्ध हो गया। दूसरे ही दिन प्रद्योतन ने एक दूती उन दो रमणियो के पास भेजी। उस दूती ने उन दोनो रमणियो को प्रद्योतन के महल मे चलने का अत्यन्त आग्रह किया, लेकिन दोनो गणिका-पुत्रियो ने उस दूती का तिरस्कार करके वहाँ से विदा कर दिया। दूती ने सारी बात प्रद्योतन से कह डाली। दूसरे दिन भी दूती को प्रद्योतन ने भेजा तो गणिका-पुत्रियो ने उनका कुछ कम तिरस्कार करके विदा कर दिया। तीसरे दिन भी दूती गयी और उसने खेदपूर्वक उन गणिका-पुत्रियो से मगनी की तब उन्होने कहा कि यह सदाचारी भ्राता हमारी रक्षा करता है। यह सातवे दिन यहाँ से बाहर जायेगा उस समय तुम्हारा राजा गुप्त रीति से यहाँ आये तो मिलन हो सकता है। दूती ने यह बात राजा से कही तो राजा प्रतिक्षण सातवे दिन का इतजार करने लगा।

इधर अभयकुमार ने राजा जैसे रूप-लावण्य वाले एक मनुष्य को पागल बनाते हुए उसका नाम प्रद्योतन रख दिया और उसे अपना भाई बता दिया। वह उसका इलाज करवाने के लिए प्रतिदिन मचान पर बाँधकर वैद्य के घर ले जाता। रास्ते मे वह व्यक्ति आँखो मे आँसू बहाते हुए रोज चिल्लाता—मैं प्रद्योतन हूँ, मेरा यह हरण कर रहा है। लोग अभयकुमार से पूछते कि तुम इसे कहाँ ले जा रहे हो? तो वह बतला देता कि यह मेरा भाई पागल हो गया है, उसका इलाज करवाने वैद्य के ले जा रहा हूँ।

यो करते छ दिन व्यतीत हो गये। सातवे दिन प्रद्योतन गुप्त रीति से वहाँ मिलने के लिए आया और उस कामान्ध को अभयकुमार ने बाँध दिया और मचान पर बाँधकर वैद्य के घर ले जाने के बहाने से हरण करने लगा। तब दिन-दहाडे हरण होने से वह प्रद्योतन चिल्ला रहा था कि मैं प्रद्योतन हूँ, मेरा हरण हो रहा है, परन्तु जनता ने पागल समझकर उस पर ध्यान नहीं दिया और अभयकुमार ने उसका हरण कर एक कोश पर जो रथ तैयार थे उसमे विठाकर राजगृह पहुँचा दिया।

तब राजा श्रेणिक, जो प्रद्योतन से बडे क्षुब्ध थे, तलवार खीचकर उसका वध करने लगे। इतने मे अभयकुमार ने श्रेणिक से कहा कि वधन मे वँधे हुए का वध नहीं करना चाहिए। इस प्रकार समझा-वुझाकर शात कर दिया और वस्त्राभरण से सुसज्जित कर ससम्मान प्रद्योतन को विदा किया।

इधर अभयकुमार के आने से राजगृह का भाग्य सितारा अपनी वुलन्दी पर हो गया। वहाँ खुशी की लहर-सी व्याप्त हो गयी।

अनुत्तरज्ञान चर्या का तृतीय वर्ष

टिप्पणी

I वैशाली

मुजफ्फरपुर जिला मे जहाँ आज बेसाढपट्टी गॉव है, वहीं पहले महावीर के समय की विदेह देश की राजधानी वैशाली नगरी थी। वैशाली और वाणिज्यग्राम की निश्रा मे भगवान् महावीर ने कुल बारह वर्ष चातुर्मास्य व्यतीत किये थे। वैशाली जैन धर्म के प्रमुख केन्द्रो मे से एक थी। यहाँ का राजकुटुम्ब तथा नागरिकगण भी अधिकाश जैन थे। यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थकारो ने इस नगरी को "पाखडियो का अड्डा" कहा है। नक्शे के अनुसार वैशाली चम्पा से वायव्य दिशा मे साढे बारह मील और राजगृह से लगभग उत्तर मे सत्तर मील की दूरी पर थी।

II वत्स

कोशल के दक्षिण और आधुनिक इलाहाबाद के पश्चिम तरफ का प्रदेश पूर्वकाल मे वत्स देश कहलाता था। इसकी राजधानी कौशाम्बी जमुना नदी के उत्तर तट पर अवस्थित थी। यहाँ का राजा शतानीक और उसका पुत्र उदयन महावीर का भक्त था।

III उत्तरकोसल

फैजावाद, गौंडा, बहराइच, बाराबकी के जिले तथा आसपास का कुछ भाग, अवध, बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ और जौनपुर जिलो का कुछ भाग उत्तर कोसल अथवा कोसल जनपद कहलाता है। महावीर के समय मे इसकी राजधानी श्रावस्ती थी।

IV स्वर्णमुद्रा

सोनेया-सोलह मासा स्वर्णमान का होता था।

डॉ ज्योतिप्रसाद जैन, प्रसिद्ध ऐतिहासिक जैन पुरूष और महिलाएँ, पृ 22

V स्वर्णमुद्रा

उस समय हिरण्यनाम की मुद्रा प्रचलित होगी यह शुद्ध सोने की थी। इसका तौल 32 रत्ती होता था। उत्तरकाल मे शको ने इसे ही दीनार रूप मे प्रचलित किया।

उपासकदशाग, आचार्य श्री आत्माराजी म सा

VI गोकुल

दस हजार गाये रहती थी, उस स्थान को गोकुल कहते है।

VII मेढीभूत

मेढी उस काष्ठदण्ड को कहते हैं, जो खलिहान के वीच गाड दिया जाता है और गेहूँ आदि धान्य निकालने के लिए वैल जिसके चारो ओर घूमते हैं।

आनन्द को मेढी बताया गया है, वह समस्त कार्यो के लिए केन्द्रभूत था, उसी को मध्य मे रखकर अनेक लौकिक अनुष्ठान किये जाते थे।

उपासकदशाग, आचार्य श्री आत्मारामजी म सा , पृ 11

VIII लक्षण व्यंजन

लक्षण–सौभाग्य सूचक हाथ की रेखाएँ आदि।

व्यंजन – उत्कर्ष सूचक तिलक मिस आदि चिह्न।

IX अनुरागशील

यहाँ शिवानन्दा की योग्यता बतलाने के लिए सूत्रकार ने शब्द दिया है "अनुरक्ता" उसकी व्याख्या करते हुए कहा है–

"घर कम्म बावडा जा, सत्व सिणेहप्पवडढणी दक्खा।
छाया विव भत्तणुगा, अणुरता सा समकखाया।"

जो स्त्री धर के काम–काज मे रहती है, सबका स्नेह बढाने वाली तथा चतुर होती है एव छाया की तरह पति की अनुगामिनी होती है, उसे शास्त्रो मे अनुरक्ता कहा गया है।

X अनुकूल

शिवनन्दा का दूसरा विशेषण दिया गया है, 'अविरक्ता'। इसकी व्याख्या करते हुए कहा है

पडिऊले विय भत्तरि, किंचिवि रूट्ठण जा टवइ।
जाउ मिउ भासिणी य, णिच्चं सा अविरत्तत्तिणिदिट्ठा।।

पति के प्रतिकूल होने पर भी जो स्त्री तनिक रोष नही करती, सदा मधुर वाणी बोलती है, अविरक्ता कही गयी है।

XI अर्धमागधी

अर्धमागधी की विशेषता बतलाते हुए कहा है –

हृदय मे विस्तृत होती हुई, कठ मे अवस्थित होती हुई तथा मूर्धा मे परिव्याप्त होती हुई, सुविभक्त अक्षरो को लिए हुए पृथक–पृथक स्व–स्व स्थानीय उच्चारण युक्त अक्षरो सहित अस्पष्ट उच्चारण वर्जित हकलाहट रहित, वर्णो की व्यवस्थित श्रृखला लिए हुए पूर्णता एव स्वर माधुरी युक्त श्रोताओ की सभी भाषा मे परिणत होने वाली वाणी द्वारा एक योजन तक पहुँचने वाले स्वर मे अर्धमागधी भाषा मे धर्म का आख्यान किया।

उपासकदशाग, युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी म सा

XII परिषद्

परिषद् की परिभाषा करते हुए टीकाकारो ने कहा है – परिसर्वतोभावेन सीदन्ति – उपविशन्ति – गच्छन्ति वा जना यस्या सा परिषत् अर्थात जिस स्थान पर लोग विचार, विनिमय करने के लिए जाते हैं, उसका नाम परिषद् है।

यह तीन प्रकार की होती है –

1 ज्ञा परिषद् – निपुण बुद्धि सम्पन्न, विचारशील, गुणदोष को जानने वाली दीर्घदर्शी एव उचित अनुचित का विवेक करने वाली ज्ञा परिषद् होती है।

2 अज्ञा परिषद् – अज्ञानी किन्तु विनयशील तथा शिक्षा मानने मे तत्पर जिज्ञासुओ की सभा, अज्ञा परिषद् होती है।

3 दुर्विदग्धा परिषद् – मिथ्या अहकार से युक्त, तत्त्वबोध से रहित एव दुराग्रही व्यक्तियो की सभा दुर्विदग्धा परिषद् कही जाती है।

XIII स्वर्णमुद्रा (कार्षापण)

कार्षापण प्राचीन भारत मे प्रयुक्त एक सिक्का था। वह सोना–चॉदी व ताबा इन अलग–अलग तीन प्रकार का होता था। प्रयुक्त धातु के अनुसार वह स्वर्णकार्षापण, रजतकार्पाषण, ताम्रकार्षापण कहा जाता था। स्वर्ण कार्षापण का वजन 16 मासे, रजत कार्षापण का वजन 16 पण (तोल–विशेष) और ताम्र, कार्षापण का वजन 80 रत्ती होता था।

सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी–सर मोनियर विलियम्स, पृ 176

XIV हल

हल उस समय का पारिभाषिक शब्द है। 40,000 वर्ग हस्त भूमि का एक निवर्तन होता है तथा 100 निवर्तन का एक हल। निवर्तन का अर्थ हे, हल चलाते हुए बैलो का मुडना।

डॉ जगदीशचन्द्र जैन ने "लाइफ इन एशेट इण्डिया" पुस्तक मे (पृष्ठ 90 पर) एक हल एक एकड के बराबर बतलाया है।

अभयदेवसूरि ने भी दो सौ हाथ लम्बी और दो सौ हाथ चौडी अर्थात् 200X200=40,000 वर्ग हस्त भूमि को एक निवर्तन बीघा कहा हैं तथा 100 निवर्तन एक हल होता है। लीलावती गणित शास्त्र मे बतलाया है कि दस हाथ एक वास ओर बीस बास का एक निवर्तन होता है।

सर मोनियर विलियम्स ने सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी पृ. 560 पर भी 40,000 वर्ग हस्त का एक निवर्तन माना है।

XV उपभोग परिभोग

वार–बार सेवन किया जाये वह उपभोग–भवन, वस्त्र, वनिता आदि। परिभोग एक बार सेवन किया जाये वह परिभोग – आहार, कुसुम, विलेपनादि।

उपासकदशाग, अभयदेवसूरि, पत्राक – 16

XVI उल्लणिया

उल्लणिया शब्द "द्रू" या "लू" धातु से बना है। "द्रू" का अर्थ है गीला

करना। उत् उपसर्ग लगने से अर्थ हो जाता है गीलेपन को हटाना। "लू" धातु का अर्थ हटाना या छीनना। इसी से लूपण, लूषक आदि शब्द बनते है। इस विषय मे वृत्तिकार कहते हैं – उल्लणियत्ति स्नान जलार्द्रशरीरस्य जललूषणवस्त्रम् अर्थात् स्नान के पश्चात् गीले शरीर को पोछने वाला तौलिया।

उपासकदशाग, अभयदेवसूरि, पत्राक–16

XVII फलविधि

दूधिया ऑवला जिसमे गुठली नहीं पडी हो। प्राचीन समय मे इसका उपयोग सिर एव ऑखे धोने के लिए किया जाता था–

अभयदेववृत्ति, पत्राक 16–17

XVIII शतपाक

1 जिस तैल को सौ वस्तुओ के साथ सौ बार पकाया जाये अथवा जिसका मूल्य 100 कार्षापण हो, उसे शतपाक कहते हैं।

IXX सहस्रपाक

1 जिस तैल को हजार वस्तुओ के साथ हजार बार पकाया जाये या जिसका मूल्य हजार कार्षापण हो उसे सहस्रपाक कहते हैं।

अभयदेववृत्ति, पत्राक 17

XX घी

आनन्द श्रावक ने मात्र शरद ऋतु मे गोघृत रखा शेष सबका परित्याग कर दिया। उसका मूल कारण स्वास्थ्य का दृष्टिकोण है। आयुर्वेद के अनुसार शरद ऋतु की किरणो से अमृत–जीवन रस टपकता है, जिससे वनस्पतियो मे, घासादि मे विशेष रस का सचार होता है। इस समय घासादि को चरने वाली घायो का घी गुणात्मक होता है।

ताजा घी पाचन मे भारी होता है जबकि एक वर्ष पुराना घी गुणात्मक होता है। वह अखाद्य नहीं होता है। भावप्रकाश घृत वर्ग 15 मे उल्लेख मिलता है कि एक वर्ष पुराना घी वात, पित, कफनाशक होता है। वह मूर्च्छा, कुष्ट, विष–विकार, उन्माद, अपस्मार तथा ऑखो के सामने अधेरी आना आदि दोषो का नाशक होता है। चरक सहिता मे पुराना घी औषधि रूप मे भी प्रयुक्त होता है, ऐसा लिखा हे।

XXI 26 बोल

उपासकदशाग सूत्र मे 21 बोल की मर्यादा का वर्णन है। वाहणविहि, उवाहणविहि, सयणविहि, सचित्तविहि और दव्वविहि ये पॉच बोल धर्मसग्रह मे श्रावक के 14 नियमो मे है। श्रावक प्रतिक्रमण के सातवे व्रत मे 26 बोलो की मर्यादा की परिपाटी है इसलिए 5 बोलो का विवेचन इस प्रकार जानना चाहिये–

1 वाहणविहि – जिन पर चढकर भ्रमण या प्रवास किया जाता ह,

ऐसी सवारियो की मर्यादा करना।

2 **उवाहणविहि** – पैर की रक्षा के लिए पहने जाने वाले जूते, मोजे आदि की मर्यादा करना।

3 **सयणविहि** – सोने और बैठने के काम मे आने वाले शय्या, पलंग आदि पदार्थों की मर्यादा करना।

4 **सचित्तविहि** – सचित्त पदार्थों की मर्यादा करना।

5 **दव्वविहि** – खाने–पीने आदि के काम मे आने वाले सचित्त या अचित्त पदार्थों की मर्यादा करना।

जो वस्तु स्वाद की भिन्नता के लिए अलग–अलग खाई जाती है अथवा एक ही वस्तु स्वाद की भिन्नता के लिए दूसरी वस्तु के सयोग के साथ खाई जाती है उसकी गणना भिन्न–भिन्न द्रव्यो मे होती है।

धर्मसग्रह अधिकार 2, प्र 8, श्लोक 34 की टीका–उदधृत जैन सिद्धान्त बोल सग्रह, भाग 6, पृ 227

XXII अनर्थदण्ड

अनर्थदण्ड की व्याख्या करते हुए अभयदेव सूरि ने कहा है कि धर्म, अर्थ और काम किसी भी प्रयोजन के बिना जो दण्ड अर्थात् हिसा की जाती है उसे अनर्थ दण्ड कहते हैं। श्रावक को ऐसा अनर्थदण्ड नही करना चाहिये, जिसमे उसका कोई भी लाभ नही और व्यर्थ मे ही दूसरो को हानि पहुँचे। यथा–

1 **अपध्यानाचरित** – आर्त्तध्यान और रौद्र ध्यान का चितन करना अपध्यानाचरित है।

2 **प्रमादाचरित** – प्रमादवश पाप रूप विकथा करना एव तेल, घी, दूध, दही को ढकने मे प्रमाद करना।

3 **हिंस्रप्रदान** – हिसाकारी शस्त्र चाकू, छुरी, मूसल आदि शस्त्र दूसरो को देना।

4 **पापकर्मोपदेश** – अग्नि जलाओ, मारो इत्यादि पाप कर्म का उपदेश देना।

XXIII अतिचार

कोई शका करता है कि अतिचार सर्वविरति के लिए हे और देशविरति के लिये तो भग ही हैं। कहा है कि "सर्वेऽपि चातिचारा सज्वलनानामुदयतो भवन्ति। मूलच्छेद्य पुनर्भवति द्वादशाना कषायाणाम् अर्थात् सब अतिचार सज्वलन कषाय के उदय से लगते हे ओर प्रत्याख्यानादि वारह प्रकार के कषायो के उदय से तो मूलव्रत का भग हो जाता है। इसका समाधान करते हैं कि उक्त गाथा सर्वविरति के अतिचार और भग वतलाने के लिये है परन्तु देशविरति आदि के अतिचार ओर

भग बतलाने के लिये नहीं है ऐसा इस गाथा की वृत्ति मे कहा है—सज्वलन कषाय के उदय से सर्वविरति को अतिचार लगते है किन्तु व्रतभग नही होता और प्रत्याख्यानावरण आदि कषायो के उदय मे पश्चानुपूर्वी के क्रम से सर्वविरति आदि के व्रत का भग होता है। इस प्रकार व्याख्या होने से देशविरति के व्रत का भग नहीं होता है परन्तु अतिचार होते हैं। जैसे चतुर्थ सज्वलन कषाय के उदय मे यथाख्यात चारित्र का भग होता है परन्तु दूसरे चारित्र और सम्यक्त्व का भग नहीं होता, परन्तु अतिचार होते हैं। जैसे—चतुर्थ सज्वलन कषाय के उदय मे यथाख्यात चारित्र का भग होता है परन्तु दूसरे चारित्र और सम्यक्त्व का भग नहीं होता। किन्तु अतिचार होते हैं या निरतिचार भी हो सकता है। तीसरा प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से सर्वविरति के सरागचारित्र का भग होता है परन्तु देशविरति के देशविरति और सम्यक्त्व का भग न होकर ये दोनो सातिचार या निरतिचार होते हैं। दूसरा अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से देशविरति का भग होता है परन्तु सम्यक्त्व भग न होकर वह सातिचार या निरतिचार होता है। प्रथम अनन्तानुबधीकषाय के उदय से सम्यक्त्व का भग होता है इस प्रकार पूर्वानुक्रम से कषायो के उदय से व्रत का भग और पश्चानुक्रम से सातिचार या निरतिचार होते हैं। यहॉ कोई शका करता है कि सम्यक्त्वादि के एक—एक देश से भग होने से अतिचारो का जपरूप प्रायश्चित कहा और सब कषायो के उदय से मूलव्रत का भग कहा यह क्यो? अनन्तानुबधी आदि बारह कषाय सर्वघाती है और संज्वलन कषाय देशघाती है इसलिये सर्वघाती के उदय से मूलव्रत का भग और देशघाती के उदय से अतिचार कहा। यह कहना सत्य है परन्तु अनन्तानुबधी आदि बारह कषाय सर्वघाती है यह सर्वविरति की अपेक्षा से है ऐसे शतक चूर्णिकार ने व्याख्या की है लेकिन सम्यक्त्व आदि की अपेक्षा से नही की है। कहा है कि "भगवत्प्रणीत पचमहाव्रतमय अष्टादशशीलाङ्गसहस्त्र कालित चारित्र घातयन्तीति सर्वघातिन" सर्वघाति कषाय श्रमण भगवान् से कहा हुआ पञ्चमहाव्रतरूप और अठारह हजार शीलागयुक्त चारित्र का नाश करता है किन्तु यहॉ पर पहले कही हुई "यादयो यति भेदो" इत्यादि गाथा के सामर्थ्य से अतिचार और भग ये देशविरति और सम्यक्त्व के लिए है, ऐसा समझना चाहिए।

शका—व्रत मे उपेक्षा करता हुआ व्रती क्रोधित होकर प्राणी को ताडना, तर्जनादि करे तो उसको अतिचार लगता है या नहीं? क्योकि उसने व्रत तो जीव को जान से नहीं मारने का लिया है और ताडन तर्जन आदि से प्राणी मरता नहीं है, तो अतिचार कैसे लग सकता हे?

उसका समाधान करते है कि जीव प्राण से मुक्त न होने पर भी व्रती जब क्रोध युक्त होकर दया से रहित हो जाता है तब व्रत का एक देश भग होता हे, इसलिए अतिचार लगता हे क्योकि व्रत का एक देश भग होना ही अतिचार हे।

ऐसे सब व्रतो मे इसी प्रकार से सुज्ञजन समझ लेवे।

उपासकदशाक, अभयदेव टीका, पृ 27

XXIV "क्षेत्रवास्तु प्रमाणातिक्रम"

धान्योत्पत्ति की जमीन को क्षेत्र (खेत) कहते है। वह दो प्रकार का होता है – सेतु और केतु

अरघट्टादि जल से जो खेत सीचा जाता है, वह सेतु क्षेत्र है। वर्षा का पानी गिरने पर जिसमे धान्य पैदा होता है, वह केतु क्षेत्र कहलाता है। घर आदि को वास्तु कहते है। भूमिगृह (भोयरा) प्रासाद और भूमि के ऊपर बना हुआ घर या प्रासाद वास्तु है।

हरिभद्रीय आवश्यक, पत्राक 826, धर्मसग्रह, अधिकार 2, पृ 105 से 07

XXV दासों के नाम

निशीथ चूर्णि (11 3676) मे गर्भदास, क्रीतदास अऋण (ऋण न दे सकने के कारण) दास, दुर्भिक्षदास, सापराध–दास और रूद्धदास (कैदी) के उल्लेख मिलते हैं।

XXVI दिग्व्रत–दिशाव्रत

यद्यपि व्रत ग्रहण के प्रसग से दिग्व्रत एव शिक्षाव्रतो के ग्रहण का उल्लेख नही है तथापि आनन्द श्रावक ने पूर्व मे कहा था कि मैं बारह प्रकार के श्रावक व्रत ग्रहण करना चाहता हूँ और बाद मे भी वर्णन मिलता है कि उसने बारह प्रकार के श्रावक व्रतो को ग्रहण किया। इसलिए उल्लेख न होने पर भी उनका ग्रहण समझना चाहिये।

सामायिक आदि शिक्षाव्रत एव दिग्व्रत स्वल्पकालीन होने से प्रतिनियत समय मे ही करने के है इसलिए व्रत लेते समय स्वीकृत नही किये, किन्तु बाद मे अवश्य स्वीकार किया होगा।

उपासकदशाग, अभयदेववृत्ति, पत्राक 38

XXVII स्फोटनकर्म

धीरजलाल टोकर शी शाह ने भी खेती को सर्वोत्तम व्यवसाय माना है, उसने खेती को व्यापार का आधार भी माना है।

महावीर के दस श्रावक, धीरजलाल टोकर शी शाह

कृषि स्फोटन कर्म नही है क्योकि खेती मे भूमि कुरेदी जाती है, फोडी नही। कृष् धातु कुरेदने अर्थक विख्यात है। आनन्द आदि श्रावक स्वय खेती करते। वह पन्द्रह कर्मादान का सर्वथा त्यागी था। अतएव शास्त्रीय प्रमाण से खेती कर्मादान नही है।

विशेष विवरण के लिए देखिये, जिणधम्मो, अहिसा विवेक।

आचार्य हेमचन्द्र ने भी कृषि को कर्मादान नही माना है उन्होने अपने योग

शास्त्र मे स्फोटन कर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि

सरः कूपादि खनन–शिला कुट्टन कर्मभिः।
पृथित्यारम्भ संभूते जीवनं स्फोट जीविका।

अर्थात् तालाब, कुएँ आदि खोदना, शिला कुट्टन आदि से पृथ्वीकाय का आरम्भ समारम्भ करना स्फोटन कर्म है।

XXVIII पौषध

पौषध के निमित्त दोष – (1) सरस आहार करना (2) अब्रह्म सेवन करना, (3) केश नख काटना, (4) वस्त्र धुलाना, (5) शरीर मण्डन करना, (6) सरलता से न खुलने वाले आभूषण पहनना।

पौषध ग्रहण करने के पश्चात् लगने वाले दोष –

1 पौषध के पूर्व दिन ठूस–ठूस खाना। 2 पौषध मे प्रवेश करने से पूर्व नख–केश आदि की सजाई करना। 3 पौषध के पूर्व दिन मैथून सेवन करना। 4 पौषध के विचार से वस्त्रादि धोना–धुलवाना। 5 पौषध करने के लिए शरीर की स्नानादि विभूषा करना। 6 पौषध की निमित आभूषण पहनना। 7 अविरती मनुष्य से अपनी सेवा करवाना। 8 शरीर का मैल उतारना। 9 बिना पूजे खाज खुजलाना। 10 दिन मे और प्रहर रात गये के पूर्व नीद लेना तथा रात्रि के पिछले प्रहर उठकर धर्म–जागरण नहीं करना। 11 बिना पूजे परठना। 12 निदा विकथा करना, हसी–ठट्ठा करना–कराना। 13 सासारिक विषयो की चर्चा करना। 14 स्वय डरना या दूसरो को डराना। 15 क्लेश करना। 16 अयतना से बोलना। 17 स्त्री के अगो–पांग निरखना, मोहक दृश्य देखना, मोहक राग सुनना, सुगन्ध सूघना आदि। 18 सासारिक सम्बन्ध से किसी को पुकारना। इन 18 दोषो से रहित पौषध करना चाहिये।

XXIX संलेखणा

सलेखणा आत्मघात नही है, क्योंकि आत्मघात क्रोधादि कषायो के उदय से होता है जबकि सलेखणा स्वेच्छापूर्वक किया गया समाधिमरण है। आत्मघात तो पुष्ट शारीरिक स्थिति मे भी होता है जबकि सलेखणा शरीर के, जब टिकने की स्थिति नहीं लगती, तब होती है।

XXX दानयोग्य 14 वस्तुएँ

1 अशन – खाये जाने वाले पदार्थ रोटी आदि।
2 पान – पीने योग्य पदार्थ जल आदि।
3 खादिम – मिष्टान्न, मेवादि सुस्वादु पदार्थ।
4 स्वादिम – मुख की स्वच्छता के लिए लांग, सुपारी आदि।

5	वस्त्र	–	पहनने योग्य वस्त्र।
6	पात्र	–	काष्ठ, मिट्टी, तुम्बे के बने पात्र।
7	कम्बल	–	ऊनी वस्त्र।
8	पादप्रोञ्छन	–	.पैर पूजने का वस्त्र, रजोहरण।
9	पीठ	–	बैठने योग्य चौकी।
10	फलक	–	सोने योग्य पाटा।
11	शय्या	–	ठहरने के लिए मकान आदि।
12.	सस्तारक	–	बिछाने के लिए घासादि।
13	औषध	–	एक वस्तु से बनी औषधि।
14	भेषज	–	अनेक चीजो के मिश्रण से बनी औषधि।

इनमे से प्रथम आठ पदार्थ दान दाता एक बार लेने के बाद नहीं लौटाते शेष छ पदार्थ साधु उपयोग मे लेकर पुन लौटा भी देते हैं।

आवश्यकसूत्र

XXXI यान

शकट, रथ, यान (गाडी), जुग्ग (गोल देश मे प्रसिद्ध दो हाथ प्रमाण चौकोर वेदी से युक्त पालकी जिसे दो आदमी ढोकर ले जाते हैं।) गिल्ली (हाथी के ऊपर की अबारी जिसमे बैठने से आदमी दिखाई नहीं देता, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार डोली) थिल्ली (प्लाट देश मे घोडे की जीन को थिल्ली कहते हैं। कहीं दो खच्चरो की गाडी को थिल्ली कहते है) शिबिका (शिखर के आकार की ढकी हुई पालकी) स्यन्दमानी (पुरुष प्रमाण लम्बी पालकी) आदि तात्कालीन यान है।

XXXII अभय का हरण

अभय कुमार का हरण कब हुआ, भगवान् के केवलज्ञान के पश्चात् किस वर्ष मे हुआ, इसका उल्लेख नहीं मिलता। यद्यपि त्रिषष्टिशलाकाकार ने अभय कुमार के हरण का उल्लेख किया है लेकिन वहा काल का कोई उल्लेख नहीं तथापि त्रिषष्टिश्लाकाकार ने जो वर्णन किया है उससे इतना स्पष्ट है कि जिस समय उदयन का हरण हुआ उस समय अभय कुमार का हरण हो चुका था।

वत्सराज उदयन का हरण कब हुआ इसके लिए हम महाकवि भास के नाटक प्रतिज्ञा–यौगन्ध रायणम का आश्रय ले सकते है। महाकवि भास के नाटक प्रतिज्ञा–योगन्धरायणम मे उदयन के हरण का वही वृत्तान्त मिलता है जो त्रिषष्टिश्लाकाकार पुरूषकार ने लिखा है। इस नाटक मे भी ऐसा उल्लेख मिलता है कि नकली हाथी बना कर चण्डप्रद्योत ने वत्सराज उदयन का हरण करवाया था। यहा पर उदयन को सहस्रनीक का पौत्र, शतानीक का पुत्र और कौशाम्बी का राजा, गन्धर्व कला का विशारद, वत्सराज बतलाया है। उदयन के हरण के पश्चात राजमाता का विलाप इस बात को द्योतिक

करता है कि उस समय शतानीक की मृत्यु हो चुकी थी। सम्पूर्ण नाटक मे शतानीक का कोई कार्य–कलाप सम्बन्धी उल्लेख नही है तथा उदयन को कौशाम्बी का राजा भी बतलाया है। इससे ध्वनित है कि शतानीक की मृत्यु के पश्चात् ही उदयन का हरण हुआ है। यहा भी अगारवती की पुत्री वासवदत्ता बतलाई है तथा योगन्धरायण का वत्सराज के प्रति प्रेम यहा भी दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार शतानीक की मृत्यु के पश्चात् ही उदयन के हरण का समय मान सकते है। इतिहासज्ञ इस विषय मे और खोज कर अनुगृहीत कर सकते हैं। तत्व तु केवलिगम्यम्

XXXIII दृष्टिविष

जैन कथाएँ भाग 38 मे उपाध्याय पुष्करमुनिजी ने लिखा है कि जब लड्डु के विषय मे अभय कुमार से पूछा तब अभय कुमार ने लड्डुओ को सूघा और सूघकर बतलाया कि लड्डु मे तो विष मिला हुआ है इनको आप पानी मे मिलाकर देखो पता चल जायेगा उसी समय उन लड्डुओं को पानी मे डाला तो पानी नीला हो गया। इस प्रकार अभय कुमार ने लोहजघ के प्राण बचाये।

जैन कथाएँ–38, पृ 96

XXXIV उदयन

प्रतिज्ञा यौगन्धरायण मे उदयन के लिए लिखा है कि वह सप्ततत्री वीणा बजाने वाला था। उसकी घोषवती वीणा को सुनकर मत्त हाथी भी वश मे हो जाते थे, कौशाम्बी उसकी राजधानी थी। मत्री–श्रेष्ठ यौगन्धरायण अपनी पैनी प्रज्ञा के लिए प्रसिद्ध था।

इनके अनुसार भी नकली हाथी बनवाकर प्रद्योतन ने उदयन का हरण किया तथा अगारवती से उत्पन्न वासवदत्ता को शिक्षा के लिए उदयन के पास भेजा, अनलगिरि हाथी को उदयन ने वश मे किया। भद्रवती हथिनी पर बैठकर वासवदत्ता को ले भागा। यौगन्धरायण की वीरता का भी परिचय मिलता है।

ई पू चतुर्थ शताब्दी महाकवि–भास, विष्णुप्रभाकर (सम्पा)
सस्ता साहित्य मडल, प्रकाशन सन् 1961

इसमे शतानीक का वर्णन नहीं है। ऐसा लगता है कि उस समय शतानीक की मृत्यु हो चुकी थी।

XXXV शिवादेवी

जेन कथामाला भाग 38 पृ 98–99 पर लिखा है कि जव अग्नि बुझाने के लिए प्रधोतन ने अभय कुमार से पूछा तव अभय कुमार ने वतलाया कि शिवा देवी यदि भीषण अग्नि पर जल के छींटे मारे तो अग्नि तुरन्त बुझ जायेगी। शिवा देवी ने वेसा ही किया अग्नि वुझ गयी।

अनुत्तरज्ञानचर्या का चतुर्थ वर्ष

अनुरागी मन बना वैरागी

गौतम पृच्छा :

भगवान् महावीर वाणिज्यग्राम का वर्षावास सम्पन्न कर वहाँ के दूतिपलाश चैत्य से विहार कर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए मगध देश पधार गये। वहाँ के विभिन्न क्षेत्रो मे धर्म-ध्यान, त्याग-तप की उज्ज्वल ज्योति प्रज्वलित कर प्रभु राजगृह[1] के गुणशील चैत्य मे पधार गये। भगवान् का आगमन जानकर परिषद् धर्मोपदेश श्रवण करने हेतु आई और वीतराग प्रभु की अमृत देशना श्रवण कर पुन लौट गयी।

तब भगवान् के प्रधान अन्तेवासी इन्द्रभूति गौतम के मन मे जिज्ञासा प्रादुर्भूत हुई। वे समाधान हेतु प्रभु चरणो मे समुपस्थित हुए, उन्होने भगवान् के चरणो मे वन्दन-नमस्कार करके पृच्छा की –

भगवन् ! शाली (कमल आदि जातिसम्पन्न चावल), ब्रीहि (सामान्य चावल), गोधूम (गेहूँ), यव (जौ) तथा यवयव (विशिष्ट प्रकार का जौ) इत्यादि अन्न-धान्य के कोठे में, बाँस के पल्ले (छबडे) मे, मच (मचान) पर, माल (बर्तन) मे डालकर रखे हों, गोबर से उनके मुख उल्लिप्त (विशेष प्रकार से लीपे हुए) हों, लिप्त हो, ढके हुए हों, मुद्रित (छदित) किये हुए हो, लाछित (सील लगाकर चिह्नित) किये हुए हो तो उन धान्यो की योनि (उत्पत्ति की शक्ति) कितने काल तक सचित्त रहती है?

भगवान्–हे गौतम ! उनकी योनि कम से कम अन्तर्मुहूर्त अधिक से अधिक तीन वर्ष तक सचित्त रहती है। उसके पश्चात् उन धान्यो की योनि म्लान, विध्वसित, अचित्त, अबीज हो जाती है। इतने समय पश्चात् उस योनि का विच्छेद हो जाता है, उसमे उगने की शक्ति नहीं रहती।

गौतम–भगवन् ! कलाय, मसूर, तिल, मूँग, उडद, बालोर, कुलथ, आलिसन्दक (एक प्रकार का चवला)[2], तुअर, पलिमथम (गोल चना)[3] इत्यादि धान्यो की योनि कोठे इत्यादि मे रखी हो तो कितने काल तक सचित्त रहती है?

भगवान्–गौतम ! कम से कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पॉच वर्ष तक सचित्त रहती है, उसके पश्चात् अचित्त, अबीज हो जाती है।[4]

गौतम–भगवन् ! अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, कॉगणी, बरट, राल, सण, सरसो, मूलक बीज (एक जाति के शाक के बीज) आदि धान्यो की योनि कोठे इत्यादि मे रखी हुई कितने काल तक सचित्त रहती है?

भगवान्–गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट सात वर्ष तक सचित्त रहती

है, उसके पश्चात् अचित्त, अबीज हो जाती है।

धान्य की योनि की सचित्तता और अचित्तता विषयक जिज्ञासा का समाधान प्राप्त कर गौतम गणधर के मन मे काल सम्बन्धी जिज्ञासा प्रादुर्भूत हुई तब उन्होने भगवान् से काल सम्बन्धी प्रश्न करते हुए पृच्छा कि –

भगवन् ! एक मुहूर्त के कितने उच्छ्वास कहे गये है?

भगवान्–असख्यात समयो की एक आवलिका होती है। सख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास और सख्यात उच्छ्वास का एक नि श्वास होता है। वृद्धावस्था रहित हृष्ट-पुष्ट प्राणी का एक उच्छ्वास और एक नि श्वास, इन दोनो को मिलाकर एक प्राण होता है। सात प्राणो का एक स्तोक, सात स्तोक का एक लव, 77 लवो का एक मुहूर्त होता है अर्थात् 3773 श्वासोच्छ्वास का एक मुहूर्त होता है।

तीस मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है।

पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है।

दो पक्ष का एक मास होता है।

दो मास की एक ऋतु होती है।

तीन ऋतु का एक अयन होता है।

दो अयन का एक सवत्सर होता है।

पॉच सवत्सर का एक युग होता है।

बीस युग का एक सौ वर्ष होता है।

दस सौ वर्ष का एक हजार वर्ष होता है।

सौ हजार वर्ष का एक लाख वर्ष होता है।

चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग होता है।

चौरासी लाख पूर्वांग का एक पूर्व होता है।

चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटिताग होता है।

चौरासी लाख त्रुटिताग का एक त्रुटित होता है।

चौरासी लाख त्रुटित का एक अउडाग होता है।

चौरासी लाख अउडाग का एक अउड होता है।

चौरासी लाख अउड का एक अववाग होता है।

चौरासी लाख अववाग का एक अवव होता हे।

चोरासी लाख अवव का एक हूहूकाग होता है।

चौरासी लाख हूहूकाग का एक हूहूक होता हे।

चौरासी लाख हूहूक का एक उत्पलाग होता है।

चौरासी लाख उत्पलाग का एक उत्पल होता है।

चौरासी लाख उत्पल का एक नलिनाग होता है।

चौरासी लाख नलिमाग का एक नलिन होता है।

चौरासी लाख नलिम का एक अछनिकुराग होता है।

चौरासी लाख अछनिकुराग का एक अछनिकुर होता है।

चौरासी लाख अच्छनिकुर का एक अयुताग होता है।

चौरासी लाख अयुताग का एक अयुत होता है।

चौरासी लाख अयुत का एक प्रयुताग होता है।

चौरासी लाख प्रयुताग का एक प्रयुत होता है।

चौरासी लाख प्रयुत का एक नयुताग होता है।

चौरासी लाख नयुताग का एक नयुत होता है।

चौरासी लाख नयुत का एक चूलिकाग होता है।

चौरासी लाख चूलिकाग का एक चूलिक होता है।

चौरासी लाख चूलिका का एक शीर्षप्रहेलिकाग होता है।

चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकाग की एक शीर्षप्रहेलिक होता है।

गौतम ! इतना गणित का विषय है। इसके आगे का औपमिककाल है।

गौतम–भगवन् ! औपमिककाल[ii] किसे कहते हैं?

भगवान्–औपमिक काल दो तरह का होता है, यथा–पल्योपम और सागरोपम।

गौतम–भते ! पल्योपम और सागरोपम का क्या स्वरूप है?

भगवान्–गौतम ! सुतीक्ष्ण शस्त्र से भी जिसका छेदन-भेदन न किया जा सके, ऐसे परमाणु को केवली भगवान् समस्त प्रमाणों का आदिभूत प्रमाण कहते हैं।

अनन्त परमाणुओ का समुदाय एक उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होता है।

आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है।

आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका की एक ऊर्ध्वरेणु होती है।

आठ ऊर्ध्वरेणु की एक त्रसरेणु होती है।

आठ त्रसरेणु की एक रथरेणु होती है।

आठ रथरेणु का एक बालाग्र होती है।

आठ बालाग्र[iii] की एक लिक्षा होता है।

आठ लिक्षा की एक यूका होती है।

आठ यूका का एक यवमध्य होता है।

आठ यवमध्य की एक अगुल होती है।

छह अगुल का एक पाद होता है।

बारह अगुल की एक बितस्ति (बेत) होती है।

चौबीस अगुल की एक रत्नि (हाथ) होती है।

अडतालीस अगुल की एक कुक्षि होती है।

छियानवे अगुल का एक दण्ड, धनुष, युग, नालिका, यक्ष अथवा मूसल होता है।

दो हजार धनुष का एक गाऊ (कोश) होता है।

चार गाऊ का एक योजन होता है।

इस प्रकार एक योजन लम्बा, एक योजन चौडा और एक योजन गहरा एक पल्य (कुऑ) हो, उसमे एक दिन, दो दिन, यावत् सात रात्रि के उगे हुए युगलिको के बालाग्र ऊपरी किनारे तक ठूॅस-ठूॅसकर भरे हो। इतने ठूस कर भरे हो कि अग्नि, जल और वायु तक भी उनमे प्रविष्ट न हो सके। वे बालाग्र सडते नहीं, नष्ट नहीं होते, शीघ्र दुर्गन्धित नहीं होते हैं। ऐसे बालाग्र भरे उस पल्य मे से सौ-सौ वर्ष मे एक-एक बालाग्र निकाला जाये, जितने समय मे वह पल्य खाली हो जाये वह पल्योपम है। दस करोड़ पल्योपम को दस करोड पल्योपम से गुणा करने पर एक पल्योपम होता हे। अर्थात्

दस कोटाकोटि पल्योपम का एक सागरोपम होता है।

चार कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा-सुषमा नामक पहला आरक होता है।

तीन कोटाकोटि सागरोपम का एक सुषमा नामक दूसरा आरा होता है।

दो कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा-दुषमा नामक तीसरा आरा होता है।

बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का दुषमा-सुषमा नामक चौथा आरा होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दुषमा नामक पॉचवॉ आरा होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दुषमा-दुषमा नामक छठा आरा होता है।

इन छ आरो के समुदाय को अवसर्पिणी काल कहते हें। उत्सर्पिणी काल-चक्र मे आरो की व्यवस्था इस प्रकार होती है –

इक्कीस हजार वर्ष का दुषमा-दुषम नामक प्रथम आरक होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दुषम नामक द्वितीय आरक होता ह।

वयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का दुषम सुपम नामक तृतीय आरक होता है।

दो कोटाकोटि सागरोपम का सुषम-दुषम नामक चतुर्थ आरक होता है।

तीन कोटाकोटि सागरोपम का एक सुषम नामक पचम आरक होता है।

चार कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा-सुषमा नामक छठा आरक होता है।

इस प्रकार दस कोटा-कोटि प्रमाण अवसर्पिणी तथा दस कोटाकोटि प्रमाण उत्सर्पिणी मिलकर बीस कोटाकोटि सागरोपम का एक कालचक्र[१] होता है।[5]

भगवान् से समाधान प्राप्त कर गणधर गौतम का अन्त करण बाग-बाग हो गया। वे श्रद्धाभिषिक्त होकर प्रभु को वन्दन कर तप-संयम मे लीन बन गये।

राजगृह निवासियो का यह परम सौभाग्य था कि दो प्रवासो के पश्चात् पुन प्रभु का राजगृह मे शुभागमन हो गया। अनेक भव्य प्राणी उनके सान्निध्य का लाभ उठाकर अपने जीवन को धर्ममार्ग पर सन्निहित कर रहे थे। इसी नगर मे रहने वाले महान ऋद्धिसम्पन्न सेठ गोभद्र[४] ने अपने जीवन को पूर्व मे प्रभु चरणो मे समर्पित कर दिया था।

वह गोभद्र सेठ सौधर्म[6] देवलोक का ऋद्धिशाली देव बन गया।[7] देव-शय्या पर जन्म लेते ही देवियो ने पूछा—अहो स्वामिन् ! आपने पूर्वभव मे क्या ऐसा कार्य किया जिसके कारण आपको यह दिव्य देवर्द्धि सम्प्राप्त हुई? तब गोभद्र देव ने अपने पूर्वभव को अवधिज्ञान से जाना और कहा—मैंने भगवान् महावीर की सन्निधि मे तप-सयम का आराधन किया, इस कारण मुझे यह महान ऋद्धि समुपलब्ध हुई है। उसी समय गोभद्र देव ने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव के परिवार को भी देखा और सोचा—मेरा पुत्र शालिभद्र ! वास्तव मे कितना भद्रिक परिणामी उसको मुझे ऋद्धि-समृद्धि से परिपूर्ण करना चाहिए। तब गोभद्र देव के प्रताप से खेतो मे बहुत वृद्धि हुई। शालिभद्र एव उसकी पत्नियॉ जैसे ही स्नान करके निवृत्त होती उसी समय देव ने गहनो और कपडो से भरी तेतीस पेटियॉ प्रतिदिन शालिभद्र के यहाँ प्रेषित करना प्रारम्भ किया। एक पेटी पर शालिभद्र एव भद्रा का एव बत्तीस पेटी पर बत्तीस पुत्रवधुओ का नाम अकित रहता था। प्रत्येक पेटी मे नौ-नौ आभूषण निकलते थे। उनमे शालिभद्र के लिए अनमोल सेहरा आता था जिसमे चमचमाती मणियॉ सूर्य के प्रकाश को विजित करती थीं। ये सारे वस्त्राभूषण एक बार पहनने के पश्चात् उतार दिये जाते थे। यदि कोई लेने के लिए आता तो उसको दे देते, अन्यथा सेहरा भण्डार मे डाल दिया जाता था और आभूषणादि गृह वापिका मे डाल देते थे। ये सब सुपात्र दान का सुप्रभाव था।[8]

शालिभद्र अपने महलो मे राजसी ठाठ भोग रहा था। उसको सासारिक ऋद्धि मे किसी प्रकार की कोई न्यूनता नहीं थी। इसी समय राजगृह नगर मे

रत्न-कम्बल लेकर परदेश से व्यापारी आये और राजगृह के बाजार मे अपनी रत्न-कम्बल बेचने की कोशिश करने लगे। भरसक कोशिश करने पर भी बेशकीमती वे कम्बले व्यापारी बाजार मे विक्रय नहीं कर सके। अत मे एक दलाल उनको राजा श्रेणिक के समीप ले गया। राजा श्रेणिक एव उनकी नन्दा, चेलना आदि महारानियो ने उन रत्न-कम्बलो को देखा। देखते ही वे उन्हे खरीदने को तत्पर हुए। राजा ने सोलह ही कम्बल खरीदने के भाव से व्यापारियो को कम्बल का मोल पूछा, लेकिन उनकी कीमत बहुत अधिक होने से राजा ने उनको नहीं खरीदा।

व्यापारी राजा द्वारा कम्बल नहीं खरीदे जाने पर औदासीन्य भाव धारण कर पनघट मे एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। इधर शालिभद्र की दासियॉ पानी भरने के लिए पनघट पर आई और उन्होने व्यापारियो को उदास देखा तो पूछा–आप लोग किस कारण उदास होकर बैठे हैं?

व्यापारियो ने कहा–आज हम बडी आशा से राजगृह नगर आये थे, लेकिन हमारी आशा निराशा मे परिणत हो गयी।

दासियो ने पूछा–क्या हुआ?

व्यापारी–हम लोग धनाढ्यो की नगरी राजगृह मे सोलह रत्न-कम्बल बेचने के लिए आये हैं। इन रत्न-कम्बलो मे अत्यधिक विशेषता है कि इन्हे शीत ऋतु मे ओढने पर सर्दी नहीं लगती। ग्रीष्म ऋतु मे धारण करने पर गर्मी नहीं लगती। ये कम्बल यदि मैली हो जाये तो इन्हे अग्नि मे डाला जा सकता है। अग्नि मे डालने पर ये जलेगी नहीं, अपितु परिष्कृत बन जायेगी। इन कम्बलो को हमने जीवन-भर परिश्रम करके बनाया है, लेकिन राजा श्रेणिक द्वारा भी नहीं खरीदे जाने पर हम अत्यन्त क्षुब्ध बने हुए है।

दासियो ने कहा–चलो, हमारे साथ भद्रा सेठानी तुम्हारी कम्बलो को खरीद लेगी। व्यापारी–जब राजा श्रेणिक नहीं खरीद सका तो भद्रा भद्रा क्या खरीद लेगी?

दासियॉ–आप चलो तो सही, स्वय ही जान जाओगे। व्यापारी दासियो के साथ भद्रा के घर की ओर रवाना हुए। वे भद्रा के महल की छटा को देखकर स्तब्ध रह गये। ऐसा दिव्य महल उन्होने भूमण्डल पर कही देखा नहीं था। दासियो के साथ व्यापारियो ने प्रथम मजिल मे प्रवेश किया। वहॉ की साज-सज्जा देखकर व्यापारी अत्यन्त विस्मित हुए। तव दासियो ने वतलाया कि यह मजिल हम लोगो के रहने की है। यह सुनकर व्यापारी चित्रलिखित-से रह गये।

जव दूसरी मंजिल मे प्रवेश किया तो उसकी रमणीयता प्रथम मंजिल से

विशिष्ट थी। दासियो ने बतलाया कि यहाँ मुनीम-गुमाश्ते रहते हैं। अब तृतीय मजिल पर पहुँचे, जहाँ भद्रा सेठानी थी। दासियो ने भद्रा सेठानी से कहा–ये व्यापारी रत्न-कम्बल लेकर आये हैं, इनकी रत्न-कम्बले बहुमूल्य होने से मगधेश श्रेणिक नही खरीद सके अतएव ये बहुत निराश हो गये है। इन्हे हम यहाँ आपकी सेवा मे लाये हैं ताकि इनकी निराशा आप द्वारा अपगत हो सके।

भद्रा ने उन व्यापारियो से पूछा–तुम्हारे एक कम्बल का मूल्य क्या है?

व्यापारी–सवा लाख स्वर्ण मुहरे।

भद्रा–तुम्हारे पास कम्बल कितनी हैं?

व्यापारी–सोलह।

भद्रा–तब बत्तीस बहुओ को कैसे दूँगी? अच्छा, ऐसा करो इनके दो-दो टुकडे कर दो।

व्यापारियो ने एक-एक कम्बल के दो-दो टुकडे कर दिये और भद्रा ने बीस लाख स्वर्ण मुहरे देकर कम्बल खरीद लिये। व्यापारी दाँतो तले अगुली दबाते हुए चले गये।

भद्रा ने एक-एक कम्बल का टुकडा एक-एक बहू को ओढने के लिए दे दिया। उन्होने वह कम्बल ओढा और देवदूष्य पहनने वाली उन बहुओ के शरीर मे वह चुभन पैदा करने लगा।

उन्होने स्नान किया और स्नान करके उन कम्बलो को एक तरफ डाल दिया, नये देवदूष्य वस्त्र धारण कर लिये। प्रात काल भगिन को कम्बल दे दिये।

इधर दूसरे दिन वह भगिन उस रत्न-कम्बल को ओढकर राजा के यहाँ पहुँची। चेलना महारानी ने प्रासाद के गवाक्ष मे से मेहतरानी को रत्न- कम्बल ओढे देखा तो वह चिन्तन करने लगी–अरे ! यह वही रत्न-कम्बल हैं जो राजा कल नहीं खरीद पाये थे, लेकिन इसके पास कहाँ से आई? रानी चेलना ने भगिन को बुलाकर पूछा कि ये कम्बल कहाँ से लाई।?

भगिन ने कहा–शालिभद्र के यहाँ से मुझे बत्तीस कम्बल मिले हैं।

जैसे ही महारानी ने यह श्रवण किया, उसके चेहरे की हवाइयाँ उडने लगी। वह सोचने लगी कि मुझे एक कम्बल नहीं मिला और यह बत्तीस कम्बल की मालकिन बन गई। यही सोचकर उसका अन्तर्हृदय व्यथित हो गया और वह कोपभवन मे चली गयी।

राजा श्रेणिक को महारानी के कुपित होने का वृतान्त ज्ञात हुआ तो वह महारानी के अन्तेपुर मे पहुँचकर उसके कुपित होने का कारण पूछते हैं। तब

महारानी कहती है—राजन् आप एक कम्बल नही खरीद सके और आपकी मेहतरानी के पास बत्तीस कम्बल हैं, क्या यह उचित है?[9]

तब राजा ने महारानी से सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर उन व्यापारियो को पुन बुलाया। रत्न-कम्बल खरीदने के लिए। लेकिन व्यापारियो ने कहा कि हमने तो सोलह कम्बल भद्रा सेठानी को बेच दी। अब एक भी हमारे पास अवशिष्ट नही है। तब राजा ने एक सेवक भद्रा सेठानी के पास एक कम्बल लेने के लिए भेजा। वह भद्रा के पास पहुँचकर जब कम्बल मॉगने लगा तो भद्रा ने कहा—मेरी बहुओ ने कम्बल ओढ लिये तो उनके ओढे हुए कम्बल राजा को कैसे दूँ? वे ओढकर निर्माल्य (काम मे आई हुई अपवित्र वस्तु) कम्बल निर्माल्य भण्डार मे डाल दिये हैं क्योकि मेरी बहुएँ प्रतिदिन नवीन देवदूष्य ओढती है और दूसरे दिन उन्हे उतार देती है, पहनती नहीं। तब उनको राजा को कैसे दे सकती हूँ?

यहॉ पर यह ज्ञातव्य है कि भद्रा को कम्बल भगिन को देने की जानकारी न होने से उसने निर्माल्य भडार मे डालने की बात कही है।[10]

हेमचन्द्राचार्य ने त्रिषष्टिशलाकापुरुष मे ऐसा उल्लेख किया है कि जब राजा श्रेणिक का सेवक भद्रा सेठानी के पास रत्न-कम्बल लेने हेतु पहुँचा तो भद्रा ने कहा कि रत्न-कम्बलो के तो शालिभद्र की स्त्रियो ने पादप्रोञ्छन बना दिये है। इसलिए यदि काम मे ली हुई रत्न-कम्बलो की आवश्यकता हो तो राजा श्रेणिक से पूछकर आ जाओ। वह सेवक राजा के पास पहुँचा और उसने भद्रा द्वारा कही गयी सारी बात राजा से कह डाली।

तब नृपति श्रेणिक के मन मे शालिभद्र को देखने की समीहा समुत्पन्न हुई और शालिभद्र को राजमहलो मे आमन्त्रित करने हेतु उसी सेवक को भेजा। सेवक भद्रा सेठानी के समीप पहुँचा और कहा कि आपके पुत्र को महाराजा याद कर रहे हैं।

तब भद्रा सेठानी राजा श्रेणिक के पास पहुँची और उसने भूपति से निवेदन किया—महाराज ! मेरा पुत्र कभी भी घर से बाहर नहीं निकलता, इसलिए कृपा करके आप उसे देखने हेतु मेरा घर-ऑगन पवित्र करो।[11]

जवाहर किरणावली के अनुसार शालिभद्र को बुलाने स्वय अभयकुमार गये, लेकिन शालिभद्र के स्थान पर भद्रा स्वय उनके साथ महाराजा से मिलने आई।[12]

राजा को भद्रा का घर देखने की जिज्ञासा थी ही, भद्रा का निमन्त्रण प्राप्त कर उसने स्वीकृति प्रदान कर दी। महाराजा के घर आने की स्वीकृति प्राप्त कर भद्रा अतीव प्रमुदित हुई। वह उन्हीं हर्ष-भावो से घर गयी और राजमहल से लेकर घर तक का मार्ग विचित्र मणि-रत्नो आदि से परिमण्डित करवाया।

राजा श्रेणिक अभयकुमार के साथ मार्ग की शोभा निरखता-निरखता भद्रा के महल के बाहर पहुँच गया।

स्वर्ण स्तम्भो पर बना वह महल देदीप्यमान देव-विमान ही लग रहा था। इन्द्र नीलमणि के तोरण द्वारो पर खचित स्वस्तिक बने मोतियो की श्रेणियाँ, स्थान-स्थान पर दिव्य वस्त्रो के चदोवे और सुगन्धित पदार्थो की महक से वह सुगध-गध-वट्टिकावत् प्रतीत हो रहा था।

भद्रा सेठानी ने महल के बाहर आकर महाराजा का स्वागत सत्कार किया और आदर सहित महल मे प्रवेश कराया। पहली मजिल मे प्रवेश किया तब भद्रा ने बतलाया कि यह मजिल तो दासियो के निवास योग्य है, सुनकर राजा का आश्चर्य सीमा पार कर गया।

दूसरी मजिल पर प्रवेश करते ही प्रकाश के चकाचौंध मे राजा की ऑखे ऑखमिचौनी खेलने लगी। तब भद्रा ने बतलाया यह मजिल मुनीम-गुमाश्तो के लिए है। तीसरी मजिल मे पहुँचे तो भद्रा सेठानी ने बतलाया—यहॉ मेरा निवास स्थान है। चतुर्थ मजिल पर जाकर राजा को थकान-सी होने लगी तब भद्रा सेठानी ने वहीं सिहासन पर नृपति श्रेणिक एव अभयकुमार को बिठलाया और निवेदन किया कि शालिभद्र सातवीं मजिल पर है, उसे मैं आपकी सेवा मे उपस्थित करती हूँ। ऐसा कहकर स्वय भद्रा सेठानी शालिभद्र के पास पहुँचती है और शालिभद्र से कहती है—बेटा ! आज घर पर महाराजा पधारे हैं, तुम जल्दी नीचे चलो।

शालिभद्र—माताजी, आप सब जानते ही है, जो मूल्य देना है वह आप ही दे दो।

भद्रा—अरे! वह कोई खरीदने की वस्तु नहीं है। वे तो इस राजगृह नगर के स्वामी और हमारे नाथ है। उनके दर्शन हेतु तुम्हे नीचे चलना होगा।

शालिभद्र (खेद करता हुआ)—ओह ! मेरे इस नश्वर सासारिक वैभव को धिक्कार है। मेरे सिर पर भी कोई नाथ है नाथ है तो मैं क्या अनाथ हूँ ?

भद्रा—बेटा ! जल्दी करो, राजा तुम्हारा इतजार कर रहे है।

माता के कहने से शालिभद्र स्त्रियो सहित नीचे उतरा और उसने राजा श्रेणिक को प्रणाम किया।

शालिभद्र का अपार सौन्दर्य देखकर राजा श्रेणिक के नैत्र स्तम्भित रह गये। उसे अपनी भुजाओ मे अतीव वात्सल्य से पकड लिया और गोद मे बिठाकर सिर पर हाथ फिराने लगा।

तब शालिभद्र चिन्तन करता है कि यह अनाथ समझकर मेरे सिर पर हाथ फिरा रहा है मुझे अनाथ नहीं, स्वय का नाथ बनना है। यह सोचकर उसका कोमल वदन कुम्हलाने लगा।

नवीन पुष्प के समान शालिभद्र के वदन को कुम्हलाया हुआ दृष्टिगत कर भद्रा ने कहा–राजन् ! आप इसे महल मे जाने की अनुमति दीजिये क्योकि यह मनुष्य होते हुए भी मनुष्य की गध से घबराता है।[13] इसके पिता देव है, वे इसके लिए वस्त्रालकार भेजते हैं। इसलिए यह इस मानव-गध को सहन करने मे समर्थ नहीं है।*

तब राजा ने अनुमति प्रदान की एव शालिभद्र स्वय के महल मे लौट गया।

शालिभद्र के लौटने पर भद्रा ने राजा श्रेणिक एव अभयकुमार को भोजन करने का विनम्र निवेदन किया। उसके भावभरे निमत्रण को स्वीकार करके राजा और अभयकुमार तैयार हो गये।

भद्रा ने अपने सेवको से राजा और महामात्य के शरीर पर सहस्रपाक एव शतपाक तेल की मालिश करवाई और सुगधित गंधोदक से स्नान करने के लिए निमत्रण दिया।

स्नान करते हुए एक मुद्रिका गृह वापिका मे गिर गयी। जव भद्रा को मालूम चला कि राजा की मुद्रिका गिर गयी तब भद्रा ने दासियो को आज्ञा प्रदान की कि तुम वापिका का जल दूसरी ओर निकाल दो। तव उन दिव्य आभरणो के मध्य राजा ने अपनी मुद्रिका देखी और राजा ने साश्चर्य दासियो से पूछा–वापिका मे इतने आभरण किसने डाले? चेटिकाओ ने बतलाया कि यहाँ शालिभद्र और उसकी पत्नियाँ एक दिन पहले पहने हुए आभूषण फेक देते हैं।[14]

राजा श्रवण कर सोचता है कि वस्तुत शालिभद्र धन्य है और मेरा भी महान पुण्योदय है कि राजगृह नगर मे ऐसे धनाढ्य लोग रहते हैं। तत्पश्चात् राजा और महामात्य अभयकुमार ने भोजन किया और विचित्र वस्त्रालकारो से सुसज्जित होकर अपने राजमहल मे लौट गये।

राजा श्रेणिक अभयकुमार के साथ राजभवन मे लौट गया और शालिभद्र अपने महलो मे विरक्त बनकर चितन कर रहा है कि मुझे स्वय का ही नाथ वनना है, ये भोग तो अशाश्वत है, इनका भोग भोगते हुए मुझे पराधीन ही रहना पड़ेगा, मुझे तो आत्मशक्तियो को जागृत कर अपने भीतरी आलोक मे रमण करना है। शालिभद्र गम्भीर मुद्रा मे वैठा है, इतने मे उसे समाचार ज्ञात होते हैं

---

*जवाहर किरणावली अनुसार अभयकुमार ने कहा–इसे महल में जाने की अनुमति दीजिए।

कि नगर के बाहर चार ज्ञान के धारक धर्मघोष आचार्य पधारे है। वह उनके दर्शन के लिए जाता है। आचार्य भगवन् की धर्मदेशना श्रवण करने के पश्चात् शालिभद्र ने आचार्यश्री से प्रश्न किया कि किस कारण से मै स्वामी बन सकता हू ? तब आचार्यश्री ने कहा कि तुम सयम ग्रहण कर लो तो सम्पूर्ण जगत् के स्वामी बन जाओगे। शालिभद्र ने आचार्यश्री की बात सुनकर निश्चय किया कि मुझे घर जाकर माता से दीक्षा की अनुमति ग्रहण करनी है।[15]

विरक्ति के विचारो मे अवगाहन करता हुआ वह घर आया और माता से निवेदन किया—मातेश्वरी ! मैं आज आचार्य भगवन् के श्रीमुख से वीतराग वाणी श्रवणकर आया हूँ। वह मुझे अत्यन्त रुचिकर हुई है।

माता भद्रा—बेटा ! तेरा सौभाग्य है।

शालिभद्र—माता ! मै अब दीक्षा लेकर स्वय का नाथ बनना चाहता हूँ।

माता—अरे ! यह क्या? अरे यह क्या सुनते ही धडाम से धरतीतल पर गिर पडी।

पखे आदि से हवा करके भद्रा की मूर्च्छा दूर की। मूर्च्छा दूर होने पर वह रुदन करने लगी और शालिभद्र की बत्तीस ही पत्नियॉ, वे भी रुदन करने लगीं। कहने लगी—नाथ ! तुमने हमारे साथ पाणिग्रहण करके हमे अपना बनाया है। हम तुम्हारे भरोसे यहॉ आई हैं। आप हमे छोडकर क्यो जा रहे है? हम यहॉ किसके साये मे रहेगी? आपके बिना हमारा जीना दुभर हो जायेगा। हम क्या करेगी ।

भद्रा विलाप करती हुई कहती है—बेटा ! तू मेरा इकलौता पुत्र है, तू चला जायेगा तो मेरा क्या होगा ? मेरा सहारा तो तू ही है।

शालिभद्र—मातेश्वरी ! आज तक धर्म के अतिरिक्त कोई भी साथ नहीं निभा पाया है। ये सारे सासारिक रिश्ते-नाते तो नश्वर हैं, ये तो अवश्यमेव त्यागने योग्य हैं, मुझे तो अपना नाथ बनना है इसलिए मातेश्वरी मैं सयम ग्रहण करूँगा।

पत्नियॉ—स्वामिन् ! हमारा क्या होगा?

शालिभद्र—तुम भी हमारे पथ का अनुसरण करना और त्याग मार्ग पर चलना। मैने दृढ निश्चय कर लिया है। मैं इस पथ से विचलित होने वाला नहीं हूँ।

माता भद्रा ने देखा कि अब मेरा लाल यहाँ रहने वाला नहीं तो कहा—बेटा! अच्छा, ऐसा कर कि तू थोडा-थोडा त्याग कर, जिससे तुझे अभ्यास हो जायेगा, फिर सयम ग्रहण कर लेना।

तब शालिभद्र अपनी माँ के वचनो को स्वीकार कर प्रतिदिन एक-एक स्त्री और एक-एक शय्या का त्याग करने लगा।

इधर शालिभद्र एक-एक पत्नी का त्याग कर रहा है और उधर उसका बहनोई धन्ना, वह आठ पत्नियो के साथ भोग भोग रहा है। वह तीसरा विवाह शालिभद्र की बहन सुभद्रा से कर चुका था।[16]

चतुर्थ विवाह कौशाम्बी नरेश शतानीक की पुत्री चेटक की दोहित्री सौभाग्यमजरी से किया क्योकि जब धन्ना राजगृह का मत्री पद सम्हाल रहा था तभी उसके भाई और माता-पिता घूमते-घूमते वहाँ पहुँच गये। वहाँ भी भाइयो की ईर्ष्या के कारण वह गृह त्याग कर कौशाम्बी पहुँच गया। चितामणि के प्रभाव से वहाँ भी उसने अपना महल बना लिया और वहाँ रहने लगा। उस समय कौशाम्बी नरेश शतानीक के पास 'सहस्रकिरण' नामक अमूल्य रत्न था। पीढियो से नरेश उसकी पूजा करता था लेकिन उसका मूल्य, गुणधर्म पता नहीं था। उसकी जानकारी के लिए राजा ने अनेक पारखी जौहरियो को बुलाया, लेकिन वे उस रत्न का मूल्याकन नहीं कर सके। तब शतानीक ने घोषणा की कि जो कोई रत्न-पारखी इस रत्न की परीक्षा मे उत्तीर्ण होगा उसे मैं पॉच सौ गॉव, पॉच-पॉच सो हाथी, घोडे और रथ दूँगा। साथ ही अपनी पुत्री सौभाग्यमजरी भी।

धन्ना ने जब यह घोषणा सुनी तो वह राजदरबार मे पहुँचा और बोला—मै रत्न-परीक्षा करूँगा।

शतानीक भौचक्के होकर धन्ना को देखने लगे और कहा—तुम रत्न-परीक्षा

धन्ना—हाँ राजन् !

शतानीक— क्या तुम रत्नो के बारे मे जानते हो?

धन्ना—हाँ राजन् ! हीरक, नीलम, मोती, माणक और मरकत—ये पॉच मुख्य रत्न है। पुखराज, वैडूर्य, विद्रुम ओर गोमेद—ये चार उपरत्न हे। इन नो रत्नो के आश्रित नौ ग्रह रहते हे। पद्मराग—रवि, मोती—सोम, विद्रुम—मगल मरकत—बुध पुखराज—गुरु, हीरा—भृगु, इन्द्रनील—शनि तथा गोमेद व वेडूर्य—राहु केतु से सम्बद्ध ह। स्फटिक रत्न के चार भेद ह—सूर्यकान्त, शशिकान्त, कान्तजल ओर हसगर्भ। इस प्रकार रत्नशास्त्र मे रत्नो के साठ भेदोपभेदो का वर्णन है।

शतानीक—क्या चिन्तामणि के विषय मे जानते हो?

धन्ना—चिन्तामणि रत्न तीन रेखाओ वाला सवा छटॉक वजन का दिव्य रत्न मनवाछित वस्तु देने वाला ह।

शतानीक–तुम वास्तव मे रत्न-परीक्षा कर सकते हो, तब तुम्हे वह रत्न दिखाता हूँ। यो कहकर शतानीक ने वह रत्न निकालकर धन्ना को दिखाया जिसे देखकर धन्ना बोला–राजन् ! यह सहस्रकिरण रत्न है। जिसके पास यह रत्न होता है वह राजा युद्ध मे कभी पराजित नहीं होता। इस रत्न के रहने पर व्यन्तरादि कृत उपसर्ग शीघ्र समाप्त हो जाते हैं। इसके द्वारा प्रक्षालित जल पीने पर सर्व रोग विनष्ट हो जाते है। यह रत्न सुख, शाति, समृद्धिदायक है।

राजा–कैसे जाने कि यह सहस्रकिरण रत्न है?

धन्ना–राजन् ! आप चावल के दानो से भरा हुआ एक थाल मगवाओ और उसमे यह रत्न डाल दो और इसे छत पर रख दो। चावल के लोलुप पक्षी दाना चुगने आयेगे लेकिन वे इसमे से एक दाना भी नहीं चुग पायेगे।

शतानीक ने तुरन्त वैसा ही किया। एक बडे थाल मे चावल के दाने बिखेर दिये। उसमे वह रत्न रख दिया। पक्षी दाना चुगने आये, लेकिन रत्न के प्रभाव से एक दाना भी चुग नहीं पाये। रत्न हटाते ही दाना चुगने लगे।

तब राजा ने धन्ना को पॉच सौ गॉव, हाथी, घोडे दिये और सौभाग्यमजरी के साथ उसका विवाह कर दिया।

धन्ना ने कौशाम्बी के पास धनपुर नामक एक नगर बसाया और वहॉ सरोवर खुदवाना प्रारम्भ किया। इधर राजगृह मे धन्ना के जाने के पश्चात् उसके परिवार की दुर्दशा होने लगी। तब धन्ना के माता, पिता, भाई, भाभी एव सुभद्रा धन्ना को खोजते-खोजते धनपुर आये और वहॉ मिट्टी खोदने का काम करने लगे। धन्ना ने उन्हे पहिचान लिया, उन्हे घर ले गया और धनपुर मे वे धन्ना के पास आनन्द से रहने लगे।

तभी राजगृह से राजा श्रेणिक का बुलावा आया धन्ना के लिए कि उन्हे राजा अतिशीघ्र बुलवा रहे है। तब धन्ना अपने माता-पिता, भाई-भाभी को धनपुर छोडकर अपनी पत्नियो के साथ राजगृह की तरफ रवाना हुआ। तभी रास्ते मे लक्ष्मीपुर नगर था, वहॉ के राजा जितारि की पुत्री गीतकला ने एक बार कुशल वीणा-वादन करते हुए जगल के पशु-पक्षियो को एकत्रित कर लिया। वीणा-वादन बद होने पर भी एक हरिणी मूर्तिवत् खडी रही। उस समय गीतकला ने एक मोतियो का हार उतार कर उसके गले मे डाल दिया जिसकी आहट प्राप्त कर वह जगल मे भाग गई। तब गीतकला ने प्रतिज्ञा कर ली कि जो कोई इस हरिणी के गले से हार निकालेगा, वही मेरा पति होगा।

राजा जितारि हर सभव ऐसा वर खोज रहा था। धन्ना भी सयोग से वहाँ पहुॅच गया। राजा के दरबार मे जब गया तब राजा ने स्वागत-सत्कार देकर उन्हे बिठाया और वार्तालाप चलने लगा। बात-बात मे अपनी पुत्री की प्रतिज्ञा

ी राजा ने बतलाई। तब धन्ना राजा सहित जगल मे गया। वहॉ वीणा बजाई। वह हिरणी भी आई, उसके गले से हार निकाला। गीतकला की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। राजा जितारि ने धूम-धाम से उसका विवाह धन्ना के साथ सम्पन्न किया।

राजा जितारि का मत्री था, सुबुद्धि। उसके एक कन्या थी सरस्वती। उसने भी प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो मेरी पहेलियो का उत्तर देगा उसी को मैं वरण करूॅगी।

धन्ना की प्रतिभा को देखकर सुबुद्धि ने सरस्वती को धन्ना के समक्ष प्रस्तुत किया और कहा तू इनसे अपनी पहेलियॉ पूछ। तब उसने पहेली रखी–

दान दिया जाता गगा मे, लेने वाला मर जाता।

देने वाला घोर नरक मे, पडा-पडा फिर पछताता।।

अर्थात्–गगा मे दान देते हैं तो लेने वाला मर जाता है और दान देने वाला घोर नरक मे जाता है, इसका क्या तात्पर्य?

तब धन्ना उत्तर देते हैं –

लेने वाली दान मछलिया, दाता धीवर पल (मास) का दान।

इसका जो फल होता, जान रहे सारे विद्वान्।।

अर्थात्–मछुआरा मछलियॉ पकडने के लिए गगा मे आटा आदि डालता है जिसमे कॉटा रहने से खाकर मछलियॉ मर जाती है। इस कारण वह धीवर मरकर नरक मे जाता है।

सरस्वती को पहेली का उत्तर मिल गया। अब धन्ना ने पूछा–ऐसी कौनसी वस्तु है जो नाक, कान और नारगी मे दूर रहती है जबकि निम्ब, तुम्ब और मामा मे मिल जाती है?

सरस्वती उत्तर नहीं बता पाई, तब धन्ना कहते हैं–अधर एव ओष्ठ।

सरस्वती के साथ धन्ना का छठा विवाह सम्पन्न हुआ।

इसी लक्ष्मीपुर नगर मे एक सेठ रहता था 'पत्रामलक'। उसके चार पुत्र थे। वह मृत्युशय्या पर लेटा था तब उसने चारो पुत्र को कहा–तुम आपस मे प्रेम से रहना, मैंने चार कलशो मे तुम्हारा नाम लिखकर बराबर धन दिया है, तुम बॉट लेना। यो कहकर सेठ ने प्राण त्याग दिया।

तब चारो पुत्रो ने पिता का दाह सस्कार करके कलशे खोले। एक कलश मे मात्र कागज और कलम निकले, दूसरे मे मिट्टी-ककर, तीसरे मे हड्डियॉ और चौथे कलश मे आठ करोड स्वर्ण मुद्राएँ, जिन्हे देखकर पुत्र दग रह गये। वे राजा जितारि के पास न्याय मॉगने गये। राजा भी आश्चर्यचकित रह गया। तब धन्ना ने कहा–देखो, मैं इसका रहस्य बतलाता हूँ। जिस पुत्र को कागज-कलम

दिया, उसका मतलब तुम दुकान और बही खाते सम्हालो और लेन-देन से आठ करोड मिल जायेगे। दूसरा लडका खेती द्वारा आठ करोड प्राप्त कर लेगा। तीसरा पशुधन से आठ करोड की आय करेगा और चौथा छोटा है अत उसे आठ करोड नगद दे दिये। चारो फैसला सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और अपनी बहिन लक्ष्मी का धन्ना के साथ विवाह कर दिया। यह धन्ना का सप्तम विवाह था।

धन्ना का अष्टम विवाह लक्ष्मीपुर के धनपाल नामक कजूस सेठ की पुत्री से हुआ। हुआ यो कि धनपाल के यहाँ कभी भी कोई याचक आता तो वह उसे कुछ भी नही देता था। एक बार किसी धूर्त ने भिखारी का वेश बनाकर धनपाल को खुश कर दिया। सेठ ने उसे कुछ देने का वचन दिया, लेकिन रोज-रोज टरकाता रहा। एक दिन वह धूर्त भिखारी जिद्द करके बैठ गया कि मुझे बताओ तुम किस दिन क्या दोगे?

सेठ ने कहा—अमुक दिन आना और तुम मेरी जिस वस्तु पर हाथ रख दोगे वह तुम्हे दूँगा। वह भिखारी चला गया।

इधर सेठ ने सोचा कदाचित् यह मेरी लडकी गुणमाला को माँग लेगा तो अनर्थ हो जायेगा। यह सोचकर सेठ ने उस भिखारी के पास जाकर कहा—तुम्हे चाहिए जो हीरे, पन्ने ले लो लेकिन वह नहीं माना। तब सेठ ने धन्ना को बुलाया। तब धन्ना ने कहा—निश्चित रहो। इधर भिखारी आया तो सेठ की लडकी छत पर खडी थी। चढने के लिए नसैनी लगा रखी थी। भिखारी ने ज्योही नसैनी के हाथ लगाया धन्ना ने कहा—नसैनी ले जाओ। तुम्हारी शर्त पूरी हुई। धूर्त देखता ही रह गया। सेठ ने अपनी पुत्री का विवाह धन्ना के साथ कर दिया। यह धन्नाजी का आठवॉ विवाह था।

इस प्रकार छ पत्नियो को लेकर धन्ना राजगृह पहुँचे। वहॉ पर कुसुमश्री व सोमा ने उसका खूब स्वागत-सत्कार किया। सुभद्रा की सेवा से प्रसन्न होकर धन्ना ने उसे पटरानी का पद दिया और धन्ना ने राजगृह का मत्री पद सम्हाल लिया और अभयकुमार उज्जयिनी से कुछ दिनो पश्चात् आ गया। धन्ना और अभय मैत्री भाव से सब कार्य करने लगे।

इधर धन्ना के भाइयो ने ऐसा व्यवहार किया कि उनका सब-कुछ चौपट हो गया। वे वहॉ से माता-पिता और पत्नियो को लेकर भटकते-भटकते राजगृह पहुँचे। धन्ना से मिले। अब तीनो भाइयो का द्वेष समाप्त हो गया। तीनो ने धन्ना से क्षमायाचना की और सुखपूर्वक रहने लगे।

तभी राजगृह मे केवलज्ञानी मुनि आये तब धन्ना ने मुनि से अपना पूर्वभव पूछा। तब मुनि ने पूर्वभव बताते हुए कहा –

प्राचीन काल मे पइट्ठन नामक गॉव था। वहॉ पर कात्यान नामक विधवा

बुढिया रहती थी। उसके दत्त नामक पुत्र था। वह गाय-बछडे चरा कर आजीविका चलाता था। एक दिन पर्व पर घर-घर खीर बनी। दत्त ने भी खीर खाने की जिद्द की। माता ने पडोसिनो से सब चीज मॉगकर खीर बनाई। पुत्र को खीर परोस कर माता बाहर गयी, तब पारणे मे मुनि आये, दत्त ने सारी खीर मुनि को बहरा दी। माता आई तब दत्त थाली चाट रहा था। मॉ ने सोचा–पुत्र बहुत भूखा है, उसने हडिया मे बची खीर भी दे दी। खीर खाने पर पुत्र के पेट मे दर्द हुआ और शुभ ध्यान करते हुए मरा और मरकर वह जीव धन्यकुमार धन्ना बना है। वह धन्ना तुम ही हो। जिन चार स्त्रियो ने तुम्हारी मॉ को खीर बनाने की सामग्री दी एव चार ने अनुमोदन किया, वे आठो मरकर तुम्हारी पत्नियॉ बन गयी है।

तब तीनो भाइयो का पूर्वभव पूछा। तब मुनि कहने लगे –

सुग्राम नामक नगर मे तीन लकडहारे थे। तीनो दोपहर जगल मे लकडी काटकर भोजन करने बैठे, इतने मे मुनि आये। तीनो ने मुनि को भोजन बहरा दिया। शाम को तीनो घर गये तो उन्हे भोजन नहीं मिला। तब उन्होने दान की निन्दा की कि ऐसे दान से क्या लाभ जिससे हमे भोजन भी नहीं मिला। इस प्रकार कुवचन कहकर वे मृत्यु को प्राप्त होने पर तुम्हारे भाई बने, लेकिन दान की निन्दा करने से उन्होने महान कष्ट पाया। मुनि की देशना श्रवण कर तीनो भाई, भाभी, माता, पिता को विरक्ति आ गयी। उन्होने सयम लेकर जीवन सफल किया।[17]

इधर धन्ना अब आठ पत्नियो के साथ भोग भोग रहा है और उधर सुभद्रा को पता चला कि मेरा भाई शालिभद्र प्रतिदिन एक-एक पत्नी का परित्याग कर रहा है तो सुभद्रा का मन भ्रातृ-वात्सल्य मे निमज्जित हो गया। वह भाई का प्यार स्मृतिपटल पर लाकर ऑसूओ से अपनी ऑखो को नम करने लगी। उस समय सुभद्रा अपने पति को नहला रही थी और गरम-गरम ऑसू की एक बूँद धन्ना की पीठ पर जा गिरी।

तब धन्ना ने सुभद्रा से पूछा–क्या बात है? आज तुम क्रदन क्यो कर रही हो?

सुभद्रा–मेरा भाई सयम लेगा, वह प्रतिदिन एक-एक पत्नी का परित्याग कर रहा है। जब वह सयम ले लेगा तो मै बिना भाई की बहन हो जाऊँगी।

धन्ना–अरे सजनी ! तेरा भ्राता कायर है। वह प्रतिदिन एक-एक पत्नी को त्यागता है। यदि शूरवीर होता तो एक साथ बत्तीस को त्यागता।

सुभद्रा–स्वामिन् ! कहना सरल है, लेकिन कर दिखलाना कठिन है।

धन्ना–अच्छा, लो अभी जाता हूँ, सयम लेने। तुमने मेरे भीतर का वीरत्व

जगा दिया, अब मैं सयम ही लूँगा।

सुभद्रा—अरे स्वामिन् ! यह क्या? यह तो मैंने विनोद मे कहा था। आप मुझे माफ करदो। यो कहकर सुभद्रा चरणो मे गिर कर रोने लगी।

धन्ना ने कहा—ऐसी ही अनुराग है तो तुम भी मेरे साथ सयम ग्रहण कर लो।

तब धन्ना के साथ आठो पत्नियॉ तैयार हो जाती हैं। उसी समय भगवान् भी राजगृह के वैभारगिरि पर्वत पर आये। धन्ना को भी ज्ञात हुआ तब वह अनेक दीन-हीनजनो को दान देकर स्त्रियो के साथ शिविका मे बैठकर भगवान् के पास आया और विधिपूर्वक सयम ग्रहण किया। शालिभद्र को जब धन्ना और सुभद्रा की दीक्षा का पता चला तब वह भी शीघ्रता करके दीक्षा लेने श्रेणिक राजा के साथ भगवान् के पास आया और उसने भी भगवान् से सयम ले लिया।[18]

भगवान् ने अनेक साधुओ सहित वहॉ से विहार कर दिया।*

***टिप्पण**– धन्ना और शालिभद्र भगवान् के साथ विहार करके चले गये और बहुश्रुत बनकर पक्ष, मास, दो मास और चार मास की तपस्या करके पारणा करते थे। इस तपश्चर्या से उनके शरीर का मास और रुधिर सूख गया। शरीर केवल हड्डियों का ढॉचा मात्र रह गया। बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर भगवान् महावीर के साथ वे दोनो मुनि राजगृह आये।

भगवान् के राजगृह पदार्पण से जनता में हर्ष की लहर व्याप्त हो गयी और लोगों के झुण्ड के झुण्ड प्रभु के दर्शन वन्दन एव वाणी श्रवण को आने लगे। धन्ना और शालिभद्र के मासक्षपण का पारणा था। वे भगवान् के पास भिक्षा की आज्ञा लेने के लिए पहुँचे। भगवान् ने शालिभद्र मुनि से कहा—तुम्हारी माता के हाथ से पारणा होगा। शालिभद्र मुनि ने प्रभु के कथन को स्वीकार किया एव धन्ना और शालिभद्र मुनि भद्रा के घर पर गोचरी हेतु गये। दोनो मुनि भद्रा के गृहद्वार के पास खडे रहे लेकिन भद्रा तो सम्भ्रान्त चित्त वाली बन रही थी। क्योकि वह तो चितन कर रही थी कि भगवान् महावीर के साथ धन्ना एव शालिभद्र मुनि पुन राजगृह नगर पधारे हैं और मुझे दर्शन करने जाना है। इसी उधेडबुन में वह दर्शन हेतु तैयारी कर रही थी। धन्ना और शालिभद्र मुनि तप से अत्यन्त कृशकाय हो गये अतएव कोई उन्हे पहचान ही नहीं पाया। भद्रा का तो उधर ध्यान तक नहीं गया। क्षण-भर खडे रहकर मुनिद्वय पुन भद्रा के महल से लौट गये। जब वे मार्ग मे जा रहे थे तो शालिभद्र की पूर्वभव की माता धन्या दही और घी बेचने के लिए आ रही थी, वह सन्मुख मिली। शालिभद्र मुनि को देखते ही वह रोमाचित हो गयी। उसके उरोजो से पयस की धारा प्रवाहित होने लगी। उसने अत्यन्त भक्ति-भाव से शालिभद्र और धन्ना मुनि को दधि बहराया।

उस दही को लेकर दोनो मुनि भगवान् के पास पहुँचे और भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके पूछा—भगवन् ! आपने फरमाया था कि मासक्षपण का पारणा तुम्हारी माँ के हाथ से होगा तो उसके हाथ से पारणा क्यो नहीं हुआ? तब भगवान् ने फरमाया—जिस महिला ने तुम्हे दही बहराया, वह तुम्हारे पूर्वभव की माता है। उसका नाम धन्या है। वह धन्या पहले राजगृह के समीप शालिग्राम में आकर रहती थी। उसका सारा वश नष्ट हो गया तो वह अपने पुत्र सगम को लेकर इस गॉव मे रहने लगी। वह सगम भेड-बकरियॉ आदि को चराकर अपनी आजीविका चलाता था। एक दिन पर्वोत्सव के समय घर-घर खीर बनी तब सगम ने भी अपनी माता से जिद्द किया कि तुम भी घर पर मेरे लिए खीर बनाओ। लेकिन धन्या के पास मे सामग्री नहीं थी अत उसने पुत्र को बहुत समझाया, लेकिन पुत्र नहीं माना। तब वह अपने पूर्व वैभव का स्मरण कर जोर-जोर से रुदन करने

तब भद्रा मुनियो को वन्दन कर खिन्न मन वाली होकर अपने घर लौट गयी और श्रेणिक अपने महल मे। (त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र, पृष्ठ 217-224)

इधर धन्ना और शालिभद्र मुनि दोनो समाधिभाव मे लीन हो गये। सथारा पूर्ण होने पर धन्ना मुनि सिद्ध, बुद्ध, मुक्त अवस्था प्राप्त कर गये एव शालिभद्र मुनि का आयुष्य सात भव कम होने से वे सवार्थसिद्ध विमान मे गये। (शालिभद्रचारित्र, जवाहर किरणावलि, पृष्ठ-260)

अन्यत्र यह उल्लेख भी मिलता है कि धन्ना और शालिभद्र मुनि काल करके तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले सर्वार्थसिद्ध विमान मे देव हुए। वहॉ से मनुष्य भव प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करेगे।(त्रिषष्टिशलाकापुरुषचारित्र पृष्ठ 217-224)

लगी। उसके रुदन की आवाज को सुनकर पडोसी बहिने आई और रुदन का कारण पूछा। धन्या ने कारण बतलाया तब सभी ने मिलकर दुग्धादि धन्या को दिये। तब धन्या ने खीर बनाई और पुत्र को थाल मे खीर परोस कर स्वय घर के कार्य मे लग गयी। तभी एक मुनिराज मासक्षपण के पारणे में आये और सगम ने उदात्त भावो से वह खीर बहराई। मुनि तो खीर लेकर चले गये। इधर धन्या आई तो पुत्र सगम थाली चाट रहा था। तब धन्या ने खुद के लिये रखी खीर सगम को दे दी। सगम अतृप्त होकर सारी खीर खा गया और अजीर्ण होने से उसी रात्रि मे मुनि को स्मरण करता हुआ मरण को प्राप्त हो गया। उसी सगम का जीव शालिभद्र के रूप मे जन्मा। हे मुनि तुम पूर्वभव मे सगम ही थे और दही बहराने वाली तुम्हारी माता धन्या है।

इस प्रकार दही से पारणा करके दोनो मुनि भगवान् की आज्ञा लेकर अनशन करने के लिए वैभारगिरि पर गये। वहाँ जाकर शिलातल की प्रतिलेखना की और वहाँ पादपोपगमन अनशन स्वीकार करके शरीर का व्युत्सर्ग कर दिया।

इधर शालिभद्र की माता भद्रा एव श्रेणिक राजा भगवान् को वदन करने आये। उन्होने वहॉ धन्ना एव शालिभद्र को नहीं देखा तो भगवान् से पूछा—भते ! धन्ना और शालिभद्र कहाँ हैं?

भगवान् ने फरमाया कि वे आज मासक्षपण के पारणे के लिए तुम्हारे घर आये थे लेकिन तुम्हें यहॉ आने की व्यग्रता थी तुमने मुनियो को देखा तक नहीं, अत वे मुनि तुम्हारे घर से लौट गये। रास्ते मे शालिभद्र की पूर्वभव की माता धन्या ने उन्हे दही बहराया। वे दही से पारणा करके वैभारगिरि पर्वत पर अनशन करने गये हैं।

तब भद्रा श्रेणिक राजा के साथ तुरन्त वैभारगिरि" पर पहुॅची। वहॉ मुनियो को पाषाण की तरह सोये देखा तो भद्रा रुदन करने लगी—हे वत्स ! तुम घर पर आये परन्तु मैं तुम्हे पहिचान न सकी परन्तु तुम मेरे पर इस बात से नाराज मत होना क्योकि तुम तो गृहत्यागी अणगार हो। मैंने सोचा था कि सयम लेकर कभी तो तुम मेरे नेत्रो को तो आनन्द दोगे, लेकिन तुम तो शरीर का ही परित्याग कर रहे हो तब मै अब तुम्हारे दर्शन कैसे करूँगी। तुमने इतनी उग्र तपश्चर्या करके शरीर को कृश क्यों किया?

तब भद्रा का मातृ-वात्सल्य देखकर राजा श्रेणिक ने कहा—अरे ! तुम इस हर्ष के स्थान पर रुदन क्यों कर रही हो? तुम्हारा पुत्र कितना पराक्रमी है जिसने अपार लक्ष्मी का परित्याग कर प्रभु के चरणो में सयम अगीकार किया और भगवान् महावीर का वास्तविक शिष्य बनने हेतु कठोर तप किया। इस प्रकार राजा श्रेणिक ने प्रतिबोध देकर भद्रा का रुदन समाप्त करवाया।

अनुत्तरज्ञानचार्य का चतुर्थ वर्ष
टिप्पणी

I राजगृह

यह नगर महावीर के उपदेश और वर्षावास के केन्द्रो मे सबसे बडा और प्रमुख केन्द्र था। इसके बाहर अनेक उद्यान थे किन्तु महावीर के समवसरण का स्थान गुणशिलक उद्यान था, जो राजगृह से ईशान दिशा मे था। राजगृह राजा श्रेणिक के राज्य काल मे मगध की राजधानी थी। यहॉ के सैकडो राजवशी और अन्य नागरिक स्त्री–पुरुषो को महावीर ने अपने श्रमणसघ मे दाखिल किया था। हजारो मनुष्यो ने जैनधर्म को स्वीकार किया था। जैनसूत्रो मे राजगृह मे महावीर के दो सौ से अधिक बार समवसरण होने के उल्लेख है।

आजकल राजगृह "राजगिर" नाम से पहचाना जाता है, जिसके पास मोहागिरि पर्वतमाला के पॉच पर्वत है, जो जैनसूत्रो मे वैभारगिरि विपुलाचल आदि नामो से उल्लिखित है। राजगिर बिहार प्रान्त मे पटना से पूर्व–दक्षिण व गया से पूर्वोत्तर मे अवस्थित हैं।

II औपमिककाल

जिस काल की सख्या रूप मे गणना की जा सके, उसे गणित योग्य काल कहते हैं। काल का सूक्ष्मतम भाग समय होता है। असख्यात समय की एक आवलिका होती है। 256 आवलिका का एक क्षुल्लक भव होता है। 17 से कुछ अधिक क्षुल्लक भव का एक उच्छ्वास नि श्वास होता है। इससे आगे की सख्या स्पष्ट है। सबसे अन्तिम गणनीय काल शीर्ष प्रहेलिका है जो 194 अको की सख्या हे।

यथा 758263253073010241157973569975696406218966848080183296 इन चौपन अको पर 140 बिन्दियॉ लगाने से शीर्ष प्रहेलिका का प्रमाण आता हे, इसके आगे का काल औपमिक है। अतिशय ज्ञानी के अतिरिक्त साधारण व्यक्ति उसको गिनती करके उपमा के बिना ग्रहण नहीं कर सकते इसलिए उसे औपमिक काल कहा है।

श्री अनुयोगद्वार चूर्णि, आ हरिभद्रसूरि, पृ 56–57

III बालाग्र

आठ रथरेणुओ के मिलने से देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यो का एक बालाग्र होता है। देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यो के आठ बालाग्रो से हरिवर्ष और रम्यक् वर्ष के मनुष्यो के आठ बालाग्रो से हेमवत, हिरण्यवत मनुष्यो का एक बालाग्र, हैमवत, हिरण्यवत के मनुष्यो के आठ बालाग्रो का पूर्वविदेह

मनुष्यो का एक बालाग्र, पूर्वविदेह मनुष्यो के आठ बालाग्रो से एक लिक्षा।

IV काल

यद्यपि भगवान् महावीर के चारित्र ग्रन्थो मे काल का वर्णन पहले है और धान्य की योनि के लिए बाद मे निर्देश है लेकिन भगवती सूत्र मूल पाठ मे धान्य की योनि का कथन पहले एव काल का वर्णन उसके बाद मे होने से यही क्रम दिया है।

देखिये भग , अभयदेव, वही, पत्राक 499–505

V गोभद्र

यद्यपि कई आचार्यो ने गोभद्र सेठ के बारे मे ऐसा उल्लेख किया है कि शालिभद्र जब छोटा था तब उसके पिता गोभद्र ने दीक्षा ले ली (भ महावीर एक अनुशीलन आ देवेन्द्रमुनि) लेकिन चारित्र ग्रन्थो मे शालिभद्र के विवाह के पश्चात् ही गोभद्र की दीक्षा हुई थी। ऐसा उल्लेख हुआ है। त्रिषष्टिशलाकाकार ने भी यही माना है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चारित्र, वही, सर्ग–10, पृ 218

VI वैभारगिरी

यह पर्वत राजगृह के पॉच पर्वतो मे एक है। महावीर के समय मे इसके पास पाँच सौ धनुष लबा एक गर्म पानी का ह्रद था, जिसका जैन सूत्रो मे "महातपोपतीर" नाम से उल्लेख हुआ है और उसे "प्रस्रवण" अर्थात "स्त्रोत" कहा है। आज भी उसके पास गर्म जल के कतिपय कुण्ड हैं जो भीतर के उष्ण जलस्रोतो से हर समय भरे रहते हैं।

अनुत्तर ज्ञानचर्या का पंचम वर्ष

राज्य का कहर

संयम की एक झलक :

राजगृह का ऐतिहासिक वर्षावास परिसमाप्त कर भगवान् ने चम्पा[1] की ओर विहार किया और ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् चम्पा पधार गये और उसके बाहर स्थित पूर्णचन्द्र यक्ष के यक्षायतन मे पधार गये।

उस समय चम्पा नगरी का राजा दत्त जिनधर्मानुरागी था। जैसे ही उसने श्रवण किया कि भगवान् चम्पा मे पधारे हैं, वह अत्यन्त हर्षित हुआ। अपनी धर्मप्रिया महारानी रक्तवती एव सुपुत्र महाच्चन्द्र युवराज सहित प्रभु के दर्शन एव धर्म-श्रवण हेतु गया। भगवान् महावीर ने अपनी गम्भीर गिरा से श्रोताओ को मत्रमुग्ध बना दिया। महाच्चन्द्र ने भगवान् की वाणी को हृदय मे स्थान देते हुए श्रावक योग्य व्रतो को ग्रहण किया। भगवान् भी वहॉ से विहार कर गये। एक दिन अर्द्धरात्रि मे पौषध मे धर्म-जागरण करते हुए महाच्चन्द्र के मन मे मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होने से वैराग्य भाव का जागरण हुआ और चिन्तन की चॉदनी मे आत्मा को उज्ज्वल बनाने के लिए भगवान् महावीर के सान्निध्य की आकाक्षा करने लगा कि यदि भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए चम्पा नगरी पधारे तो मै भी प्रभु के चरणो मे प्रव्रजित बनूॅगा।

इधर महच्चन्द्र दीक्षा अगीकार करने का चिन्तन कर रहा है और चम्पा[क] नगरी वह भी अनेक धार्मिक-अनुराग रखने वालो की भव्यो की निवास दात्रीभूमि है। वहॉ रहने वाले अनेक धनाढ्य व्यक्ति मन मे धार्मिक भावनाओ से ओतप्रोत होकर विकासोन्मुख जीवन जीने वाले है। वहॉ रहने वाला कामदेव गाथापति अठारह हिरणयकोटि मुद्राओ का स्वामी था। उसके छ हिरण्यकोटि निधान मे थे, छ हिरण्यकोटि घर मे और छ हिरण्य कोटि व्यापार मे नियोजित थे। उसके दस-दस हजार गायो के छ गोकुल थे। वह चम्पा का प्रतिष्ठि व्यक्ति था। अनेक व्यक्ति समय-समय पर उससे मत्रण करने हेतु आया करते थे।

भगवान् महावीर अपने ज्ञानालोक मे महच्चन्द्र के भावो को जान रहे थे और अनेक भव्यात्माओ के मोक्ष मार्ग स्वीकृत करने के तथ्य की भी जान रहे थे। अतएव उन सब पर अनुकम्पा करने के लिए भगवान् पुन चम्पा पधारे। महच्चन्द्र प्रभु का आगमन जानकर हर्षोल्लास के साथ प्रभु चरणो मे पहुचा और माता-पिता से अनुमति प्राप्त कर प्रव्रजित हो गया है।[1]

कामदेव गाथापति को भी जब यह ज्ञात हुआ तब वह भी अपने रथ पर

(क) चम्पा– जिस समय भगवान् दुबारा चम्पा पधारे उस समय वहाँ का राजा जितशत्रु था क्योंकि कामदेव के वर्णन मे जितशत्रु का उल्लेख मिलता है।

समारूढ होकर धर्मदेशना श्रवण करने गया।

भगवान् की अर्थ-गाम्भीर्य युक्त ससार तिराने वाली वाणी को श्रवण कर उसका रोम-रोम पुलकने लगा और उसने प्रभु से निवेदन किया कि मैं इनता सामर्थ्य तो नहीं रखता कि गृहवास छोडकर आपके चरणाम्बुजो मे मुण्डित बन जाऊॅ लेकिन मै अभी आपके मुखारबिन्द से श्रावक के ग्रहण योग्य बाहर व्रतो को स्वीकार करना चाहता हूँ।

तब भगवान् ने उसके निर्मल भावो को जानकार श्रावक योगय बारह व्रतो को स्वीकार करवाया। वह भी गृहस्थ धर्म की अनुपालना करता हुआ अपने जीवन को कल्याण मार्ग पर अग्रसर करने लगा। भगवान् भी महच्चन्द्र की दीक्षा एव कामदेव के व्रत अगीकार करने के पश्चात् ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।*

प्रतिबोध प्रभावती का :

उस समय मे सिधुसौवीर जनपद की राजधानी 'वीतिभय'[1] नगर थी, वहॉ का राजा उदायन उस युग का परम प्रतापी नरेश हिमगिरि-सी शोभा का वरण कर रहा था। राजा उदायन सिधुसौवीर प्रमुख सोलह जनपद के वीतिभय आदि तीन सौ त्रेसठ नगर का स्वामी था। वह महासेन आदि दस मुकुटबद्ध राजा तथा अन्य बहुत-से राजा, ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदि पर आधिपत्य करता हुआ राज्य का सचालन कुशलतापूर्वक कर रहा था।[3]

उसकी प्रभावती नामक पटरानी कमनीय अग-प्रत्यगो वाली, मृगनयनी, हास-परिहास से मन को मत्र-मुग्ध करने वाली वैशाली गणराज्य के अधिपति चेटक की दुहिता थी।महारानी प्रभावती ने समय आने पर एक शिशु का प्रसव किया जिसका नाम अभीचिकुमार रखा गया। अभीचिकुमार युवराज प्रदेशी राजा के राज्य (शासन), राष्ट्र (देश), बल (सेना), वाहन (रथ, हाथी, अश्वादि), कोष, कोठार (अन्न भडार), पुर एव अन्त पुर की स्वय देखभाल करता था। राजा उदायन की सहोदरा भगिनी के भी एक पुत्र था, जिसका नाम केशीकुमार था।[4]

प्रभावती देवी पितृ-गृह के सस्कारो से समन्वित जिनधर्म के प्रति दृढ आस्थावान थी[5], लेकिन राजा उदायन तापसो का भक्त था।[6] महारानी प्रभावती उदायन को जिनधर्मानुरागी बनाने मे सदैव तत्पर रहती थी, लेकिन उसको अपने प्रयासो मे सफलता नहीं मिली। फिर भी उसने अपने पुरुषार्थ का परित्याग नहीं किया। एक बार राजा उदायन वीणा बजा रहा था और प्रभावतीदेवी नृत्य

---

*महावीर कथा के अनुसार कामदेव ने महच्चन्द्र के साथ ही चम्पा नगरी मे गृहस्थ धर्म स्वीकार किया था।

– महावीर कथा, गोपालदास जीवाभाई पटेल, पृष्ठ–307

कर रही थी, तब राजा उदायन को सिररहित प्रभावती का धड दिखाई दिया जिसे देखकर वह किकर्तव्यविमूढ बन गया। उसके अग-प्रत्यग शिथिल पड गये और हाथो से वीणा छूट गयी। तब महारानी ने पूछा—राजन् ! आप वीणा बजा रहे थे और यकायक यह क्या हुआ? तब उदायन मौन धारण किये बैठा रहा, लेकिन प्रभावती ने जब बार-बार पूछा तो उदायन ने बता ही दिया कि मैने अभी तुम्हारा सिररहित धड नाचते देखा है, अतएव अब तुम्हारी आयु बहुत कम अवशिष्ट है। अपनी मृत्यु को नजदीक जानकर प्रभावती उदासीन नही हुई, अपितु आनन्दमग्न हो गयी, क्योकि उसने सोचा कि मुझे जीवन की चन्द घडियो का उपयोग सयम ग्रहण करने मे करना है। इस प्रकार चितन कर वह अन्त पुर मे गयी और उसने राजा से प्रव्रज्या की आज्ञा मॉगी, लेकिन राजा ने आज्ञा नहीं दी।

एक समय रानी ने दासी से देव-पूजा के लिए वस्त्र मगवाये। दासी वस्त्र लाई, उस पर प्रभावती को लाल छीटे दिखाई दिये। तब प्रभावती महारानी ने कहा—ऐसे क्या अशुभ वस्त्र लाई है। यो कहकर क्रोध से आवेशित होकर उसने अपने हाथ मे रहा हुआ दर्पण दे मारा, जिससे तत्क्षण दासी की मृत्य हो गयी। तब महारानी घोर पश्चात्ताप करने लगी कि अहो ! आज मेरा अहिसा अणुव्रत भी खण्डित हुआ और पचेन्द्रिय घात-जन्य भयकर पाप भी लगा। ओह ! जब अन्य पचेन्द्रिय घात भी नरक का कारण है तब स्त्री की हत्या अरे, वह तो घोर नरक का कारण है। अब तो चारित्र अगीकार करना मेरे लिए श्रेयस्कर है। यह सोचकर महारानी ने राजा से दीक्षा हेतु अनुमति मॉगी कि मेरा अब चन्द घडियो का जीवन है और मैंने एक दासी की हत्या का घोर पाप भी कर डाला। इससे मेरे मन मे भीषण पश्चात्ताप हो रहा है। स्वामिन् ! मै ससार से विरक्त बनकर सयम ग्रहण करना चाहती हूँ, आप अनुग्रह करके अनुज्ञा प्रदान कीजिये।

महारानी की अतीव विरक्ति देखकर राजा ने कहा—मैं तुम्हारे मार्ग का कटक नहीं बनना चाहता, लेकिन एक बात अवश्य कहूँगा कि तुम देव बनो तो मुझे प्रतिबोधित करना। महारानी प्रभावती ने कहा—राजन् ! ऐसा ही करूँगी। ऐसा कहकर चारित्र ग्रहण कर लिया। कुछ समय सयम पर्याय का पालन कर अत समय मे अनशन कर मृत्यु का वरण कर प्रथम देवलोक का महर्द्धिक देव बन गयी।*

---

*टिप्पणी-त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र मे प्रभावती के देव बनने का उल्लेख है जबकि भगवती सूत्र के वर्णनानुसार प्रभावती राजा उदायन की दीक्षा के समय मौजूद थी क्योकि जब भगवान् वीतभय नगर पधारे तो प्रभावती प्रमुख रानियो के भगवान् के समीप जाकर धर्म कथा सुनने का उल्लेख मिलता है। अतएव प्रभावती के देव बनने का कथानक बाद मे जोडा गया है ऐसा सभव है (तत्त्व तु केवलिगम्यम्) साथ ही यहाँ पर प्रभावती और उदयन के कथानक मे प्रतिमा पूजन का उल्लेख त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र ने किया है लेकिन भगवतीसूत्र मे उदायन के वर्णन मे ऐसा कोई उल्लेख नहीं है अत प्रतिमा पूजन का वर्णन प्रक्षिप्त लगता है।

देव बनने के पश्चात् प्रभावती ने राजा को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रतिबोधित करने का प्रयास किया, लेकिन नृपति प्रतिबुद्ध नहीं हुआ। तब देव ने विचार किया कि उदायन नरेश ऐसे ही सबोधि प्राप्त करने वाला नहीं है। इसलिए उसने नरेश को प्रतिबुद्ध करने के लिए अवधिज्ञान से उपाय सोचा। उपाय जानकर उसने तापस का रूप बनाया और हाथ मे दिव्य अमृतफल भरे हुए पात्र को ग्रहण कर राजा उदायन के समीप गया। तत्पश्चात् राजा को अमृत फल से सभृत पात्र भेट दिया। ऐसी सुन्दर भेट प्राप्त कर राजा फूला नहीं समाया। उसने तापस से पूछा—ये अपूर्व अमृत-फल तुम कहाँ से लाये हो?

तापस—इस नगर के समीप 'दृष्टि-विश्राम' (दृष्टि को आनन्द मिले ऐसा) उद्यान है, उसमे ऐसे दिव्य फल हैं।

राजा—चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ, मुझे वो आश्रम बता दे।

तापस—चलिये! यो कहकर दोनो साथ-साथ चलते हैं। थोडी दूर जाकर तापस रूपी देव ने नन्दनवन जैसा एक उद्यान निर्मित किया। उसमे अनेक तापस एव प्रफुल्लित मनोरम अमृतफल नेत्रो को लुब्ध बना रहे थे, जिनकी शोभा दृष्टिगत कर राजा अपने-आपको रोक ही नहीं पाया और वह फल लेने के लिए लपका कि तपस्वी साक्षात् प्रेत के समान नृप का सहार करने के लिए दौडे। तब राजा भी भयभीत होकर चोर की तरह बेतहाशा भागने लगा। तब भागते-भागते उसने जैन साधुओ को सन्मुख देखा। उस समय साधुओ ने राजा से कहा—राजन्! भयभीत मत बनो। तब राजा उन साधुओ की शरण को स्वीकार कर लेता है। सकट से मुक्त बनकर वह जैनधर्म का अवलम्बन ग्रहण करता है। देव, गुरु और धर्म के प्रति उसकी दृढ आस्था जागृत हो जाती है और समय आने पर बारह व्रत-धारी श्रावक बन जाता है।[7]

कुब्जा का हरण :

उदायन राजा के यहाँ पर अनेक दास-दासी-भृत्यादि थे, उनमे एक देवदत्ता नामक कुब्जा[क] दासी भी थी। एक बार गाधार नामक पुरुष गाधार देश से वैताढ्य पर्वत पर आया और उस गिरिमूल[ख] मे उपवास करके साधना करने लगा। उसकी भक्ति से प्रभावित होकर शासनदेवी ने उसके मनोरथ पूर्ण किये। उसको वैताढ्य गिरि की तलहटी मे छोडा और मनोरथ पूर्ण करने वाली एक सौ आठ गोलियाँ दीं।

तब उसने एक गोली मुँह मे रखी और सोचा कि मुझे वीतिभय नगर जाना है। तब वह वीतिभय नगर पहुँच गया। वहाँ उसका शरीर व्याधिग्रस्त हो गया। उस समय उस देवदत्ता नामक कुब्जा दासी ने अत्यन्त समर्पण भाव से उसकी

(क) कुब्जा—कुबड़ी (ख) गिरिमूल—पर्वत की तलहटी

सेवा की। तब उस पुरुष ने अपना अवसानकाल[क] समीप जानकर कुब्जा दासी को गोलियॉ दे दी और कहा कि तुम जिस मनोरथ की कामना से गोली मुँह मे रखोगी, वह मनोरथ तुम्हारा पूर्ण होगा। दासी अत्यन्त हर्षित हुई और उस पुरुष ने अपना अन्तिम जीवन सुधारने के लिए सयम स्वीकार कर लिया।[8]

गोलियॉ प्राप्त कर कुब्जा दासी ने सोचा कि इनका प्रयोग करके देखना चाहिए। उस समय उसने एक गोली मुँह मे रखी और चितन किया कि मैं रूप और लावण्य मे अप्सरा के समकक्ष बन जाऊँ। तब तत्काल ही वह दिव्यरूप-धारिणी देवी के समान बन गयी। उसके अग-प्रत्यगो से सुवर्ण जैसी कान्ति फूट कर बहने लगी। तब लोगो ने उसका नाम सुवर्णगुलिका (गुटिका) रख दिया।

एक बार उसके मन मे वासना की उत्ताल तरगे तरगित हुई कि रूप तो अत्यन्त आकर्षक बन गया लेकिन बिना उपभोक्ता के वह व्यर्थ है। मैं इस समय किसको अपना जीवन-साथी बनाऊँ। यहॉ का राजा उदायन तो वृद्ध भी है और जनकतुल्य भी। तब अन्य ही युवक का भर्ता रूप मे चयन करना चाहिए। किसको अपना जीवन-सर्वस्व सौंपू, किसके चरणो मे समर्पित बनूँ, यों सोचते-सोचते उसका ध्यान उज्जयिनी[॥] के नृपति चण्डप्रद्योतन की ओर गया और मन मे सकल्प कर लिया कि चण्डप्रद्योतन को ही पति बनाना है। यही सकल्प करके उसने दूसरी गोली खा ली।

उस गुटिका के प्रभाव से उसका अधिष्ठायक देव चण्डप्रद्योतन के पास पहुँचा और उसके सामने स्वर्णगुलिका के असीमित रूप-सौन्दर्य का वर्णन किया। तब चण्डप्रद्योतन ने एक दूत को कुब्जा के पास प्रणय-प्रस्ताव लेकर भेजा। कुब्जा ने भी उस दूत के साथ अपनी प्रणय-निवेदना प्रस्तुत की। तब चण्डप्रद्योतन राजा अनिलगिरि हस्ती पर आरूढ होकर रात्रि मे वीतिभय नगर आया और स्वर्णगुलिका के प्रणय से प्रभावित होकर उसका हरण करके उसे उज्जयिनी ले गया।

दूसरे दिन प्रात काल राजा उदायन अश्वशाला का निरीक्षण करता हुआ हस्तिशाला में आ पहुँचा। हस्ति निरीक्षण करता हुआ वह आश्चर्यचकित हो गया कि हाथियो का मद सूख क्यो गया है? वह इसी तलाश मे आगे बढ रहा था कि उसको गजरत्न के मूत्र की गंध आई। तब उसने तत्काल ही जान लिया कि यहॉ निश्चय ही कोई गधहस्ती आया है। वह गधहस्ती चण्डप्रद्योतन के सिवाय अन्य किसी के पास नहीं है। फिर उसने अधिकारियो से यह भी जान लिया कि स्वर्णगुलिका दासी गायब है। निश्चय ही वह स्त्री-लम्पट उसे भी चुरा ले गया है।[9]

(क) अवसानकाल–मृत्यु का समय

तब उदायन ने चण्डप्रद्योतन पर चढाई करने का निश्चय किया परन्तु मत्रियो ने कहा–राजन् ! चण्डप्रद्योतन कोई सामान्य नृपति नहीं है। उसका अपार सैन्य-बल है। अतएव एक दासी के लिए उसके साथ युद्ध करना बुद्धिमानी नहीं है।

राजा उदायन ने कहा–अन्याय एव अत्याचार को सहन करना अधर्म है। इसका प्रतिकार करना ही चाहिए। इसके लिए उदायन ने दस मित्र राजाओ को युद्ध के लिए तैयार किया और उनकी विशाल सेना सहित उज्जयिनी पर धावा बोल दिया।

दोनो पक्षो की सेनाओ मे घमासान युद्ध होने लगा। कही किसी का सिर कट कर गिर रहा है, कहीं धड, कहीं हाथ और कही पैर। तीरो की बरसात से रक्त की नदियाँ बहने लगी। स्वय चण्डप्रद्योतन भी युद्ध-स्थल पर अनिलगिरि हस्ती पर सवार होकर शत्रुओ को थर्राता हुआ चला आया, चण्डप्रद्योतन का हाथी तीव्रगति से मण्डलाकार घूमता हुआ विरोधी दल को कुचलता हुआ उद्दण्डता से आगे बढ रहा था। उसके मद की गध से विरोधी सेना के हस्तियो मे भगदड-सी मच गयी। राजा उदायन को उस स्थिति का पता चला तब उसने गधहस्ती के पैर को तीक्ष्ण शर से बींध डाला। उदायन के तीक्ष्ण बाण की असह्य पीडा से वह धराशायी बन गया और चण्डप्रद्योतन जमीन पर गिर पडा। राजाओ ने उसको बदी बनाकर उदायन को सौंप दिया। उदायन ने उसके सिर पर "मम दासी-पति" का पट्टा बॉध दिया।

उदायन बदी बने चण्डप्रद्योतन को लेकर उज्जयिनी से वीतिभय की ओर रवाना हुआ। कुछ मार्ग तय किया कि रास्ते मे ही सवत्सरी[क] का पर्व आ गया। तब राजा उदायन ने एक दिन पहले यात्रा को स्थगित कर अपना पडाव दशपुर नगर मे ही डाल दिया। सवत्सरी की पूर्वसध्या में ही उन्होने चण्डप्रद्योतन को कहलवा दिया कि वे कल उपवास करेगे अतएव तुम अपनी स्वेच्छानुसार भोजन तैयार करवा लेना।

चण्डप्रद्योतन ने सोचा कि शायद उदायन नरेश भोजन नहीं करने के बहाने मुझे विष देना चाहता है, अतएव उसने भी कह दिया कि मै भी कल उपवास करूँगा। उदायन राजा अष्टप्रहर[ख] पौषध का प्रत्याख्यान कर सावत्सरिक आराधना करने लगा। सायकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् उदायन राजा ने 84 लाख जीव-योनियो से क्षमायाचना करते हुए चण्डप्रद्योतन से भी क्षमायाचना का प्रसग उपस्थित किया। तब चण्डप्रद्योतन ने कहा–"मम दासी-पति" के कलक का पट्टा उतारो तभी वास्तविक क्षमायाचना होगी। उस समय तो उदायन ने पौषध मे

(क) संवत्सरी–वर्ष भर मे एक बार मनाया जाने वाला जैन त्यौहार यह चातुर्मास लगने के 50वे दिन मनाया जाता है।
(ख) अष्टप्रहर–सम्पूर्ण दिन रात

उस राजकीय कार्य को नहीं किया, लेकिन दूसरे दिन प्रात काल पौषध पार कर उसको बदीपन से रिहा कर दिया, उसे सत्कार-सम्मान देकर मम दासी-पति का पट्टा हटाकर राज्य वापिस लौटा दिया एव स्वर्णगुलिका को दहेज मे दे दिया।[10]

उदायन का आरोहण :

राजा उदायन निरन्तर धार्मिक आराधना करते हुए श्रावक के बारह व्रतो का पालन कर रहा था। एक दिन वह पौषधशाला मे पौषध करके बैठा हुआ था और अर्धरात्रि मे धर्म-जागरण करते हुए इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए कि वे ग्राम[क], आकर[ख], नगर[ग], खेड[घ], कर्बट[ङ], मडम्ब[च], द्रोणमुख[छ], पत्तन[ज], आश्रम[झ], सवाह[ञ] एव सन्निवेश[ट] धन्य है, जहॉ श्रमण भगवान् महावीर विचरण करते हैं। वे राजा, तलवर, सार्थवाह आदि धन्य है जो परमपिता परमेश्वर प्रभु महावीर के सौम्य वदन के दर्शन कर उन्हे श्रद्धाभिषिक्त होकर वन्दन-नमस्कार करते हैं, उनकी पर्युपासना करते है। मेरे नेत्र भगवान् के दिव्य दीदार को देखने के लिए तरस रहे हैं, उनकी गम्भीर गिरा को श्रवण करने हेतु लालायित है, मन उनके सान्निध्य की समीहा मे सपृक्त है, प्रभु से दूरीकरण मेरे लिए असहनीय है। अब मै इस विरहाग्नि की तपन से त्रस्त हुआ सौम्य समागम की आकाक्षा सजो रहा हूँ। भगवान् वे तो घट-घट के ज्ञाता है, मेरी भावोर्मियो का प्रत्यक्षीकरण कर रहे है। वे यदि विचरण करते हुए यहॉ पधार जाये तो मैं उनके सान्निध्य मे अपना सर्वस्व समर्पण कर डालूँ, अपने जीवन की घडियो को समुज्ज्वल बना डालूँ। इस प्रकार मिलन की पिपासा सजोये रजनी ने विदाई कब ली, पता ही नहीं चल पाया। भूपति उदायन पौषध पाल कर घर चले गये। शरीर से वे मिट्टी के घरौंदे मे और भावो से स्वय के घर मे आने को समुद्यत हैं।

(क) ग्राम–जहा अठारह प्रकार का कर लिया जाता है।
(ख) आकर–लोहे आदि धातुओ की खानो मे काम करने वालो के लिए बसा हुआ ग्राम।
(ग) नगर–जहां पर अठारह प्रकार का कर नहीं लिया जाता है।
(घ) खेड़–जहॉ मिट्टी का परकोटा हो, वह खेड़ या खेड़ा कहा जाता है।
(ङ) कर्बट–जहाँ अनेक प्रकार के कर लिये जाते है, ऐसा छोटा नगर या कस्बा।
(च) मडम्ब–जिस गॉव के चारो ओर अढ़ाई कोस तक अन्य कोई ग्राम नही हो।
(छ) द्रोणमुख–जहॉ जल एवं स्थल मार्ग से माल आता है, ऐसा नगर दो मुँह वाला होने से द्रोणमुख कहलाता है।
(ज) पत्तन–जहॉ जल पार करके माल आता हो, वह जल पत्तन तथा जहाँ स्थल मार्ग से माल आता हो वह स्थल पत्तन कहा जाता है।
(झ) आश्रम–जहाँ संयासी तपश्चर्या करते हो वह आश्रम एवं उसके आस–पास बसा हुआ गाँव भी आश्रम कहलाता है।
(ञ) संवाह–खेती करने वाले कृषक
(ट) सन्निवेश–यात्री के मुसाफिरी मे रहने का स्थान

भीषण यात्रा :

भगवान् महावीर ने भी ज्ञानालोक मे उदायन राजा के भावो को हस्तकमलवत्[क] देखा और अनुकम्पा से अनुरजित होकर चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य से विहार कर सिधुसौवीर जनपद के वीतिभय नगर की ओर स्वय के चरण गतिमान कर दिये।

चम्पा से वीतिभय नगर सात सौ कोस[11] था और मौसम भी गर्मी का प्रारम्भ हो गया था। उस ग्रीष्मकालीन समय मे मरीचिमाली अपनी उत्तप्त मयूखो से भूमण्डल को उत्तप्त बना रहा था। ताप से तपी हुई धरती मानो अगार-सी जलने लगती थी। मार्ग मे भीषण जगल, दूर-दूर तक कोई गॉव परिलक्षित नहीं होता। कही झुग्गी-झोपडी तक भी दिखाई नहीं देती और न ही तरुओ की कोई शीतल छॉव ही मिल पाती। उस मरुप्रदेश की भीषण गर्मी को सहन करना अत्यन्त असह्य था। ऐसी भीषण गर्मी मे निरन्तर उग्र विहार प्रभु कर रहे थे। वे तो अतुल बलशाली और परम सहिष्णु थे, लेकिन उनके साथ गमन करने वाले साधक, वे भीषण गर्मी से सभ्रान्त चित्त वाले बन रहे थे। उन तप्त सडको पर नगे पॉव चलने से पैर ऐसे जल रहे थे मानो अगारो पर ही कदम रख रहे हो। दिनकर की उष्ण किरणो से लुचन किया हुआ सिर तवे की तरह गरम हो रहा था। कठ शुष्क बन रहे थे। प्यास मन को सत्रस्त कर रही थी, लेकिन दूर-दूर तक प्रासुक[ख] पानी मिलने का स्थान तक नजर नहीं आ रहा था। एक-एक क्षण पानी के बिना रह पाना अत्यन्त कठिन लग रहा था। क्षुधा ने भी अपना रूप दिखाना प्रारम्भ किया। भूख के मारे सारा गात्र शिथिल हो रहा था और एक कदम भी चलने का साहस जुटा पाना मुश्किल था। ऐसा लगता था कि अधिक समय तक इस प्रकार रहने से प्राण टिकना भी मुश्किल है। ऐसे समय मे अणगारो के मन मे ऐसा चितन चल रहा था कि कही प्रासुक अन्न-जल मिल जाये तो अपनी क्षुधा-पिपासा को शात कर अपने प्राणो की रक्षा करले।

उत्सर्ग का आश्रयण :

उसी समय तिल से भरी हुई अनेक गाडियॉ उन्हे आती हुई दृष्टिगत हुई। शनै -शनै गाड़ियॉ एकदम सन्निकट आ गयी। उन गाडी वालो ने अणगारो की तरफ अपनी दृष्टि दौडाई और उन्होने अनुकम्पा की दृष्टि से उनके चेहरे पढ लिये। भूख से क्लान्त वदन देखकर उन्होने अणगारो से निवेदन किया—हमारी गाडियो मे तिल भरे हुए हैं, आप इन तिलो को ग्रहण कीजिए।

अणगारो ने भगवान् महावीर से पूछा—भते ! भूख से बेहाल बने हम प्राणो को धारण करने मे समर्थ नहीं है। क्या हम इन तिलो को ग्रहण कर ले?

(क) हस्तकमलवत्-हाथ मे रखे हुए ऑवलो की तरह (ख) प्रासुक-अचित्त, जीव रहित

भगवान् यद्यपि जान रहे थे कि गाडी मे भरे तिल अचित्त हैं, लेकिन फिर भी भगवान् ने अणगारो को तिल ग्रहण करने की अनुज्ञा नही दी, क्योकि भगवान् जानते थे कि यदि मै आज तिल ग्रहण करने की अनुज्ञा दे दूँ तो मेरा अवलम्बन लेकर मेरे शिष्य-प्रशिष्य भविष्य मे सचित्त् तिलो को भी ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार व्यवहार नय को बलवान प्रख्यापित[क] करने हेतु भगवान् ने उन्हे तिल ग्रहण करने की आज्ञा नहीं दी।

समीप मे अचित्त जल का ह्रद[ख] भी भरा था। प्यास से तडफते हुए, प्राण के जाने के भय से अणगारो ने उस तालाब का पानी पीने हेतु भी भगवान् से अनुज्ञा माँगी, लेकिन भविष्य मे सचित्त् जल-सेवन की परम्परा अणगारो मे न हो जाये, इस हेतु उन्होने उस तडाग का जल सेवन करने की भी अनुज्ञा नहीं दी।[12]

फलस्वरूप भूख-प्यासादि परीषहो से बाधित अनेक मुनि उस मार्ग मे कालधर्म को प्राप्त हो गये[13], परन्तु उन्होने "अपवाद मार्ग[ग]" का आश्रय नही लिया। सयम को प्रधानता देते हुए असयम का पोषण करने की बजाय सयम मे मरण श्रेष्ठ है, इस उच्च आदर्श को ख्यापित किया जो आज भी आकाशदीप की भाति साधुओ का पथ प्रशस्त कर रहा है।

कृषक दीक्षा :

सयम की अनुपालना का अनुशासनबद्ध तरीके से पालन करते हुए भगवान् महावीर वीतिभय की ओर बढ रहे थे। उग्र विहार करते हुए, भीषण परीषहो को सहन करते हुए निरन्तर प्रवास कर रहे थे।

एक दिन भगवान् की विहार-यात्रा चल रही थी। मार्ग मे उन्होने देखा कि एक कृषक खेत की जुताई कर रहा था। उसकी गाडी मे क्षीणकाय, जर्जरित शरीर वाले वृद्ध बैल जुते थे। अत्यन्त क्षीणकाय होने से वे सम्यक् तरह से हल नहीं चला पा रहे थे। इस कारण वह कृषक उन बैलो को अतीव निर्दयतापूर्वक पीट रहा था। इतना पीटता जा रहा था कि उन बैलो की चमडी भी छिल गयी और जबरदस्त मार से वे असह्य पीडा का अनुभव कर रहे थे।

करुणासागर भगवान् महावीर का हृदय करुणा से आप्लावित हो गया। उन्होने अपनी करुणा बरसाते हुए गणधर गौतम से कहा—गौतम ! यह कृषक अत्यन्त रौद्ररूप धारण करके बैलो को पीट रहा है, तुम उसे जाकर प्रतिबोधित करो। भगवान् का आदेश प्राप्त कर गणधर गौतम उस खेत मे पहुँचे, जहाँ किसान निर्ममता से बैलो को पीट रहा था। गौतम गणधर ने अत्यन्त मधुर

(क) प्रख्यापित–बतलाना (ख) ह्रद–तालाब
(ग) अपवाद–विशेष आपत्ति मे ग्रहण योग्य मार्ग

शब्दो से किसान को सम्बोधित करते हुए कहा– भद्र ! तू कितनी निर्दयता से इन वृद्ध बैलो पर प्रहार कर रहा है ! इनको कितनी जबरदस्त पीडा हो रही है!

कृषक–अरे बाबाजी ! मैं जानता हूँ कि इनको अत्यन्त कष्ट हो रहा है। परन्तु ये जब चलते ही नही तब मैं काम कैसे करूँ? मेरे पास इतना पैसा भी नहीं कि मैं दूसरे बैल खरीद सकूँ। इनको नहीं जोतूँ तो मेरे परिवार का भरण-पोषण कैसे करूँ?

गौतम–अपने परिवार के सदस्यो के लिए मूक पशुओ पर प्रहार . कभी ये भी तुम्हारे पारिवारिक सदस्य थे ये असहाय, दीन, मलिन है, तुम इन पर जरा करुणा तो रखो। ये करुण नेत्रो से दया की गुहार[क] कर रहे है। इन्होने घास खाकर भी तुम्हे कितना धान्य, फल और फूल दिये हैं। ताप सहकर भी युवावस्था मे दौड-दौडकर तुम्हारा काम किया है। ये वृद्धावय मे आ गये, इनके स्कन्ध शिथिल पड गये, चमडी ढीली हो गयी, शक्ति अल्प हो गयी, तब इन पर तुम प्रहार कर रहे हो। तुम जरा सोचो तो सही। इनकी करुण दशा देखो तो सही। एक पेट पालने के पीछे इतना घोर पाप?

कृषक–तो तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ?

गौतम–अब तुम जीव मात्र पर दया करो।

कृषक ने गौतम गणधर की ऑखो मे झॉककर देखा तो वात्सल्य का सुषुप्त सागर उमड पडा। वह करुणा छलकते नेत्रों से देखता ही रहा और सोचने लगा–मैं भी इनके साथ चला जाऊँ तो अच्छा रहेगा। हॉ, श्रेष्ठ रहेगा। यही सोच किसान बोला–भगवन् ! क्या मैं आप जैसा सत-जीवन अपना सकता हूँ?

गौतम–हॉ, जरूर। तब तुम समस्त जीवो के रक्षक बन जाओगे।

किसान–तब तुम मुझे दीक्षा दे दो।

गौतम गणधर ने उसे वही आर्हती[ख] दीक्षा प्रदान की और कहा–चलो, अब मेरे धर्मगुरु धर्माचार्य के समीप।

किसान–मेरे तो धर्मगुरु आप ही हैं, अब किसके पास जाना है।

गौतम–तुम्हारे और मेरे, सबके वास्तविक गुरु भगवान् महावीर है। वे अनन्त ज्ञानी हैं। वे ससार के समस्त दृष्ट-अदृष्ट पदार्थो के ज्ञाता हैं। वे अतिशय प्रभाव वाले, जन-जन के नयन-सितारे हैं। अब उन्हीं के पास चलते है। ऐसा कहकर दोनो ने वहॉ से प्रस्थान किया।

चलते-चलते भगवान् के समीप पहुँच जाते हैं, लेकिन यह क्या जैसे ही नवदीक्षित मुनि ने भगवान् को देखा, चेहरे पर हवाइयॉ उडने लगी, मुँह

(क) गुहार–पुकार (ख) आर्हती–अरिहतो द्वारा बतलाई गयी

का तेज निरस्त होने लगा मानो चन्द्र को राहु ने ग्रसित कर लिया हो। रोम-रोम कम्पित होने लगा, ऑखे भयग्रस्त होकर चुधिया गयीं और रोमकूपो से पसीना चूने लगा। अब क्या करूँ कहाँ जाऊँ मै मैं यहाँ नहीं रह सकता एक क्षण भी नहीं तब कैसे बोलूँ, क्या कहूँ लेकिन बिना बताये जाना कायरता होगी तब तब मेरे धर्मगुरु को कहता हूँ , (धीरे से गौतम गणधर के पास जाकर) मैं मैं इनके पास नहीं जाऊँगा।

गौतम–ये तो मेरे धर्माचार्य हैं।

किसान–नहीं, मैं यहाँ नहीं रह सकता। मैं जाता हूँ मैं जाता हूँ। यो कहकर वह भयक्रान्त होकर वहाँ से खिसक गया।[14] गौतम गणधर ने उसको समझाने के लिए पीछे देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गये कि वह तो अपने खेत की ओर बेतहाशा भाग रहा था, जैसे नील गाय मानव को देखकर भागती है। तब गणधर गौतम प्रभु के पास आये और वन्दन-नमस्कार करके प्रभु से पृच्छा करने लगे–भते ! आप जैसे अतिशयसम्पन्न महापुरुष को देखकर हर आत्मा खिची चली आती है, जो भी आपश्री के चरणो मे एक बार आता है वह परम शाति का अनुभव करता है। क्रूर से क्रूर व्यक्ति भी आपके दर्शनो से शात-प्रशात बन जाता है। जन्मजात वैर-बधन भी विनष्ट हो जाता है, लेकिन मुझे अत्यन्त आश्चर्य है कि जिस किसान ने प्रतिबोधित होकर सयम ग्रहण किया, वह किसान आपका मुखमण्डल देखते ही भयभीत होकर भाग गया। इसका क्या कारण?

भगवन्–यह सब कर्मो का ही खेल है। इस किसान के जीव की तुम्हारे साथ पूर्वबद्ध प्रीति है इसलिये तुम्हे देखते ही इसके मन मे अनुराग पैदा हो गया और इसको सुलभबोधित्व[क] की प्राप्ति हुई। लेकिन मेरे प्रति अभी इसके मन मे पूर्ववैर एव भय की स्मृतियाँ अवशिष्ट हैं, इसलिए मुझे देखकर यह भयाक्रान्त बन गया।

गौतम–भगवन् ! यह आपके प्रति वैर और मेरे प्रति अनुराग किस भव से सम्बन्धित है।

भगवन्–गौतम ! जब मैं त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव मे राजकुमार था उस समय तुम मेरे प्रिय सारथि थे और इस किसान का जीव शेर-रूप मे था। उस समय मैंने सिह को पकड कर चीर डाला। तब वह तडफने लगा कि मैं इतना शूरवीर होकर भी दूसरो के द्वारा मारा गया। तब तुमने अपने शीतल वचनो से उसकी तडफन शात करते हुए कहा–वनराज ! तुम क्यो ग्लान भाव का अनुभव

(क) सुलभबोधित्व-सम्यक्त्व

करते हो, तुम किसी सामान्य पुरुष द्वारा हताहत नहीं किये गये हो, तुम्हे मारने वाले नरसिह है, अत तुम शोक मत करो।

तुम्हारे इन प्रेमानुरागरजित वचनो से सिह को शाति का अनुभव हुआ और उसने प्रसन्नता से प्राणो का त्याग कर दिया। वही सिह का जीव कालान्तर मे किसान बना है।

तुम्हारे अनुरागमय वचनो की स्मृति के कारण इस किसान को तुम्हारे प्रति प्रीति और मैने इसको मृत्यु के द्वार तक पहुँचाया इसलिए मेरे प्रति वैर का जागरण हुआ है।[15] इसी कारण मैंने तुमको किसान को प्रतिबोधित करने हेतु भेजा था। तुम्हारे से बोध प्राप्त कर उसने एक बार सम्यक्त्व का स्पर्श कर लिया है और वह एक दिन निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त करेगा।

गणधर गौतम प्रभु से वृत्तान्त श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया और तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

संयम की ओर चरण :

विहार-यात्रा अविराम गतिमान थी। भगवान् महावीर भीषण जगलो की यात्रा करते हुए निरन्तर विहारचर्या मे निरत बने हुए, मात्र भव्य जीवो को तिराने के लिए विकट पुरुषार्थ करते हुए उग्र विहार कर वीतिभय नगर पधार गये और वहाँ के मृगवन उद्यान मे तप-सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजने लगे।

वीतिभय नगर मे जिधर देखा, उधर लोग झुण्ड के झुण्ड बनाकर भगवान् के पधारने की चर्चा कर रहे थे एव उनके दर्शन, वदन एव प्रवचन-श्रवण हेतु जाने को लालायित बन रहे थे। समूह मे एकत्रित होकर जनसमुदाय प्रभु के प्रवचन श्रवण हेतु गमनागमन करने लगे। प्रभु ने भी श्रोताओ की उपस्थित परिषद् मे धर्म-गगा प्रवहमान की।

'उदायन नरेश ने भी प्रभु के आगमन को श्रवणकर पूरे नगर को स्वच्छ बनवाया और गजारूढ होकर भगवान् के सामीप्य को प्राप्त कर पर्युपासना करने लगा। उसकी प्रभावती आदि प्रमुख महारानियाँ भी भगवान् महावीर की सन्निधि मे पहुँच कर पर्युपासना करने लगी।

भगवान् ने उस परिषद को धर्मकथा फरमायी जिसे श्रवण कर उदायन नरेश इस प्रकार कहने लगे –

भगवन् ! आपका कथन यथार्थ है, मुझे अत्यन्त अभीष्ट लगा है। मैं अभीचिकुमार का राज्याभिषेक करके आपश्री की सन्निधि मे मुडित होकर प्रव्रजित होना चाहता हूँ।

भगवान्–देवानुप्रिय ! तुम्हे जैसा सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्मकार्य अविलम्ब करो।

भगवान् के ऐसा फरमाने पर उदायन राजा हस्ती स्कन्ध पर आरूढ होकर राजमहल की ओर लौटने लगा। राजा उदायन स्वय महल की ओर लौट रहा है और मन अनेक प्रकार की कल्पनाओ के जाल गूथ रहा है।

वह अध्यात्म-विचारो से अनुप्राणित होकर चितन करता है कि अभीचिकुमार मेरा अत्यन्त प्यारा पुत्र है। उसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है और उसका दर्शन दर्शन, वह तो सुदुर्लभ है। यदि मै अपने वात्सल्य की धरोहर अभीचिकुमार को राज्य-सिहासन दे दूँ तब उसका अमूल्य जीवन क्षणिक, नि सार काम-वासनाओ मे, प्रपचो मे, राजकीय व्यवस्थाओ मे ही समाप्तप्राय हो जायेगा। इन सासारिक कार्यो को सम्पन्न करते हुए वह राग-द्वेष से ग्रसित होकर भीषणतम कर्मो का अनुबध कर लेगा। इतने स्वल्प क्षणिक सुख के पीछे भीषण दु ख-परम्परा को वृद्धिगत कर लेगा। फलत वह चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण करता रहेगा। उसकी आत्मा शाश्वत शाति का अतिशीघ्र वरण नहीं कर पायेगी। तब मैं अपने पुत्र को राज्यलिप्सा के लालच मे डालकर क्यो उसका मार्ग अवरुद्ध करूँ? यदि मैं उसे राज्य नहीं दूँगा तो वह राज्य से विरक्त बनकर एक-न-एक दिन अवश्यमेव भगवान् के सान्निध्य को प्राप्त कर ससार-कातार को पार कर जायेगा।

मैं अभीचिकुमार का राज्याभिषेक नहीं करूँगा लेकिन उसके स्थान पर किसका अभिषेक करूँ किसका अभिषेक करूँ हॉ, हॉ मेरे भानजे केशीकुमार को अभिषिक्त किये देता हूँ। इन्हीं विचारो को दृढीभूत करते हुए उन्होने केशीकुमार के राज्याभिषेक का निश्चय किया और इसी अन्तर्मन्थन को करते हुए वे राजमहलो मे लौट गये। हाथी से उतरकर राजसभा मे पूर्वाभिमुख होकर राज्य सिहासन पर बैठ गये।

सिहासनस्थ होकर नृपति ने आदेश देकर नगर को साफ-सुथरा करवाया। नगर के साफ-सुथरा होने पर उसने राज्याभिषेक की तैयारी करवाई और तैयारी करवा कर केशीकुमार को पूर्वाभिमुख श्रेष्ठ सिहासन पर बिठलाया। वहाँ उसको सुवर्ण आदि कलशो से स्नान करवा कर समस्त राज्यचिह्नो के साथ बाजो के महानिनाद[क] के सहित राज्याभिषेक किया। तदनन्तर अत्यन्त गध-काषायिक वस्त्र से उसके शरीर को पौंछा, गोशीर्ष मलराज का अनुलिम्पन किया एव कल्पवृक्ष के समान वस्त्र एव अलकारो से शरीर को विभूषित किया।

तत्पश्चात् हाथ जोडकर अनेक लोगो ने केशीकुमार को जय-विजय शब्दो

(क) महानिनाद–महाध्वनि

से वर्धापित किया और मधुर गिरा से आशीर्वचन कहते हुए यो कहा—आप परम दीर्घायु बने और सदैव अपने इष्ट परिकर से परिवृत होकर सिधुसौवीर सोलह जनपदो का, तीन सौ तिरेसठ नगर एव आकरो का, मुकुटबद्ध महासेन प्रमुख दस राजाओ का एव अन्य बहुत-से राजा, श्रेष्ठी, कोतवाल आदि पर आधिपत्य करते हुए राज्यधुरा का परिवहन करो।

राज्याभिषेक की रस्म सम्पूर्ण होने पर राजा उदायन ने नवाभिषिक्त नृपति केशीकुमार से दीक्षा ग्रहण करने की अनुज्ञा प्राप्त की। केशी नृप ने उदायन राजा को दीक्षा ग्रहण की अनुमति देने के पश्चात् सम्पूर्ण नगर को स्वच्छ करवाया और उदायन राजा के अभिनिष्क्रमण की तैयारी प्रारम्भ की।

उदायन को सुवर्णमय कलशो के गधोदक से स्नानादि करवाकर उनको वस्त्रालकार से परिमण्डित किया और उनकी अभिलाषानुसार नापित[क] को बुलाया जो कि उनके अग्र[ख] केशो का कर्तन करने लगा। सम्पूर्ण वर्णन जमालि की तरह जानना चाहिए।

अपने दु सह प्रिय-वियोग के दु ख से व्यथित बनी महारानी पद्मावती ने राजा उदायन के अग्रकेशो को ग्रहण किया। तदनन्तर दूसरी बार उत्तर दिशाभिमुख सिहासन रखवाकर उदायन का स्वर्ण आदि कलशो से स्नान करवाकर अभिषेक किया और वह शिविका पर समारूढ होकर भगवान् के पास पहुँचा। प्रभु को वन्दन-नमस्कार करके वह ईशानकोण मे अलकार-आभूषण परित्याग करने हेतु गया। उसके आभूषणादि को पद्मावती देवी ने ग्रहण करके उदायन से कहा—"स्वामिन् ! आप सयम मार्ग मे अप्रमत्त भाव से पुरुषार्थशील रहे। यो कहकर राजा केशी और उनकी मामी, महारानी पद्मावती भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके लौट गये।

अभीचि का गमन :

उदायन के सयम ग्रहण करने के पश्चात् भगवान् वीतिभय से विहार करके विदेह-स्थित वाणिज्य ग्राम नगर पधारे और वहा वर्षावास किया। उदायन राजर्षि सयम का आनन्द से अनुपालन कर रहे है[16] और अभीचिकुमार राज्य नहीं मिलने के कारणो से अनभिज्ञ होने से क्षुब्ध बना हुआ है। एक दिन यामिनी के अन्तिम याम[ग] मे कुटुम्ब जागरणा करते हुए उसके मन मे इस प्रकार के अध्यवसाय उत्पन्न हुए कि मै उदायन का औरस[घ] पुत्र एव महारानी प्रभावती का आत्मज हूँ। मैं अपने पिता के रहते हुए भी उनके समस्त राजकीय कार्यो मे उनका

(क) नापित–नाई
(ख) अग्र–बढे हुए बाल चार–चार अगुल छोड़कर
(ग) अन्तिम याम–अन्तिम प्रहर
(घ) औरस–उदर से जन्मा

सहयोग करता रहा हूँ फिर भी मेरे भुजबल एव पौरुष का अपमान करते हुए मेरे पिता ने अपने भानजे केशीकुमार को राज्य देकर जनता के समाने मुझे अयोग्य साबित कर दिया है। यद्यपि मैं सदैव उनके पदचिह्नो पर चलने का प्रयास करता रहा, उनके प्रत्येक आदेश का अन्त करण से अनुपालन करता रहा, उनके इगित-आकार को समझता रहा, लेकिन फिर भी मुझ निरपराधी के साथ यह रूक्ष व्यवहार, यह अपमान, यह तिरस्कार मै स्वय सहन करने मे अशक्त हूँ, असमर्थ हूँ। तब क्या करूँ? इस तरह निन्दापात्र बनकर वीतिभय नगर मे रहना तो अत्यन्त लज्जा का विषय है। अतएव मुझे वीतिभय नगर का परित्याग कर देना चाहिए।

यो सोचकर अभीचिकुमार अपने अन्त पुर, परिवार सहित समस्त भोजन, शय्यादि सामग्री लेकर वीतिभय नगर से निकल गया और अनुक्रम से गमन करता हुआ अपने मौसेरे भाई चम्पानगरी के राजा कोणिक के पास चला गया और राजा कोणिक से अपनी मानसिक व्यथा सुनाई। राजा कोणिक ने अभीचिकुमार की व्यथा को सुनकर उसे अपने यहॉ आश्रय देकर विपुल भोग-सामग्री का स्वामी बना दिया।

वहॉ अभीचिकुमार जीवाजीव का ज्ञाता बनकर श्रमणोपासक योग्य व्रतो को ग्रहण करके भी उदायन राजर्षि के प्रति वैरानुबध से युक्त था।

अभीचिकुमार ने बहुत वर्षो तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर अन्तिम समय मे अर्धमासिक सलेखणा सथारा कर वैरानुबध की आलोचना प्रतिक्रमण किये बिना कालधर्म को प्राप्त करके रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासो के परिपार्श्व मे, जहॉ असुरकुमारो के चौसठ लाख असुरकुमारावास निरूपित किये गये हैं वहॉ आताप नामक असुरकुमारावासो मे से किसी एक आताप नामक असुरकुमारावास मे आताप-रूप असुरकुमार देव के रूप मे एक पल्योपम की स्थिति से उत्पन्न हुआ है।

वह वहॉ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त बनेगा और परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा।[17]

विष दापन :

उदायन मुनि ने जिस दिन सयम ग्रहण किया उसी दिन से उन्होने बेला, तेला, चोला, पचोला आदि तप के द्वारा कर्मजल को शोषित करते हुए अपनी देह को भी शुष्क बना डाला।

शरीर तपस्या से एकदम क्लान्त हो गया। पाचनशक्ति कमजोर पड गयी। फिर भी साहस जुटाकर वे ग्रामानुग्राम विहार कर रहे थे। एक बार क्षुधा पीडित

होकर उन्होने अपथ्य का सेवन कर लिया। तब उनके शरीर मे महाव्याधि उत्पन्न हो गयी। उस असह्य व्याधि के शमन के लिए उन्होने वैद्य का अवलम्बन लिया। वैद्य ने बतलाया कि यद्यपि आप विदेह साधक है तथापि रोगोपशाति के लिए दही का उपयोग करे। राजर्षि उदायन वहाँ से विहार करके, जहाँ प्रभूत गोधन था, वहाँ पधार गये और दही का सेवन करने लगे। वहाँ रहते हुए उदायन मुनि ने चितन किया कि वीतिभय नगर मे मेरा भानजा केशी राज्य करता है, वहाँ प्रभूत गोधन है, इसलिए वहाँ चले जाना उचित है ताकि मैं दीर्घकाल तक दधिसेवन करूँगा तो किसी प्रकार का दोष नहीं लगेगा। ऐसा विचार करके वे ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वीतिभय पधार गये।

उदायन राजर्षि को वीतिभय की ओर आया हुआ जानकर मत्रियो ने केशी राजा से निवेदन किया—राजन् ! तुम्हारा मामा उदायन तप से सत्रस्त होकर यहाँ आया है। इन्द्रपद समान राज्य का परित्याग करके अब उसके मन मे पश्चात्ताप की अग्नि जल रही होगी कि हाय राज्य छोडकर मैंने यह क्या किया? वह राज्य पुन प्राप्त करने की लिप्सा से ही यहाँ आया है। इसलिए तुम उदायन का विश्वास मत करना।

केशीकुमार—अरे ! स्वय का प्रदत्त राज्य वह पुन ग्रहण करे, उसमे चिता जैसी कोई बात नहीं है क्योकि धनवान व्यक्ति अपना दिया हुआ धन ले भी ले तो उसमे देने वाले को क्या चिता?

मत्रीगण—हे राजन् ! तुमने प्रकर्ष[क] पुण्य के उदय से यह राज्य प्राप्त किया है। तुमको किसी ने राज्य दिया नहीं और राजधर्म तो है ही ऐसा कि इसे प्राप्त करने के लिए पिता, भाई, मामा आदि से बलात्कार करके भी प्राप्त कर लेते है। तब फिर दिये हुए राज्य का परित्याग करना उचित नहीं है।

इस प्रकार कुविचारो के पोषण से केशी के मन मे भी मलिन भावनाओ का प्रवेश हो जाता है। सद्सस्कार प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करना होता है, लेकिन कुसस्कार तो स्वत ही, शीघ्र ही, प्रादुर्भूत हो जाते है। इन्हीं कुसस्कारो से आप्लावित राजा केशी उदायन के प्रति भक्ति का परित्याग कर देता है और मत्रियो से पूछता है—अच्छा, तुम बताओ कि अब मुझे क्या करना चाहिए?

मत्रीगण—राजन् ! शहर मे उनको रुकने के लिए कोई स्थान नहीं देगा तो ठीक रहेगा।

केशीकुमार—हाँ, ऐसी ही उद्घोषणा करवा देता हूँ। यो कहकर केशीकुमार ने नगर मे घोषणा करवा दी कि जो कोई उदायन मुनि को स्थान, भोजन देगा,

---

(क) प्रकर्ष-प्रबल

उनका सत्कार-सम्मान करेगा उसे राज्यद्रोही समझा जायेगा और कालान्तर मे उसे मृत्युदड दिया जायेगा।

जब लोगो ने यह घोषणा सुनी तो उनका मन तो बहुत था कि वे उदायन मुनि का सत्कार-सम्मान करे, लेकिन वे राजा की इस घोषणा से भयाक्रान्त बन गये। इधर उदायन मुनि विहरण करते हुए वीतिभय नगर आये। वे इतना दीर्घ विहार करते अत्यन्त थकान का अनुभव कर रहे थे। लेकिन जहॉ भी जाते वहॉ उन्हे ठहरने के लिए स्थान तक नहीं दिया गया। उनकी उस दयनीय हालत को देखकर एक कुम्हार के मन मे करुणा उमड पडी और उसने सोचा कि मरना तो एक बार है ही। तब यदि मरते हुए प्राणी पर दया करने से कोई मार देता है तो वह मरना भी आनन्ददायी है। ऐसा सोचकर कुम्हार मुनि को स्थान दे देता है।

तब केशी के मत्री राजर्षि उदायन को विष देने की सलाह देते हैं। तब केशी राजा किसी पशुपालक को बुलाकर उसे कहते हैं कि तुम्हारे यहॉ उदायन मुनि जब दधि लेने आये तब तुम उन्हे विषमिश्रित दही देना। पशुपालक राजा की बात को स्वीकार कर लेता है और राजर्षि उदायन को विषमिश्रित दही दे देता है।

अहो सौम्य समभाव :

उस समय उदायन के त्याग-तप से प्रभावित होकर एक देव उदायन के प्रति अनुरक्त था। उसे जैसे ही पता चला कि राजर्षि को दही मे विष दिया गया, वह दही मे से विष का हरण कर लेता है और राजर्षि से निवेदन करता है–देवानुप्रिय ! यहाँ आपको विषमिश्रित दही मिलेगा इसलिए आप दही की इच्छा मत करना।

उदायन मुनि ने देव के कथन को स्वीकार कर लिया, लेकिन कर्मोदय से पुन रोग उनके शरीर मे वृद्धिगत होने लगा, जिसका उपशमन करने हेतु पुन उदायन मुनि दही ग्रहण करते हैं तो देवता पुन विष का हरण कर देता है। इस प्रकार तीन बार दही मे से देव विष निकाल देता है। लेकिन चौथी बार जब मुनि के पात्र मे दही आता है, देवता प्रमादवश विष हरण नहीं कर पाते और उसी विषमिश्रित दही को खाने से मुनि के पूरे शरीर मे जहर व्याप्त होने लगता है। तब मुनि उसी समय अनशन ग्रहण कर लेते है।

एक मास का अनशन करके समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त करके उदायन मुनि केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर मोक्ष पधार जाते हैं। इधर उदायन मुनि पर भक्ति रखने वाले उस देव को अवधिज्ञान से पता चलता है कि वीतिभय निवासियो ने मुनि को विषमिश्रित आहार दिया, तब वह कालरात्रि की तरह वहॉ आता है और निरन्तर धूलि की वृष्टि करता रहता है। उदायन को आश्रय देने वाला, शय्या

देने वाला कुम्भकार, जो निरपराधी होता है, उसको वहाँ से हरण करके सिन्नपल्ली[17] मे ले जाता है। वहाँ 'कुम्भकारकृत' उसके नाम का नगर बसा देता है और उसे वहाँ रखता है। शेष वीतिभय नगर को धूल से ढककर तहस-नहस कर देता है।[18] इस प्रकार उदायन राजा ने अन्तिम राजर्षि के रूप मे भगवान् के सान्निध्य मे दीक्षा ग्रहण करके आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

एक प्रचलित कथानक के अनुसार जब कुम्हार के घर मुनि रहते है तो वह उपचार के लिए वैद्य को बुलाता है। राजा केशी को इस घटना का पता चलता है, तब राजा वैद्य को बुलाता है और कहता है कि तुम मुनि को पुडिया मे जहर मिला देना, मैं तुम्हे एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ दूँगा। वैद्य कहता है–ठीक है। तब वैद्य मुनि को पुडिया मे जहर मिलाकर दे देता है। जैसे ही राजर्षि पुडिया लेते हैं, उनके शरीर मे विष व्याप्त होने लगता है। कुम्हार को पता चलता है कि वैद्य ने मुनि को जहर दे दिया। वह समझ जाता है कि पापी राजा ने ही वैद्य से जहर दिलवाया है, तब उसके मुख से अनायास निकलता है "अहो कष्टम्—अहो कष्टम्।" अरे पापी सम्राट् ने मुनि को जहर दिलवा दिया। उसी समय मुनि बोले–नहीं, नही राजा पापी नहीं है, पापी तो मैं हूँ जिसने राजा को राज्य रूपी विष दिया है। इस प्रकार समभाव से उदायन वेदना सहन कर मोक्षगामी बना।

उदायन का समभाव वर्णनातीत है। ऐसा समभाव धारण करने वाला आत्म-गुणो से समलकृत बन सिद्धिसौंध मे जाता है।

इति

टिप्पणी–उदायन राजर्षि को विष देने की घटना अभीचिकुमार के चम्पा मे जाने के बाद की लगती है। चम्पा में जब अभीचिकुमार गया, उस समय तक श्रेणिक की मृत्यु हो चुकी थी क्योंकि उस समय चम्पा का राजा कौणिक बतलाया है। अतएव श्रेणिक की मृत्यु के पश्चात् ही उदायन को विष दिया गया है, ऐसा सगत लगता है। तत्त्व तु केवलीगम्यम्।

अनुत्तरज्ञानचर्या का पंचम वर्ष

टिप्पणी

I चम्पा

चम्पा और पृष्ठ चम्पा की निश्रा मे महावीर ने तीन वर्ष चातुर्मास व्यतीत किये थे। चम्पा के पास पूर्णभद्र चैत्य नामक प्रसिद्ध उद्यान था, जहॉ महावीर ठहरते थे। चम्पा के राजा का नाम महावीर के समय दत्त और जितशत्रु मिलता है पर पिछले जीवन मे चम्पा का राजा कूणिक था।

जैन सूत्रो मे चम्पा को अगदेश की राजधानी माना है। कोणिक ने जब से अपनी राजधानी बनाई तब से चम्पा अग-मगध की राजधानी कहलाई। पटना से पूर्व मे (कुछ दक्षिण में) लगभग 400 कोस पर चम्पा थी। आजकल इसे चम्पानाला कहते है यह स्थान भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम मे है।

II वीतिभय

यह नगर महावीर के समय मे सिन्धु-सौवीर देश की राजधानी थी। इसके बाहर मृगवन उद्यान था। महावीर चम्पा से विहार कर यहॉ आये थे और यहॉ के राजा उदायन को प्रव्रज्या देकर वाणिज्यग्राम जाकर वर्षाकाल बिताया था। पजाब के भेरा गॉव को प्राचीन वीतिभय बताते हैं।

III उज्जयिनी

मालव अर्थात् अवन्ति जनपद की राजधानी उज्जयिनी एक प्राचीन नगरी है। भगवान् महावीर के समय यहॉ प्रद्योतवशी महासेन चण्डप्रद्योत का राज्य था। वह वश परम्परा से जैन धर्मानुयायी था।

IV उत्सर्ग और अपवाद मार्ग

उत्सर्ग मार्ग सामान्यमार्ग है, अत उस पर हर किसी साधक को चलते रहना है। जब तक शक्ति रहे, उत्साह रहे, आपत्तिकाल मे भी किसी प्रकार की ग्लानि का भाव न आये, धर्म एव सघ पर किसी प्रकार का उपद्रव न हो अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र की क्षति का कोई विशेष प्रसग उपस्थित न हो तब तक उत्सर्ग मार्ग पर ही चलना चाहिये, अपवाद मार्ग पर नहीं।

अपवाद मार्ग पर क्वचित् कदाचित् ही चला जाता है। अपवाद की धारा तलवार की धार से भी अधिक तीक्ष्ण है। इस पर हर कोई साधक, हर समय नहीं चल सकता। जो साधक गीतार्थ है, आचाराग आदि आचार सहिता का पूर्ण अध्ययन कर चुका है, निशीथ आदि छेद सूत्रो के सूक्ष्मतम मर्म का भी ज्ञाता है, उत्सर्ग और अपवाद पदो का अध्ययन ही नहीं अपितु स्पष्ट अनुभव रखता है, वही अपवाद के स्वीकार या परिहार के सम्बन्ध मे ठीक-ठीक निर्णय

दे सकता है।

जिस व्यक्ति को देश का ज्ञान नही कि यह देश कैसा है? यहॉ की क्या दशा है? यहॉ क्या उचित हो सकता है और क्या अनुचित? वह गीतार्थ नही हो सकता (वृहतकल्पभाष्य 951, 952) आचार्य भद्रबाहु और सघदास ने गीतार्थ के गुणो का निरूपण करते हुए कहा है – जो आय–व्यय, कारण–अकारण आगाढ (ग्लान)–अनागाढ, वस्तु–अवस्तु, युक्त–अयुक्त, समर्थ–असमर्थ, यतना–अयतना का सम्यक् ज्ञान रखता है, और साथ ही कर्त्तव्य कर्म का फल परिणाम भी जानता है, वह विधिवेत्ता गीतार्थ कहलाता है।

अपवाद के सम्बन्ध मे निर्णय करने का, स्वय अपवाद सेवन करने का और दूसरो से यथापरिस्थिति अपवाद सेवन कराने का समस्त उत्तरदायित्व गीतार्थ पर रहता है। अगीतार्थ को स्वय अपवाद के निर्णय का सहज अधिकार नही है। बिना कारण अपवाद सेवन अतिचार बन जाता है। इसी को स्पष्ट करते हुए व्यवहार भाष्य वृत्ति उ 10 गाथा 38 मे कहा है –

प्रतिसेवना के दो रूप हैं – दर्पिका और कल्पिका। बिना पुष्ट आलम्बन–रूप कारण के की जाने वाली प्रतिसेवना दर्पिका है और वह अतिचार है तथा विशेष कारण की स्थिति मे की जाने वाली प्रतिसेवना कल्पिका है, जो अपवाद है और वह भिक्षु का कल्प–आचार है।

निशीय – भाष्य (गाथा–466) मे भी कहा है – यदि मैं अपवाद का सेवन नहीं करूँगा, तो मेरे ज्ञानादि गुणो की अभिवृद्धि नही होगी इस विचार से ज्ञानादि के योग्य सन्धान के लिए जो प्रतिसेवना की जाती है, वह सालम्ब सेवना है।

यही सालम्ब सेवना अपवाद का प्राण है। अपवाद के मूल मे ज्ञानादि सद्गुणो के अर्जन तथा सरक्षण की पवित्र भावना ही प्रमुख है।

निशीथ भाष्यकार (गाथा 485) ने ज्ञानादि साधना के सम्बन्ध मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण उल्लेख किया है –

वहॉ पर कहा गया है कि जिस प्रकार अधकार के गर्त मे पडा हुआ मनुष्य लताओ का अवलम्बन कर बाहर तट पर आकर अपनी रक्षा कर लेता है, उसी प्रकार ससार के गर्त मे पडा हुआ साधक भी ज्ञानादि का अवलम्बन कर मोक्ष तट पर चढ जाता है। सदा के लिए जन्म–मरण के कष्टो से अपनी आत्मा की रक्षा कर लेता है।

V उदायन

उदायन वीतिभय नगर का राजा था। 8 राजाओ ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ली थी उनमे एक उदायन भी था। महावीर के पास इन 8 राजाओ ने

दीक्षा ली थी – 1 वीरागक, 2 वीरयश, 3 सजय, 4 एणेयक, 5 राजर्षि, 6 श्वेत, 7 शिव, 8 उदायन (वीतिभयनगर का राजा)

VI सन्निपल्ली

यह गॉव पूर्व दिशा से सिन्धु देश की ओर जाते समय बीच मे पडता था इसके आस–पास का प्रदेश विकट मरूस्थल भूमि थी। जैन सूत्रो के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि सिनपल्ली के मार्ग निर्जल और छायारहित थे। एक सूत्रोल्लेख है कि सिनपल्ली के दीर्घ मार्ग मे केवल एक ही वृक्ष आता है। देवप्रभसूरि के पाण्डवचरित्र महाकाव्य मे उल्लेख है कि जरासन्ध के साथ यादवो ने सिनपल्ली के पास सरस्वती नदी के तटपर युद्ध किया था और युद्ध मे अपनी जीत होने पर वे आनन्दवश होकर नाचे थे, जिससे सिनपल्ली ही बाद मे आनन्दपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुछ भी हो पर इससे यह तो निश्चित है कि सिनपल्ली मरूभूमि म एक प्रसिद्ध नगर था जो बाद मे आनन्दपुर के रूप मे परिवर्तित हो गया था। जैन सूत्रो के अनेक उल्लेखो से उक्त बात का समर्थन होता है हमारे विचारानुसार बीकानेर राज्य के उत्तरप्रदेश मे अवस्थित "आदनपुर" नामक गॉव ही प्राचीन आनन्दपुर का प्रतीक हो तो आश्चर्य नही है।

पुरातत्ववेता, कल्याणविजयजी

अनुत्तर ज्ञानचर्या का प्रथम वर्ष

संदर्भ

1. क. आचारांग सूत्र, द्वितीय श्रुत स्कन्ध, अध्ययन 15, आ.शीलांक वृत्ति, प्रका हर्ष पुष्पामृत जैन ग्रन्थमाला, गुजरात, सन् 1980, पत्रांक 887।
   ख. दृष्टव्य · जिणधम्मो, आ. श्री नानेश, प्रका. श्री अ भा. साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर, तृ.सं. 2002, पृष्ठ 29।
   ग. नानेश वाणी, निर्ग्रन्थ परम्परा में चैतन्य-आराधना, आ.श्री. नानेश, भाग 47, प्रका. श्री अ.भा सा. जैन संघ, बीकानेर, द्वि.सं 2006, पृष्ठ 10।
   घ. तीर्थंकर महावीर, युवा श्री मधुकर मुनि, प्रका. सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, प्र.सं. 1974, पृष्ठ 181।
   ड. श्री महावीर चारित्र, आ. गुणचन्द्र, सप्तम प्रस्ताव, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, वि.स. 1994, पृष्ठ 365।
   च. श्रमण भगवान् महावीर, पुरातत्ववेत्ता प. कल्याण विजय, प्रका. श्री क वि. शास्त्र संग्रह समिति, जालोर, प्र.सं. वि.सं. 1998, पृष्ठ 47।
   छ. तीर्थंकर महावीर भाग 1, श्री विजयेन्द्रसूरि, प्रका. काशीनाथ सराक, बम्बई (अन्धेरी) प्र.सं. 1960, पृष्ठ 252।
   ज. श्री महावीर कथा, सम्पा. गोपालदास जिवाभाई पटेल, प्रका. जैन साहित्य प्रकाशक समिति, अहमदाबाद, प्र.सं. सन् 1941, पृ. 207।
   झ. गणधरवाद, लेखक दलसुख भाई मालवणिया, सम्पा महो. विनय सागर, प्रका. सम्यक्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, प्र. सं. सन् 1982, पृष्ठ 20।
   ञ. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, लेखक डॉ. नेमिचंद शास्त्री, प्रका. श्री भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत परिषद्, प्र स. सन् 1974, पृ. 180।
2. जीवाजीवाभिगम, तृतीय प्रतिपत्ति, आचार्य मलयगिरि वृत्ति, आगमोदय समिति, बम्बई, प्र.सं. सन् 1919, प्रत्रांक 394।
3. जीवाजीवाभिगम, वही, पत्रांक 398-99।
4. प्रज्ञापनोपाङ्गम्, पूर्वार्द्ध, आ. मलयगिरि, आगमोदय समिति, बम्बई, सन 1918, पत्रांक 101।
5 वृहत्संग्रहणी, लेखक चन्द्रसूरि, अनु. श्री यशोदेव सूरि, प्रका. श्री मुक्ति कमल मोहन जैन ज्ञान मंदिर, प्र.स. 1993, वैमानिक अधिकार, गाथा 109-10, पृ. 289।
6 जीवाजीवाभिगम, आ. मलयगिरि, तृतीय प्रतिपत्ति, वही, वैमानिक उद्देशक, पत्रांक 386-87।

7. वही, पत्राक 395।
8. आवलिय विमाणाणं तु अन्तरं नियमसो असंखिज्ज। संखिज्जमसंखिज्जं, भणिय पुप्फावकिण्णाणं।

वृहत्संग्रहणी, वैमानिक निकाय, गाथा 99।

9. क. वृहत्सग्रहणी सूत्र, वैमानिक निकाय, गाथा 92-126, पृ. 273-301।
   ख. त्रिलोकसार, श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, हिन्दी अनुवाद, प्रका. श्री शांतिवीर दिगम्बर जैन संस्थान, श्री महावीर जी, प्र.सं. वीर निर्वाण सवत 2501, पृ. 405-19।
   ग. श्रीमत् भगवती सूत्र, द्वितीयो विभाग, अभयदेव सूरि, आगमोदय समिति, मुम्बई, सन् 1919, पत्रांक 507।
   घ. श्री राजप्रश्नीयसूत्र, आ. मलयगिरि, आगमोदय समिति, सन् 1925, पत्रांक 59-90।
10. क. श्री भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, 10, 6 वही, पत्रांक 506।
   ख. श्रीमत् राजप्रश्नीय सूत्र, आ. मलयगिरि, वही, पत्रांक 59-90।
   ग. वृहत्संग्रहणी, वैमानिकाधिकार, गाथा 96, पृष्ठ 275।
11. क. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, वही-10, 6, 506-7।
   ख राजप्रश्नीयसूत्र, युवा. श्री मधुकर मुनि, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, द्वि.सं. सन् 1991, पृष्ठ 96।
12 क. जैन तत्त्व प्रकाश, श्री अमलोक ऋषि, प्रका. श्री अमोलक जैन ज्ञानालय, धूले, उन्नीसवां सं. सन् 2005, पृ.6।
   ख. द्रष्टव्य-प्रश्नो के उत्तर, द्वितीय भाग, श्री ज्ञानमुनि, जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना, प्र.स., वि.सं. 2021, पृ. 650।
13 क गणधरवाद, लेखक-दलसुख भाई मालवणिया, सम्यक् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, पृष्ठ 20।
   ख. श्रमण भगवान् महावीर, पुरातत्ववेत्ता प. कल्याण विजयजी, वही, पृष्ठ 48।
   ग. तीर्थंकर महावीर, भाग-1, विजयेन्द्र सूरि, पृष्ठ 256।
   घ. उप्पन्नंमि अणंते नट्ठम्मि अ छाउमत्थिए नाणे।
   राईए संपत्तो महासेण वणम्मि उज्जाणे।।538।।
   आवश्यकसूत्र, पूर्व भाग, आ. मलयगिरि, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1928, पत्रांक-300।
14. उवसग्ग गब्भहरणं इत्थीतित्थं अभाविया परिसा।

कण्हस्स अवरकंका, उत्तरणं चंदसूराणं।
हरिवसकुलुप्पत्ति चमरूप्पातो य अट्ठसय सिद्धा।
अस्सजतेसु पूआ, दसवि अणंतेण कालेण।
स्थानांग, हस्तलिखित, संवत् 1656, सेठिया ग्रन्थालय, बीकानेर।

15. क. आवश्यक सूत्र, पूर्व भाग, मलयगिरि वृत्ति, पत्राक 300।
ख. श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजयजी, पृष्ठ 48।
ग. तीर्थंकर महावीर, भाग–1, श्री विजयेन्द्र सूरि, पृष्ठ 256।
घ. श्री महावीर चरित्र, आ.गुणचन्द्र, अष्टम प्रस्ताव, पृ. 366।

16. क. श्री आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1932, पृष्ठ 30।
ख. महावीर चरित्र, गुणचन्द्र, अष्टम प्रस्ताव, पृ. 366।
ग अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग 7।

17. रायप्पसेणियम्, पं. बेचरदास जीवराज दोशी, वि.स. 1994, प्रका. शंभुलाल जगशीशाह, गाधी रस्तो, अहमदाबाद, पृष्ठ–52–58।

18 क. आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, आ. मलयगिरि, पृष्ठ 301–302।
ख. महावीर चरित्र, आ. गुणचन्द्र, पृष्ठ 366।

19. क अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग 7।
ख. आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि, पृ 301–303।
ग. महावीर चरित्र, आ. गुणचन्द्र, पृ 366–67।

20. क. जिणधम्मो, आ. श्री नानेश, प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, तृ.सं. सन् 2002, पृ. 15।
ख. जैन तत्व प्रकाश, श्री अमोलक ऋषि, प्रका अमोलक जैन ज्ञानालय, धुले, पृ 11।
ग. दृष्टव्य :- महावीर स्वामी और दीवाली, श्री गजाधरलाल जैन, प्रका. जैन धर्म प्रचारिणी सभा, काशी, सन् 1912, पृ.11।

21. क अभियान राजेन्द्र कोष, भाग–7।
ख. आवश्यक सूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि, पत्रांक 301–6।
ग महावीर चरित्र, आ गुणचन्द्र, पृष्ठ 367–68।
घ. त्रिषष्टिश्लाकापुरूष चारित्र, आ. हेमचन्द्र। पुस्तक 7, पर्व 10, सर्ग 5, प्रका. जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, वि.स 1960, पृ. 105–7।

22. भगवान् महावीर, लेखक–विराट, प्रका अनुपम प्रकाशन, जयपुर, प्र.स सन्

1975, पृ. 46।

23. तीर्थंकरो का सर्वोदय मार्ग, लेखक डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, प्र.सं. सन् 1974, प्रका. लाला प्रेमचंद जैन, दरियागंज, दिल्ली, पृ. 28।

24. क प्रश्न व्याकरण, अभयदेव सूरि, आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1919, पत्रांक 5।
    ख. भगवान् महावीर का दिव्य संदेश (प्रथम भाग) श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम, तृ.सं. सन् 1931, पृ. 10–11।

25. क प्रश्न व्याकरण, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 14–23।
    ख. सन्मति महावीर, सुरेश मुनि, प्रका. सम्मति ज्ञान पीठ, आगरा, द्वि.सं. 1966, पृ. 73–75।
    ग. भगवान् महावीर के पॉच सिद्धान्त, श्री ज्ञान मुनि, प्रका. आ. आत्माराम जैन प्रकाशनालय, लुधियाना, प्र.सं. वि.सं. 2015, पृ. 32–33।
    घ. आचारांग चूर्णि, जिनदास गणि, श्री ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वेताम्बर संस्था रतलाम, 1941, पत्रांक 7–40।

26. क. आचारांग सूत्र, श्री शीलांकाचार्य वृत्ति, प्रथम श्रुत स्कन्ध, प्रका. हर्ष पुष्पामृत जैन ग्रन्थमाला, गुजरात, सन् 1978, पत्रांक 53–54।
    ख. जीवाजीवाभिगम, मलयगिरि, वही, पत्रांक 106–9।
    ग. प्रज्ञापना, मलयगिरि, पूर्वार्द्ध, वही, पत्रांक 79–83।
    घ. श्री भगवतीसूत्र, द्वितीय भाग, आ. अभयदेवसूरि, 13, 4, 604–5।

27. सूत्रकृतांग, आ. शीलांक, आगमोदय समिति, सूरत, सन् 1917 पत्रांक 121–41।

28. क. भगवान् महावीर और विश्व शांति, श्री ज्ञान मुनि, प्रका. आत्माराम जैन प्रकाशनालय, लुधियाना, चतु. सं., वि.सं. 2017, पृ. 34–35।
    ख. महावीर निर्वाण और दीवाली, श्री फकीरचंद जी महाराज, प्रका. श्री मूल जी गाडालाल मेहता, कलकत्ता, प्र.सं. 1984, पृ. 4–5।
    ग भगवान् महावीर की अहिंसा और महात्मा गांधी, लेखक–पृथ्वीराज जैन, प्रका. श्री आत्मानंद जैन टैक्स्ट सोसायटी, अम्बाला, वि.सं. 2006, पृ. 2–3।
    घ तीर्थंकर महावीर, प्रो. महेन्द्र कुमार जैन, हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी, पृ. 4–5।
    ड. वर्धमान महावीर, श्री कृष्णदत्त भट्ट, प्रका. सन्मति ज्ञान–पीठ, आगरा, प्र. सं सन् 1975, पृ. 42।
    च भगवान् महावीर के हजार उपदेश, श्री गणेश मुनि शास्त्री, प्रका. अमर

जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर, प्र.स. 1973, पृ. 11।

29. महावीर री ओलखाण, डॉ. शान्ता भानावत, प्रका अनुपम प्रकाशन, जयपुर, प्र स. 1975, पृ. 56-57।

30. महावीर के सिद्धान्त और उपदेश, उपा. अमर मुनि, प्रका. सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, प्र.स 1960, पृ. 32-33।

31 क. गणधरवाद, दलसुख भाई मालवणिया, पृ. 66-67।

ख. भगवान् महावीर, मूलचंद, प्रका. चैतन्य प्रिंटिंग प्रेस, बिजनौर, सन् 1931 पृ.7।

ग. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, आ.श्री हस्तीमलजी म.सा , भाग-2, प्रका. जैन इतिहास समिति, जयपुर, प्र.स. 1974, पृ. 7-8।

32 गणधरवाद, दलसुख भाई मालवणिया, वही, पृ. 66-67।

33 क. महावीर शासन, श्री ललित-विजय जी, प्रका आत्म-तिलक ग्रन्थ सोसायटी, पूना, वि.सं. 1978, पृ. 10।

ख. तीर्थंकर चारित्र, बालचंदजी श्रीश्रीमाल, भाग 2, पृ 218।

34 त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, आ. हेमचन्द्र, सर्ग 10, वही, पृ. 108-9।

35 क. यह वेद वाक्य आवश्यक टीका में से लिया गया है। वृहदारण्यकोपनिषद् मे यह वाक्य इस रूप में मिलता है "विज्ञान धन एवैतेभ्यो भूतेभ्यो समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञा स्तीत्वरे ब्रवीति होवाच याज्ञवल्क्य·।"

वृहदारण्यकोपनिषद् 12-938।

ख. श्री आवश्यक सूत्र, मलयगिरिवृत्ति, द्वितीय भाग, पत्रांक 314।

36 क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही-पृ 110।

ख. गणधरवाद, दलसुख माणवणिया, वही, पृ 1-28।

37. क आचाराग चूर्णि, वही, पत्रांक 363-64।

ख. स्थानांग, प्रथमोविभाग·, अभयदेवसूरि, आगमोदय समिति, सन् 1918, तृतीय स्थान।

ग. वृहत्कल्प सूत्र भाष्य, निर्युक्ति भद्रबाहुस्वामी, भाष्यकार सघदास गणि, चतुर्थ विभाग, तृतीय उद्देशक, प्रका. जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, सन् 1933, पृ. 1067-75।

38 क त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 110।

ख श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजयजी, वही, पृ. 54।

39 क. श्री आवश्यक सूत्र, मलयगिरि, द्वितीय भाग, पत्रांक 321।

ख. वाजसनेयीसंहिता (40-5) ।

ग. ईशावास्योपनिषद् में "वदेजति तन्नैजति, तद्दूरे, तदन्तिके। तदनंतरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाहयतः।" यह वाक्य है।

घ. वाजसनेयी संहिता (32-2) श्वेताश्वरोपनिषद् 249 और पुरूष सूक्त मे पुरूष एवेदं सर्वं यद्भूत यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति, पाठ मिलता है।

40 क. विशेषावश्यक भाष्य, भाग-2, गणधरवाद, दिव्यदर्शन ट्रस्ट, बम्बई।

ख. श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजय जी, पृ. 54-58।

41. षड्दर्शन समुच्चय, श्री हरिभद्रसूरि, सम्पा. महेन्द्र जैन, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, आगरा, तृ.सं. 1989, पृ. 45।

42. प्रमाणनय तत्वालोक, वादिदेवसूरि, प्रका. केशवलाल लल्लूभाई झवेरी, अहमदाबाद, वि.सं. 2026, द्वितीय परिच्छेद।

43 क. स्याद्वादमञ्जरी, रचनाकार हेमचन्द्राचार्य, टीका-मल्लिषेणसूरि, प्रका. परमश्रुत प्रभावक मण्डल, आगास, सन् 1979, सारिका 20, पृ. 194-95।

ख. विश्व ज्योति महावीर, उपा. अमर मुनि, प्रका. सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, द्वि सं. संवत् 2028, पृ.3।

44. श्री नंदीसूत्र, मयलगिरि वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1924, पत्रांक 3-6।

45. श्री गणधरवाद, विमलगणिकृत।

46. विशेषावश्यक भाष्य, भाग 2, प्रका. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, मुम्बई, वि.सं. 2039।

47. आवश्यकसूत्र, मयलगिरि, द्वितीय भाग, वही, पत्रांक 327-28।
छिन्नंमि संसयंमी जाइजरामरणविप्पमुक्केण।
सो समणो पव्वइओ, पंचहिं सह खंडियसएहिं।। गाथा 616।

48. प्रमाण मीमांसा, हेमचन्द्राचार्य, प्रका. त्रिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, अहमदनगर, प्र.सं. वीर सं. 2496, पृ. 29।

49. तीर्थंकर महावीर, भाग 1, विजयेन्द्र सूरि, पृ. 298-306।

50. अपाम सोमममृता अन्नूभागमन् ज्योतिरविदाम देवान्। किमस्मान् कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मृत्ये च-। ऋग्वेद संहिता 8-4, 8-3, अथर्वशिर उपनिषद्-3।

51. आवश्यकसूत्र, द्वितीय भाग, मलयगिरि वृत्ति, पत्रांक 330-31।

52. भगवतीसूत्र, तृतीय विभाग, अभयदेवसूरि, आगमोदय समिति, सन् 1921, पत्राक 909।

53. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही पृ. 113।

54. क रत्नाकरअवतारिका, आ. रत्नप्रभ, सम्पा. दलसुखभाई मालवणिया, भाग

3, प्रका लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, प्र सं सन् 1969, पृ 72-84।

ख. Lord Mahavira and his times, Kailash Chandra Jain, Motilal Banarsidass Delhi, F E 1974, Page -102

55 क. त्रिषष्टिश्लाकपुरूषचारित्र, वही, पृ. 114-15।

ख. आवश्यकसूत्र, वही, पत्रांक 334-37।

56. क. सन्मति महावीर, सुरेश मुनि, पृ. 94-95।

ख. जेल में मेरा जैनाभ्यास, सेठ अचलसिंह, अचल ग्रन्थ-माला, आगरा, प्र.सं. सन् 1935, पृ. 36।

57. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 114।

58. श्री महावीर चरित्र, आ. गुणचंद, अष्टम प्रस्ताव, पृ 377।

59 क. जवाहर किरणावली, सती वसुमति, आ. श्री जवाहर, भाग-2, प्र सं 1993, प्रका. जैन जवाहर विद्यापीठ, भीनासर, पृ 191-92।

ख. तीर्थंकर महावीर, श्री मधुकर मुनि, पृ 140, वि.सं 2031।

60 जवाहर किरणावली, सती वसुमति, वही, पृ. 193।

61 क जवाहर किरणावली-नारी जीवन, आ.श्री जवाहर, प्रका. श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर, तृ स. सन् 1980, पृ. 2।

ख. जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व, भाग-2, लेखक मुनि नथमल, सम्पा छगनलाल शास्त्री, प्रका. मोतीलाल बेगाणी चेरिटेबल ट्रस्ट, कलकता, प्र. सं. 1960, पृ. 6।

62 वशिष्ट धर्मसूत्र, 8, 14।

63 स्मृति चन्द्रिका व्यवहार, पृ. 254।

64 अत्रिस्मृति 136-137।

65 महावग्ग, पृ 41।

66 साधुभन्ते, लभेय्य मातुगामो तथागतप्पवेदितं धम्म-विनये आगारस्या अनगारिय पव्वज्जंति। अलं गोतमि, मा ते रूच्चि मातुगामस्स पव्वज्जा ति। "चुल्ल वग्ग, पृ. 273। प्रका. नालन्दा-देवनागरी पाली ग्रन्थमाला, बिहार, 1956।

67 अथ खो महापजापति गोतमी केस छेदायेत्वा कासायनि अत्थानि वच्छादेत्वासम्बहुलाहि साकियानीहि सद्धिं येन वेसाली तेन पक्कामि।

वही, चुल्लवग्ग, पृ. 373।

68. स चे, भन्ते, भव्वो मातुगामो तथागतप्पवेदिते, धम्म-विनये आगारस्मा अनगारियं पव्वजित्वा अरहत्तफलं ति सच्छिकातुं बहूपकारा, भन्ते, महापलापती गोतमी ...

साधु, भंते, लभेप्य मातुगामो .. पवज्जं।।

चुलवग्ग पृ 374

69 क स चे आनन्दे नालभिस्स मातुगामो पव्वज्जं, चिरट्ठितिकं आनन्द, ब्रह्मचरियं अभविस्स ... यस्मिं धम्मविनये लभति मातुगामो ... पवज्जं, न तं ब्रह्मचरियं चिरट्ठितिकं।

चुल्लवग्ग, पृ. 376–77।

ख. जैन धर्म और दर्शन, मुनि नथमल, सम्पा. छगनलाल शास्त्री, प्र.स 1960, प्रका. मन्नालाल सुराणा, कलकत्ता, पृ. 37–39।

70 जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, श्री शांतिचन्द्रवृत्ति, द्वितीय वक्षस्कार, देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सन् 1920, पत्रांक 146।

71. तित्थं पुण चाउवन्नाइन्ने समणसंघो तं, समण समणीओ, सावया सावियाओ, भगवती 28, 8, 682 उद्धृत :- भगवान् महावीर एक अनुशीलन, आ. देवेन्द्र मुनि, पृ. 417।

72. क. तस्य तीर्थंकर नामकर्म विपाकोदयप्रभवत्वात्, उक्त चं त च कहं वेइज्जइ? अगिलाए धम्म देसणाए इति, श्री प्रज्ञापना सूत्र, मलयगिरि, पत्रांक 1।

ख. वैशाली के राजकुमार, तीर्थंकर वर्धमान महावीर, डॉ. नेमिचंद जैन, हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर, च. सं. सन 1996, पृ. 18–19।

73. क अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं सासणस्स हियट्ठाय, तओ सुत्तं पवत्तेई। आ. निर्युक्ति, गाथा 192।

ख. भगवता अत्थो भणिता, गणहरेहिं गंथो कओ वाइयो च इति। आ चूर्णि, जिनदास, पत्रांक 334।

ग. इमे दुवालसंगे गणिपिडगे पण्णत्ते।
समवायांग, अभयदेवसूरि, आगमोदय समिति, सन् 1918, सूत्र 136, पत्रांक 106–7।

74 क से जहाणामए अज्जो। मम नव गणा एगारस गणधरा, श्री स्थानांग सूत्र, प्रथम विभाग, आगमोदय समिति, सन् 1918, सूत्र 9।

ख. अभिधान चिंतामणि, हेमचन्द्राचार्य, देवाधिदेव काण्ड, श्लोक 31 प्रका. देवचद लालभाई, सन् 1946, पृ.5।

75 भगवती सूत्र, तृतीय विभाग, अभयदेवसूरि, वही, शतक 25, 6।

76 जैन तत्व प्रकाश, पृ 25–35।

77 जिणधम्मो, वही, पृ. 35।

78 क आवश्यक निर्युक्ति, गाथा 192, पृ. 79।

ख. दृष्टव्य-श्री गणधर सार्द्धशतकम्, श्री जिनदत्तसूरि, प्रका श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान भण्डार, सूरत, सन् 1944, पत्रांक 6-7।

79 क. श्रीमत् ज्ञाताधर्मकथांग, अभयदेववृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1919, पत्रांक 123।

ख. विशेषणवती, जिनभद्र क्षमाश्रमण, प्रका. श्री ऋषभदेव जी केशरीमल जी संस्था, रतलाम, सन् 1927, पत्राक 8।

80. समवायांग सूत्र, श्री अभयदेव सूरि, आगमोदय समिति, सन् 1918, पत्राक 60-62।

81 समवायांग, वही, पत्रांक 63-64।

82 जिणधम्मो, वही, पृ.11।

83 क. समवायांग, वही, पत्रांक 61-62।

ख श्री औपपातिक सूत्र, अभयदेवसूरि, आगमोदय समिति, सन् 1916, सूत्र 34, पृ. 78।

ग. जैन धर्म दर्शन, डॉ. मोहनलाल मेहता, प्रका. पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, सन 1973, पृ 14।

84. अलंकार तिलक 1/1।

85 प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 33।

86 निशीथ चूर्णि 11, 3618।

87 प्राकृत साहित्य का इतिहास, डॉ जगदीश चन्द्र जैन, पृ. 427-28।

88 वृहत्कल्प भाष्य भाग-1 की वृत्ति गाथा 1231 में मगध, मालव, महाराष्ट्र, लाट, कर्णाटक, गौड़, विदर्भ आदि देशों की भाषाओं को देशी भाषा कहा है।

89 क. भगवती वृत्ति 5/4।

ख. औपपातिक वृत्ति, वही सूत्र 34, पृ. 148।

90. स्थानांग, अभयदेव, वही, स्थान 10।

ख. आवश्यक सूत्रस्योत्तरार्ध (पूर्व भाग) भद्रबाहु निर्युक्ति भाष्य, हरिभद्रसूरि वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1917, पृ. 539।

92 विशेषावश्यक भाष्य 1974।

93 त्रिषष्टिश्लाका, वही, पृ 105।

94 महावीर चरित्र, गुणचन्द्र, सप्तम प्रस्ताव, वही, पृ. 365।

95 चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, आ. शीलांक, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, सन् 1961, पृ 299-303।

96 तओ णं समणं भगवं महावीर उप्पण्णणाण दंसण धरे अप्पाणे च लोगं च

अभिसमेक्ख पुव्व देवाण धम्ममाइक्खति तओ पच्छा मणुस्साणं, आचारांग 3, 15, 41।

97 दृष्टव्य .– बौद्ध साहित्य का लकावतार सूत्र।

98 दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्त, पृ 16–22, हिन्दी अनुवाद।

99 भागवत पुराण 10, 2, 40।

100 क समवायांग, अभयदेववृत्ति, वही, सूत्र 147, पृ. 129–32।

ख नंदीसूत्र, देववाचक, मलयगिरि वृत्ति, आगमोदय समिति, सन 1924, सूत्र 57, पृ. 235–54।

101 समवायांग, अभयदेववृत्ति, वही, पृ 42।

102 कल्पसूत्र, भद्रबाहु, समयसुदरगणिवृत्ति, प्रका. श्री जिनदत्तसूरि पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, सन् 1939, पृ 211–14।

103 आवश्यकचूर्णि, भाग 1–2, रतलाम।

104 आवश्यक निर्युक्ति, 369।

105 आवश्यकवृत्ति, मलयगिरि, भाग–III, आगमोदय समिति, सन् 1916, पृ 596–601।

106 चउपन्नमहापुरिस चरियं, आ. शीलांक (सम्पूर्ण)।

107 त्रिषष्टिश्लाकापुरूष चारित्र (सम्पूर्ण)।

108 Agama Aura Tripitaka Eka Anuslana, Muni Shri Nagarajaji, Today and Tomarrow's Printers and Publishers, Delhi, 1986, Volume I, Page-79

109 अनेक विद्वान इसे वीर निर्वाण 960 की रचना मानते है परन्तु वह शास्त्र लेखन का समय है, रचना का नही।

110 मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, श्री गौरीचंद हीराचद ओझा, सन् 1951, पृ 13।

111 भगवती सूत्र, प्रथमो विभाग., अभयदेवसूरिवृत्ति, 5, 9, सूत्र 227, पत्राक 248।

112 मज्झिमनिकाय 56, अंगुत्तर निकाय।

113 सूत्रकृतांग चूर्णि, जिनदासगणि, श्री ऋषभदेवजी केशरीमल जी श्वेताम्बर सस्था, सन् 1941, पृ 117–186।

114 क औपपातिक, अभयदेव वृत्ति, आगमोदय समिति, सन 1916, पत्राक 9–22।

ख विश्व इतिहास की झलक, जवाहरलाल नेहरू, प्रका. सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, द्वि स. 1952, पृ. 35।

115 उत्तराध्ययन, शान्त्याचार्य, वृहद्वृत्ति, प्रका देवचन्द लालभाई, सन् 1917, पत्राक 473।

116 उत्तराध्ययन, नेमिचंद, दिव्यदर्शन ट्रस्ट, बम्बई, 20, 34, पृ 179–80।

117 दीघनिकाय 3, 11, पृ 312–13।

118 तिलोयपण्णत्ति, यति वृषभाचार्य विरचित, सम्पा आदिनाथ उपाध्याय, हीरालाल जैन, प्रथम भाग, शोलापुरीयो जैन सस्कृति सरक्षक संघ, सन् 1943, 4, 54, पृ 209।

119 प्रश्नव्याकरणवृत्ति, अभयदेवसूरि, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1919, पृ 99।

120 श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजय जी, पृ. 74।

121 श्रेणिक चारित्र के अनुसार, श्रेणिक राजा की माता का नाम कलावती था।

122 त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 116–18।

123 सुलसा चारित्र, जयतिलकसूरि विरचित, सर्ग 2–3, श्री जैन विद्याशाला, अहमदाबाद, सन् 1899।

124 क त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही पृ 121–23।

ख श्री महावीर कथा, सम्पा. गोपालदास जीवाभाई पटेल, पृ. 232–36।

125 क यहा वर्णन त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र के अनुसार है लेकिन श्रेणिक चारित्र एवं जैन कथा माला भाग 37 मे नंदीग्राम का वर्णन है, अतएव वही से दृष्टव्य है।

ख. महावीर कथा, वही, पृ 236–39।

126 श्रेणिक रास एवं श्रेणिक बिम्बिसार मे भरत चित्रकार का उल्लेख है तथा सुज्येष्ठा के स्थान पर चेल्लना का चित्र बनाया, ऐसा उल्लेख मिलता है। जैन कथामाला, युवा श्री मधुकर मुनि, भाग 7, पृ 47।

127 जैन कथामाला, युवा. श्री मधुकर मुनि, प्रका. मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर, द्वि सं. 1986, सप्तम भाग, पृ. 48। दृष्टव्य · जैन धर्म का मौलिक इतिहास, भाग–2, पृ. 256।

128 क. महावीर कथा, वही, पृ 239।

ख जैन कथा, भाग 37, उपा. श्री पुष्कर मुनि, तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, पृ. 78–93।

129 क त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही. पृ. 130–3।

ख जैन कथा, 37, वही, पृ 93–95।

130 क सुलसाचारित्र, वही, सर्ग 3, पृ 73।

ख. भगवान् महावीर, लेखक–कामता प्रसाद, प्रका मूलचंद किशनलाल कापड़िया, सूरत, प्र स वीर सवत् 2450, पृ. 142।

131 क त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 131।

ख. सुलसाचारित्र, वही सर्ग 5।

132 निरयावलिका, प्रथम वर्ग, प्रथम अध्ययन, चन्द्रसूरि विरचित वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1922, पत्राक 9–12।

133 ज्ञाताधर्मकथांग, अभयदेव वृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1919, पत्रांक 12–38।

134 वही, पत्रांक 38।

135 मेघकुमार, प. छोटेलाल यति, प्रका. जीवन कार्यालय, अजमेर, सन् 1934, पृ. 24।

136 जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वितीय वक्षस्कार, श्री शांतिचन्द्र वृति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1920, पृ. 136–37।

137. जैन धर्म का इतिहास, लेखक मुनि सुशील कुमार, अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स भवन, दिल्ली, सन् 1958, पृ. 194–95।

138 क. उत्तराध्ययन, भावविजयजी, प्रका. श्री जैन आत्मानंद सभा, भावनगर, सन् 1918, पृ. 410–11।

ख. उत्तराध्ययन (काव्यमय) मुनि वीरेन्द्र, प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, अध्ययन–20।

139 क. दशवैकालिक, टीका उपा. श्री आत्माराम जी म.सा., सम्पा. अमरमुनिजी, प्रका. श्री ज्वालाप्रसाद माणकचंद जैन, महेन्द्रगढ़, सं. 1989, पत्रांक 808।

ख. दशवैकालिक सावचूरि, आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज, प्रका. राव बहादुर मोतीलाल बालमुकुन्द मुथा, सतारा, प्र.सं. पृ. 254।

ग. उत्तराध्ययन, भावविजयजी, वही, पत्रांक 411।

140 क. हरिभद्रीय आवश्यक, वन्दनाध्ययन, पत्रांक 518।

ख. प्रवचनसारोद्धार, पूर्वभाग, आ श्री नेमिचंदजी, प्रका. देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, गाथा–103–123।

ग. जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, श्री भैरोदान सेठिया, प्रका. सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, प्र.सं. वि.सं. 1997, पृ. 357–363।

141 क. उत्तराध्यन, शान्त्याचार्य, वही, पत्रांक 466–81, सन् 1917।

ख. उत्तराध्ययन, नेमिचन्द जी, प्रका. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, मुम्बई, पृ. 178–82।

142 त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही 10,6,8।

143 भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल, पृ 62।

144. भारतीय इतिहासः एक दृष्टि, डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, पृ. 65।

145 जैन धर्म का मौलिक इतिहास, आ. श्री हस्तीमल जी म.सा , भाग–2, पृ 256।

146 जैन कथा माला, भाग–7–8, लेखक युवा मधुकर मुनिजी, पृ. 9–10।

147 वही, पृ 10।

148 दशाश्रुतस्कन्धसूत्र, टीका श्री घासीलाल जी महाराज, प्रका. अ.भा.श्वे. स्था जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट, द्वि स सन् 1960, पृ. 332–365।

149 ज्ञाताधर्मकथांग, अभयदेववृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, सन् 1919, पत्राक 46। इन्द्रादि महोत्सवो के लिए द्रष्टव्य ग्रन्थ।

<u>इन्द्रमहोत्सव</u> ·–

क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, पर्व 1, सर्ग 6, श्लोक 214–15।

ख. वासुदेवहिण्डी, पृ. 184।

ग. निशीथचूर्णि, पत्रांक 1174।

घ वृहत्कल्प लघुभाष्य, प्रका. श्री जैन आत्मानंद सभा, सन् 1938, भाग–5, श्लोक 5153, पृ 1371।

ङ आवश्यक चूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र 315।

<u>स्कन्द महोत्सव</u>· –

क. वृहत्कल्प, भाग–4, गाथा 3465, पृ 967।

ख. आवश्यकचूर्णि, पूर्व भाग, जिनदास महत्तर, प्रका. श्री ऋषभदेवजी, केशरीमल जी संस्था, रतलाम, सन् 1928, पत्रांक 315।

<u>रूद्रमह</u> ·–

क. निशीथचूर्णि, पत्राक 236।

ख. व्यवहार भाष्य, भाग 7, सप्तम उद्देशक, प्रका. वकील केशवलाल, प्रेमचंद, अहमदाबाद, गाथा 313।

<u>मुकुन्दमह</u> :–

आवश्यक चूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्रांक 293–94।

<u>शिवमह</u> :–

क वृहत्कल्पसूत्र (लघुभाष्य), सटीक, भाग–1, वही, पृ 253 की पाद टिप्पणी।

ख वृहत्कल्पसूत्र (लघुभाष्य), पंचम विभाग, श्लोक 5928, पृ 1563।

<u>वेसमणमह</u> :–

जीवाजीवाभिगम, तृतीयप्रतिपत्ति, मलयगिरिवृत्ति, पत्रांक 281।

<u>नागमह</u> .–

वासुदेव हिण्डी, पृ. 304–5।

त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, पर्व–2, सर्ग 5–7।

यक्षमह :-

जक्खपिसाय महोरग गंधव्वा साम किंनरा नीला।
रक्खस किपुरूसा वि य, धवला, भूया पुणो काला।।
चन्द्रसूरि प्रणीत संग्रहणी गाथा 39, पृ. 109।

भूतमह :-

उत्तराध्ययन 36/205।

150. व्याख्याप्रज्ञप्ति, शतक 14, 8, अभयदेववृत्ति, प्रका आगमोदय समिति, सन् 1919, पत्रांक 654–55।

151 जम्बद्वीपप्रज्ञप्ति, प्रथम वक्षस्कार, पूर्व भाग, प्रका देवचन्दलालभाई जैन पुरत्तकोद्धार समिति, सन् 1920, पृ. 74।

152 क श्रुत्वा तां देशना, भर्तु सम्यक्त्व श्रेणिकोऽमयत्।
श्रावकधर्मं त्वभयकुमाराद्या प्रपेदिरे।।
त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र 10, 6, 376।

ख जैन कथामाला, भाग 7–8, वही पृष्ठ 169।

विशेष विवरण हेतु दृष्टव्य :- आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, पृ 310–18।

153. क दशाश्रुतस्कन्ध मूलनिर्युक्तिचूर्णि, श्रीमणिविजयजी ग्रन्थमाला, भावनगर, वि स. 2011, पत्रांक 88।

ख. पञ्चाशक, हरिभद्रसूरि, अभयदेववृत्ति, जैन धर्म प्रसारक सभा, भावपुर, सन् 1912, पत्राक 247–49।

154. क. श्रीदशाश्रुतस्कन्ध, श्री घासीलालजी म.सा., वही, पृ. 366–448।

ख. मानव अधिकार संहिता (या शांत सुधानिधि), मुद्रक–युनियन प्रिंटिंग प्रेस कम्पनी लिमिटेड, अहमदाबाद, सन 1698, पृ 20।

155. समवायाग, अभयदेववृत्ति, आगमोदय समिति, सन् 1918, पत्रांक 158–59।

156 क. ज्ञाताधर्मकथांग, अभयदेवसूरि, पत्रांक 97–59।

ख. जिनागम कथा सग्रह, सम्पा. बेचरदास दोशी, जैन साहित्य प्रकाशन, ट्रस्ट, अहमदाबाद, द्वि.सं. 1940, पृ 35–38।

ग भगवान् महावीर, विराट, पृ 56।

घ. जैन धर्म का इतिहास, मुनि सुशील कुमार, प्रका. सम्यक्ज्ञान मंदिर, कलकत्ता, संवत् 2016, पृ. 73।

157. भगवान् महावीर का आध्यात्मिक हित बोध एव हित शिक्षाएं आदि का सकलन, संकलनकर्ता–आनन्दमल चोरड़िया, अजमेर, प्र स. 1974, पृ 40–41।

158 संगीत श्री मेघकुमार, चन्दनमुनि जी, जैन पुस्तक प्रकाशन समिति, गीदड़ बाहमण्डी पंजाब, प्र.सं. 2029, पृ. 46।

159 क ज्ञातधर्मकथाग, वही, पत्रांक 60–71।
    ख सद्धर्ममण्डन, अनुकम्पाधिकार, आ.श्री जवाहर, प्रका. श्री अ भा. सा. जैन संघ, बीकानेर, द्वि सं., सन् 1966।
    ग. अनुकम्पा विचार, ढाल पहली, प्रका धन्नोमल कपूरचंद जौहरी, दिल्ली, वि.स. 1989।

160 क. आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्र 559।
    ख आवश्यकचूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र 171।
    ग. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, 10, 6, 408–439।
    घ. चतुर महावीर, लेखक–स्वामी सत्यभक्त, प्रका. सत्याश्रम वर्धा इतिहास, संवत, 1944, 133–42।
    ड हरिभद्रीय आवश्यकवृत्ति, पूर्वार्द्ध पत्रांक 430–31।

161 वृहत्कल्पसूत्र, उद्देशक 3, दृष्टव्य–निशीथ सूत्र, उद्देशक–16।

162 वृहत्कल्पसूत्र उद्देशक–3।

163 दशवैकालिक चूर्णि, जिनदास महत्तर, श्री ऋषभदेवजी केशरीमल जी जैन श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् 1933, पृ 112।

164 क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 142–44।
    ख. जैन कथामाला, युवा. श्री मधुकरमुनि, अष्टमभाग, वही, पृ.110।
    ग. जैन कथाए, भाग–37, पृ 188–95।

165 त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 145–49।

166 त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 150।

167 क. वही, पृ 225–26।
    ख श्रमण महावीर, आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू, सन् 2003, पृ 237–42।

168 त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 226–31।

अनुत्तरज्ञानचर्या का द्वितीय वर्ष

संदर्भ

1 क. आचारांग, द्वितीयश्रुत स्कन्ध, आ. शीलांका, अध्ययन 15।
 ख. कल्पसूत्र, देवेन्द्रमुनिजी, सूत्र-7, पृ.43।
 ग आवश्यकचूर्णि, पूर्वार्द्ध, पत्राक 236।

2. भगवतीसूत्र, द्वितीयो विभाग, अभयदेवसूरि, पत्रांक 456।

3. क. व्याख्याप्रज्ञप्ति, अभयदेव सूरि, प्रका. हीरालाल हसराज जैन भास्करोदय प्रेस, जामनगर पत्रांक 243, शतक 2 उद्देशक 5।
 ख. श्री भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेववृत्ति, प्रका. आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1919, 9, 33, पत्राक 457।
 ग. श्रीराम उवाच, आ. श्री रामलाल जी म.सा., प्रका. श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, भाग-7, प्र.सं.2006, पृ. 117।

4. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयेदवसूरि, वही पत्राक 460।

5. क. भगवतीसूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, वही, पत्रांक 460-61।
 ख. महावीर-चरित्र, आ. गुणचंद, अष्टम प्रस्ताव, वही, पृ. 380-82।
 ग. त्रिषस्टिश्लाकापुरूशाचारित्र, वही, पृ 163-64।

6. क. स्थानांग, अभयदेवसूरि, उत्तरार्द्ध, श्री आगमोदय समिति, सन् 1918, पत्रांक 410।
 ख. उत्तराध्ययन, शान्त्याचार्य, वही, पत्रांक 53।
 ग. उत्तराध्ययन, नेमिचंदवृत्ति, पृ. 69।
 घ. इदेव भरतक्षेत्रे कुण्डलपुरं नाम नगरम्। तत्र भगवत· श्री महावीरस्य भागिनेयो जमालिनाम राजपुत्र आसीत्।
 विशेषावश्यकभाष्य, पत्र 935।
 ङ. कुण्डपुर नगरं, तत्थ जमालि सामिस्स भाइणिज्जो।
 आवश्यक हारिभद्रीय, पत्राक 312।

7. क. तस्य भार्या श्री म. महावीरस्य दुहिता।
 विशेषावश्यकभाष्य. सटीक, पृ. 935।
 ख. तस्य भज्या साहिमणो धूओ।
 उत्तराध्ययन, नेमिचंद 69।

8. क भगवती सूत्र, अभयदेववृत्ति, वही, पत्रांक 471।
 ख श्री आचाराग सूत्रम, शीलाकाचार्य, हर्ष पुष्पामृत जैन ग्रन्थ माला, गुजरात,

सन् 1978, प्रथम विभाग, प्रथम अध्ययन।

ग. दशवैकालिक चूर्णि, जिनदास, सन, 1933।

घ. आचारांग चूर्णि, जिनदास, श्री ऋषभदेवजी केशरीमल जी जैन श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् 1941, प्रथम उद्देशक पृ. 165-205।

ङ. श्री पिण्डनिर्युक्ति, भाष्यकार-भद्रबाहु, मलयगिरिवृत्ति, देवचंदलाल भाई, सन् 1918, पत्रांक 32-40।

च. ओघ निर्युक्ति, श्रीभद्रबाहु स्वामी, देवचन्दलालभाई, सन् 1974, पत्रांक 262-70।

छ. जीतकल्प सूत्र, जिनभद्रगणि, प्रका. गिरधरलाल पारख, अहमदाबाद, वि. सं. 1994, गाथा 35।

9. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, पत्रांक 475।

10. क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 164-65।

   ख. महावीरचारित्र, आ. गुणचन्द्र, अष्टम प्रस्ताव, वही, पृ. 391।

11. भगवती सूत्र, अभयदेववृत्ति, द्वितीय विभाग, पत्राक 461, 9,33।

12. क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 164।

   ख. महावीर चारित्र, आ. गुणचन्द्र, वही, पृ. 384।

13. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, पृ. 164।

14. महावीरचारित्र, आ. गुणचन्द्र, पृ. 391।

अनुत्तर ज्ञानचर्या का तृतीय वर्ष

संदर्भ

1. क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ ।
   ख श्री महावीर कथा, वही, पृ. 280-82।
2 त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, सर्ग 8, पृ 171-73।
3. श्री भगवतीसूत्र, द्वितीयो विभाग, अभयदेववृत्ति, वही, पत्रांक 558।
4 उदयन को विपाकसूत्र में हिमाचल की तरह महान प्रतापी राजा बतलाया है। विपाकसूत्र, 1, 5।
5. भगवतीसूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेवसूरि, वही, पत्रांक 558-61।
6. महावीर कथा, वही, पृ 285।
7. क. वही, पृ 285।
   ख. श्रमणभगवान् महावीर, श्री कल्याण विजयजी, पृ 85।
   ग अन्तगड़ अनुत्तरोववाइयदसाओ, पृ. 34 (एन.पी. वैद्य द्वारा सम्पादित) उद्घृत भगवान् महावीर एक अनुशीलन, आ. देवेन्द्र मुनि, वही, पृष्ठ 435।
8 तीर्थंकर महावीर, लेखक-मधुकर मुनि, पृ. 169, वही।
9. श्री उपासक दशाङ्सूत्र, आ. श्री आत्माराम जी म.सा., प्र.स 1964, प्रका. आ श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना, पृ 9।
10. क. उपासकदशांग, युवा. श्री मिश्रीमल जी महाराज, प्रका. श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, सन 1980, पृ. 5-25, प्रथम अध्ययन।
    ख. द्रष्टव्य :- वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्धमान महावीर, डॉ. नेमिचंद जैन, प्रका. श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर, प्र.स 1972, पृ 216।
11. क उपासकदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 10-12।
    ख. गृहस्थधर्म भाग 1, 2, आ श्री जवाहर, श्री जवाहर साहित्य प्रकाशन समिति, भीनासर।
12. उपासकदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 13।
13. वही, पत्रांक 13।
14. क जिणधम्मो, 681-86।
    ख उपासकदशाक, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 17-22।
15 जिणधम्मो, वही पृ. 621-24।
16. उपासकदशाग श्री घासीलाल जी, प्रथम अध्ययन।

17 उपासकदशाग, श्री आत्मारामजी म.सा., वही, पृ. 57।
18 क जिणधम्मो, वही, पृ. 650-62।
 ख. उपासकदशाग, अभयदेववृत्ति, पत्राक 33-34।
19 क. उपासकदशाग, अभयदेववृत्ति, पत्राक 35-42।
 ख प्रवचनसारोद्धार, संस्कृत व्याख्या, श्री नेमिचंद जी, प्रथम भाग, देवचदलाल भाई जैन पुस्तकोद्धार, पत्रांक-76-76।
20 उपासकदशाग, आ.श्री आत्माराम जी म.सा , पृ 68-87, दृष्टव्य-धर्म और धर्मनायक, आ श्री जवाहर, तृ.स. वि.सं. 2041, पृ. 176-78।
21 उपासकदशाग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 63-64।
22 उपासकदशांग, आ श्री आत्मारामजी, पृ. 87-103।
23. श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजयजी, पृ 85।
24 क त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 231-32।
 ख. जैना कथाएँ, भाग 38, पृ. 83-85।
25 धन्नाशालिभद्र चौपाई, रमणलाल शाह, प्रका. रमणलाल शाह, बम्बई, प्र.सं. 1983, पृ. 152-54।
26. क. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 234-35।
 ख. जैन कथाएँ, भाग-38, उपा. पुष्कर मुनि, वही, पृ. 96।
27. धन्ना शालिभद्र चौपाई, वही, पृ 154-55।
28. जैन कथाएँ भाग-1, उपाध्याय पुष्कर मुनिजी, प्रका तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, द्वि.स सन् 1990, पृ 1-70।
29. क शालिभद्रचारित्र, आ श्री जवाहर, प्रका जवाहर समिति, भीनासर, च सं 2036, पृ. 63-103।
 ख त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 218।
30 क जैन कथाएँ, भाग-1, वही, पृ. 74।
 ख धन्य शालिभद्र महाकाव्यम्, पूर्णभद्रगणि विरचिता प्रका श्री जिनदत्त सूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार, सूरत, वि.स. 1991, तृतीय सर्ग।
31 शालिभ्रद चारित्र, आ. श्री जवाहर, वही, पृ 120-29।
32. क त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 235-40।
 ख जैन कथाएँ, भाग 41, पृ 142-52।
 ग. धम्मपद, अट्ठकथा।
33. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 240।
34. क त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 241।
 ख. जैन कथाएँ, भाग-38, पृ 99-122।

अनुत्तर ज्ञानचर्या का चतुर्थ वर्ष

संदर्भ

1. भगवान् महावीर एक अनुशीलन, आ. श्री देवेन्द्र मुनि जी, प्रका. श्री तारक गुरू जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, सन् 1974, पृ. 439-42।
2. श्री भगवती अवचूरि, श्री देवचंदलाल भाई, प्र.सं. 1974, पत्रांक 76।
3. क वही, श्री भगवती अवचूरि पृष्ठ 76।
   ख. भगवतीसूत्र, अभयदेववृत्ति, प्रथमोविभाग, पत्रांक 499।
4. क भगवती, अभयदेवसूरि, प्रथम विभाग, वही, पत्रांक 499।
   ख. प्रवचन सारोद्धार, भाग-2, ले. नेमिचंदसूरि, श्रीमती हरकोरचतुर्भुज, पालीतणा, सन् 1922, पत्रांक-437-38, द्वार 154।
   ग. जीवसमास प्रकरण, मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि, आगमोदय समिति, सन्-1927, पत्रांक 94-109।
5. क. वही, पत्रांक 202-05।
   ख. श्री अनुयोगद्वाराणि, मल्लधारी हेमचन्द्र सूरि, प्रका. आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1924,पत्रांक 160-63।
6. जैन कथामाला, युवा. श्री मधुकर मुनि, भाग-13, द्वि.सं. 1988, पृ. 34।
7. क उपदेश माला, सटीक, गाथा 20, पत्र 256।
   ख. भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, भाग-1, पत्र 107।
   ग. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 318।
8. शालिभद्रचारित्र, आ.श्री जवाहर, वही, पृ. 140।
9. धन्यशालिभद्र महाकाव्यम्, वही, सर्ग 4, पत्रांक 55-56।
10. शालिभद्र चारित्र, आ.श्री जवाहर, वही, पृ. 20।
11. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, सर्ग 10, पृ. 219।
12. शालिभद्रचारित्र, वही, पृ. 210।
13. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ 220।
14. क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 220।
    ख. शालिभद्रचारित्र, वही, पृ. 244।
15. क. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 220।
    ख. धन्यशालिभद्र महाकाव्य, सर्ग-4।
16. जैन कथाएँ, भाग-1, पृ. 74।
17. वही, पृ. 135।
18. त्रिषष्टिशलाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 222।

अनुत्तर ज्ञानचर्या का पंचम वर्ष

संदर्भ

1. क. विपाकसूत्र, अभयदेवसूरि, प्रका श्री सिद्ध क्षेत्रस्थ-मोहन विजय, जैन पुस्तकालय, पाछियापुरा, वि स. 1976, पत्रांक 115।

   ख. प्रवज्या के विस्तृत विश्लेषण हेतु दृष्टव्य :-
   पञ्चवस्तुक, लेखक हरिभद्र सूरि, प्रका. देवचन्द्र लालभाई, सन् 1927, पत्रांक 1-18।

   ग. उपासगदशांग, अभयदेववृत्ति, पत्रांक 92-94।

   घ. उपासगदशांग, आ श्री आत्माराम जी म.सा., पृ 161।

   ङ तीर्थंकर महावीर, युवा. श्री मधुकर मुनिजी, पृ. 174-75।

2 क. पन्नवणासूत्त स्तोक मंजूषा, भाग-।, प्रका. अगरचद भैरोदान सेठिया, बीकानेर, तृ सं. 2007, पृत्र 12।

   ख. बौद्ध साहित्य जातक (जातक हिन्दी अनुवाद, भाग-4, पृ 139) दिव्यावदान, पृ 544, महावस्तु (जौस अनुदित) भाग-3, पृ 204, मे सिन्धु सौवीर राजधानी 'सेरूवा' (रूख) बतलाई है।

3. भगवती, द्वितीय भाग, अभयेदववृत्ति, 13, 6, वही, पत्रांक 618।

4. क. उत्तराध्ययन, भावविजयगणि, पत्रांक 381।

   ख. आवश्यकचूर्णि, उतरार्द्ध, पत्रांक 164।

5. क प्रभावती देवी समणोवासिया, आव. चूर्णि पत्रांक 399।

   ख. उत्तराध्ययन, नेमिचन्द्र वृत्ति, पत्रांक 253।

   ग. उत्तराध्ययन, भाव विजयजी वृत्ति, 18,5, पत्राक 380।

6. उद्दायण राया तावस भत्तो, आवश्यक चूर्णि, पत्रांक 399।

7 उत्तराध्ययन, भावविजयजी वृत्ति, 18, 84, 383।

8. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, वही, पृ. 251।

9. प्रश्न व्याकरण, चतुर्थ अधर्मद्वार, अभयदेववृत्ति, आगमोदय समिति, बम्बई 1819, पत्रांक 89-90।

10 क प्रेरणा की दिव्य रेखाएँ, आचार्य श्री नानेश, प्रका. श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर, सन् 1979।

   ख प्रश्नव्याकरण, युवा. श्री मधुकर मुनिजी, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, द्वि.स. 1993, पृ 278-79।

   ग प्रश्नव्याकरण, अभयदेववृत्ति, पत्राक 89-90।

11. क भगवान् महावीर एक अनुशीलन, वही, पृ. 450।
    ख. Agama Aura Tripitaka . Eka Anuselana, Muni Shri Nagarajaji, Volume I, Page-311
12. वृहत्कल्पलघुभाष्य, भद्रबाहुवृत्ति, भाष्यकार संघदासगणि, द्वितीय-विभाग, प्रथम उद्देशक, भाग-2, गाथा 997-99, पृ. 314-15, प्रका. श्री जैन आत्मानद सभा, भावनगर, सन् 1936।
13. Agama Aura Tripitaka . Eka Anuselana, Volume I, Page-311
14. महावीर चारित्र, आ. गुणचन्द, अष्टमप्रस्ताव, पृ 435।
15. महावीर चारित्र, आ. गुणचन्द, अष्टमप्रस्ताव, वही, पृ. 435।
16. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेव सूरि, पत्रांक 620।
17. भगवती सूत्र, द्वितीय विभाग, अभयदेव सूरि, वही, पत्रांक 620।
18. त्रिषष्टिश्लाकापुरूषचारित्र, पृ. 262-63, सर्ग-12।

चउद्दसरयण-१४ रत्न.
पुरोहित
वार्धिक
गाथापति
सेनापति
स्त्री
आधार-अर्द्धमागधी शब्द कोष
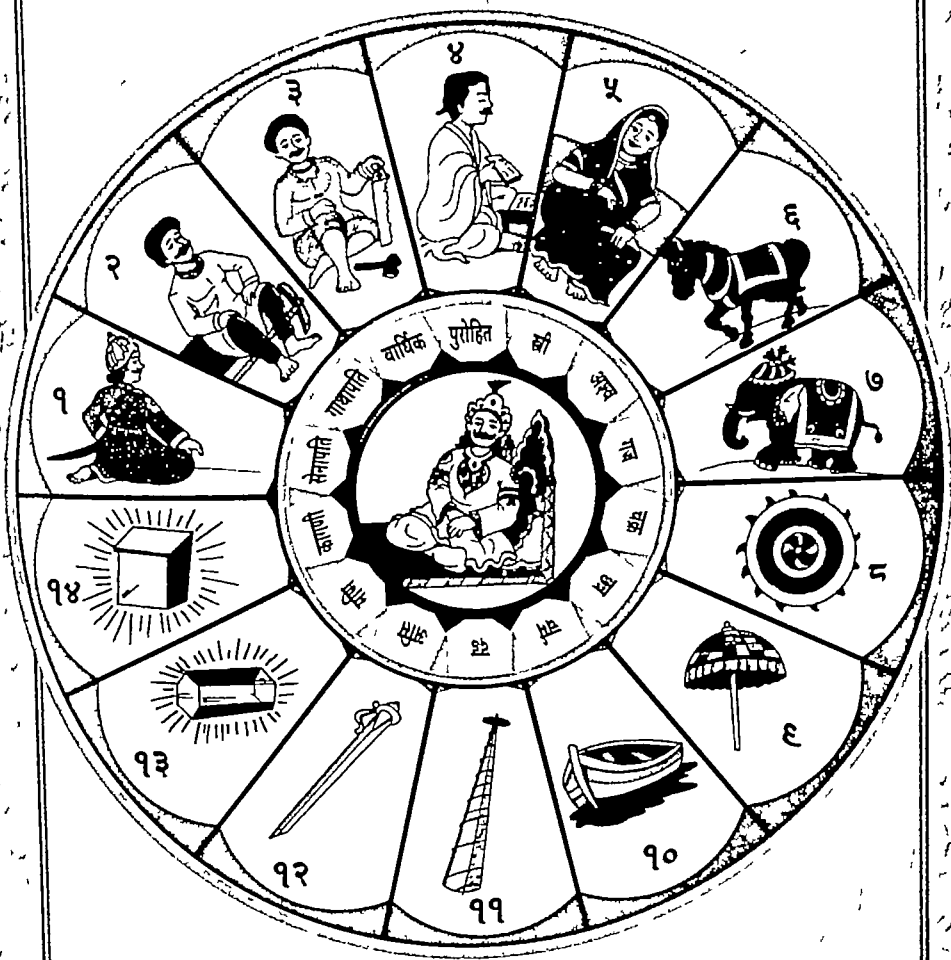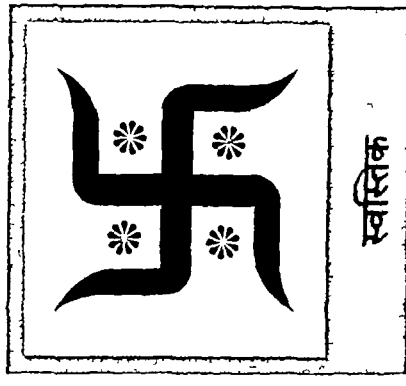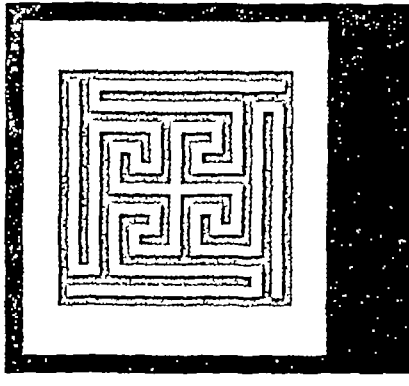
अट्ठमंगल-आठ मंगलिक
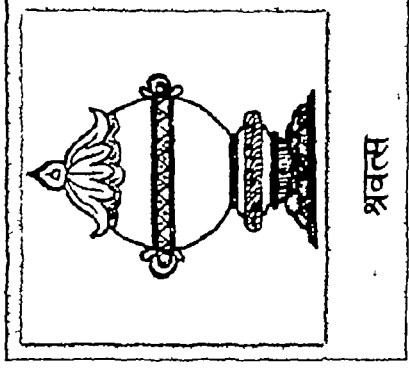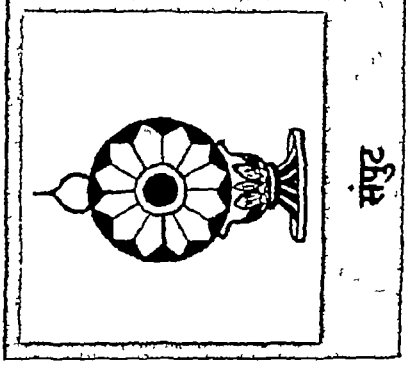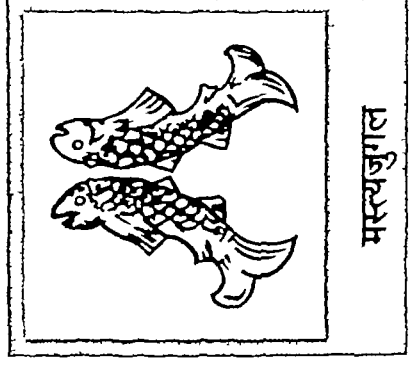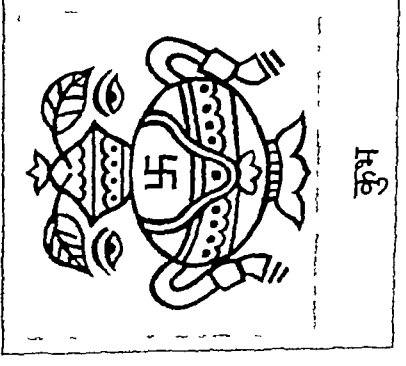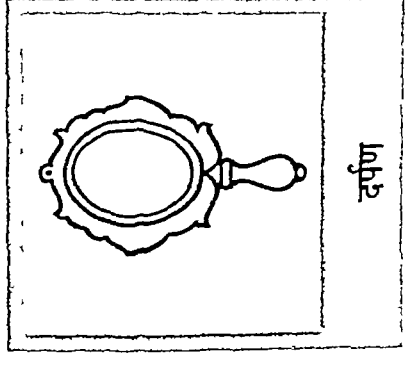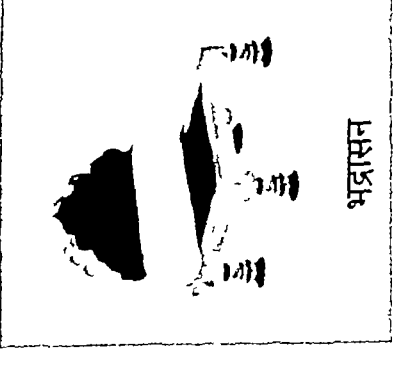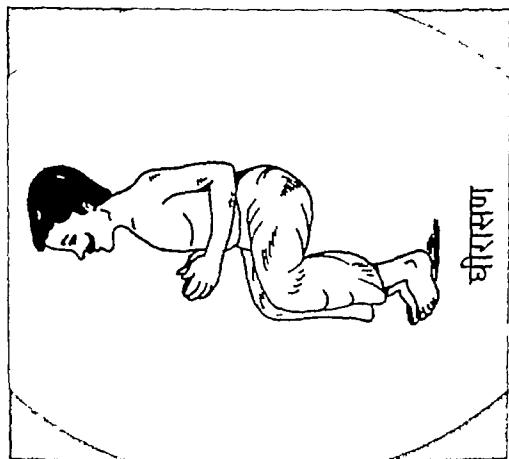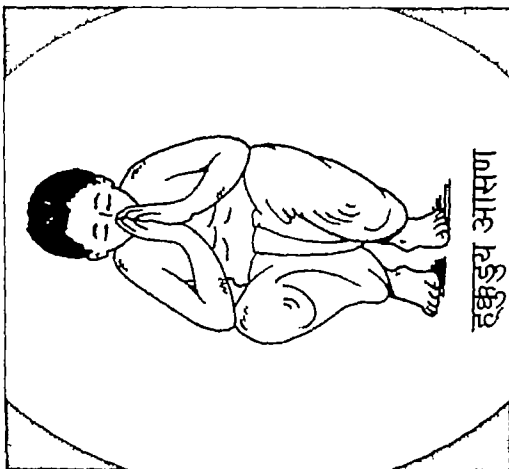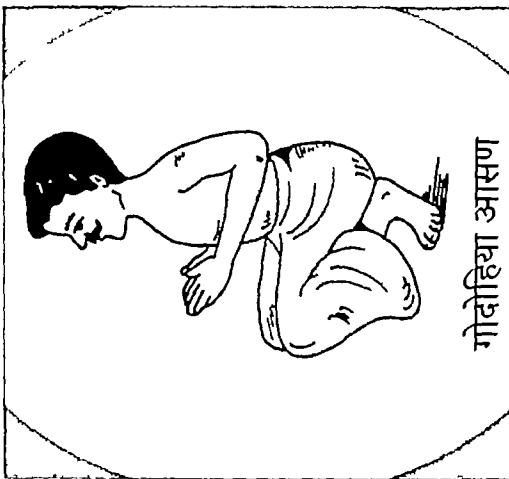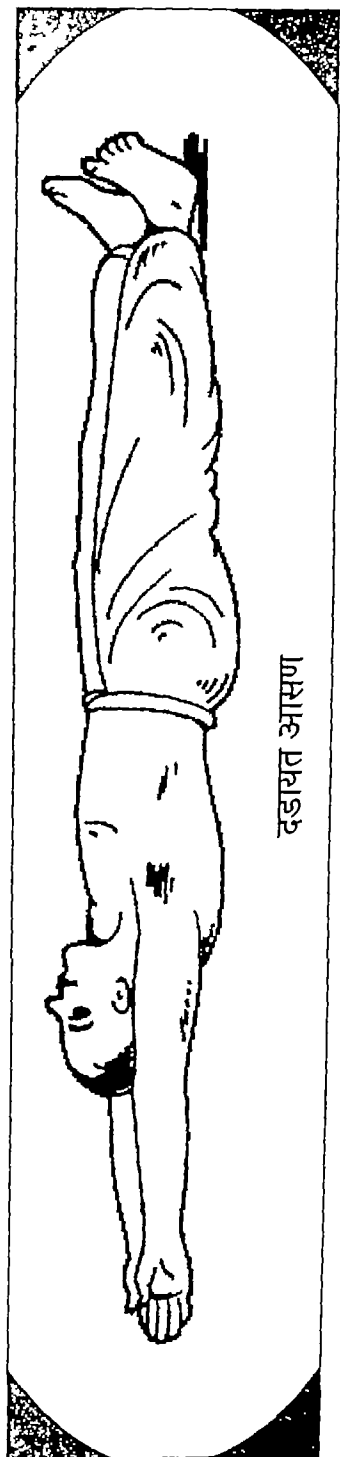
आधार-अर्द्धमागधीशब्द कोष
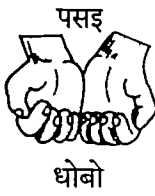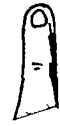
आधार-अर्द्धमागधीशव्द कोष
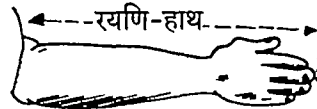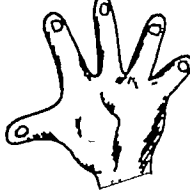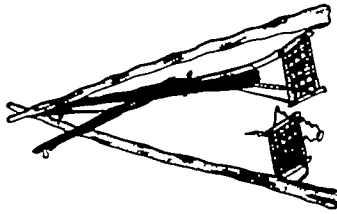
आधार-वृहत्संग्रहणी

सौधर्म कल्प के तेरह प्रतरों का दृश्य
प्रतर
13
12
11
10
9
8
7
6
5
4
3
2
1
पू
प
घनोदधि
आधार - बृहत्संग्रहणी
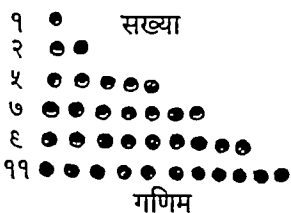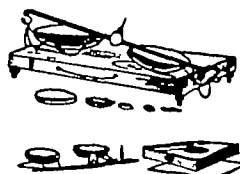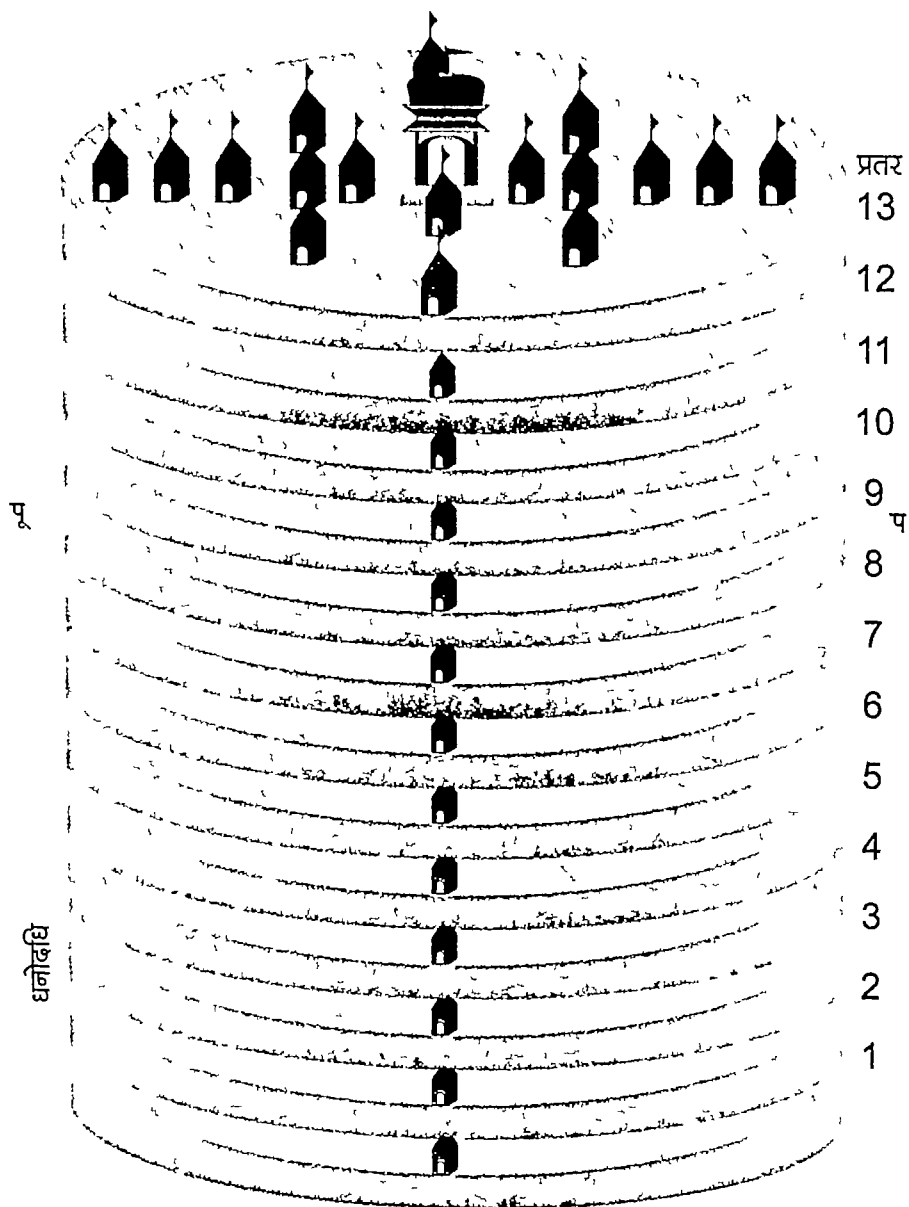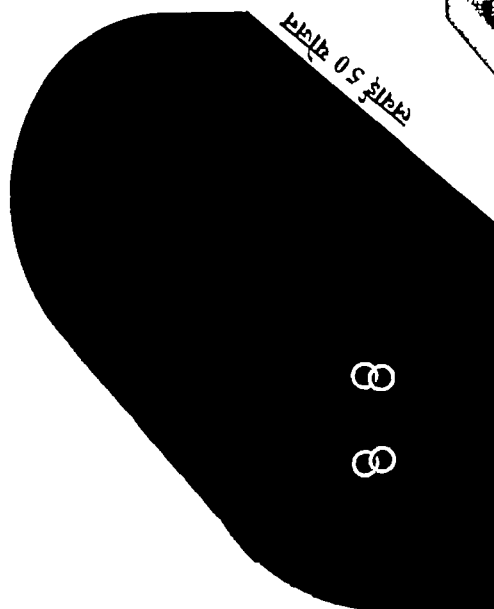
ऊँचाई 8 योजन
लंबाई 50 योजन
तमिस्त्र व खण्डप्रपात गुफा
चौड़ाई 12 योजन
आभियोगिक श्रेणियाँ
गगनवल्लभ आदि 50 नगर
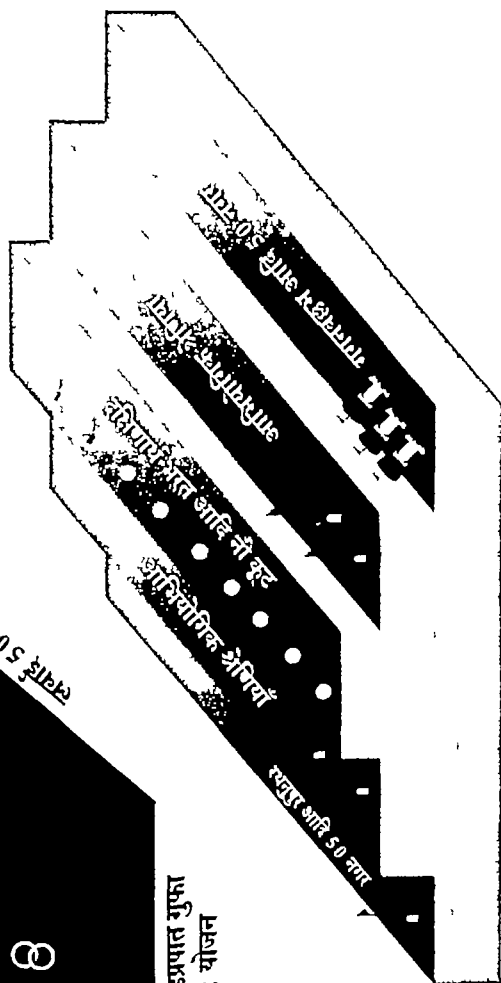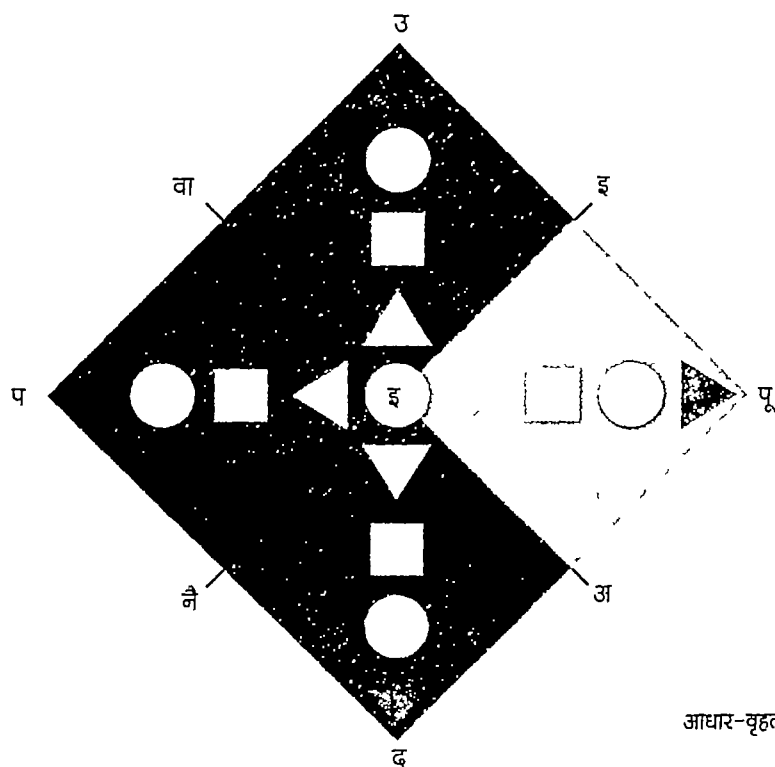
आवलिया पविट्ठ - आवलिकाबंध विमान
उ
वा
इ
प
इ
पू
नै
अ
द
आधार-वृहत्सग्रहणी
भद्रासन
आधार - अर्द्धमागधी शब्दकोष
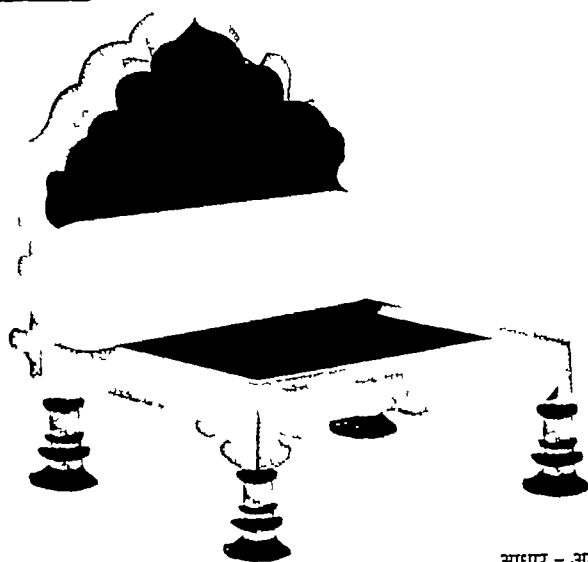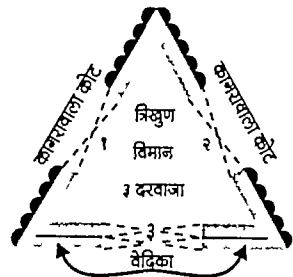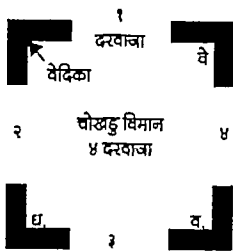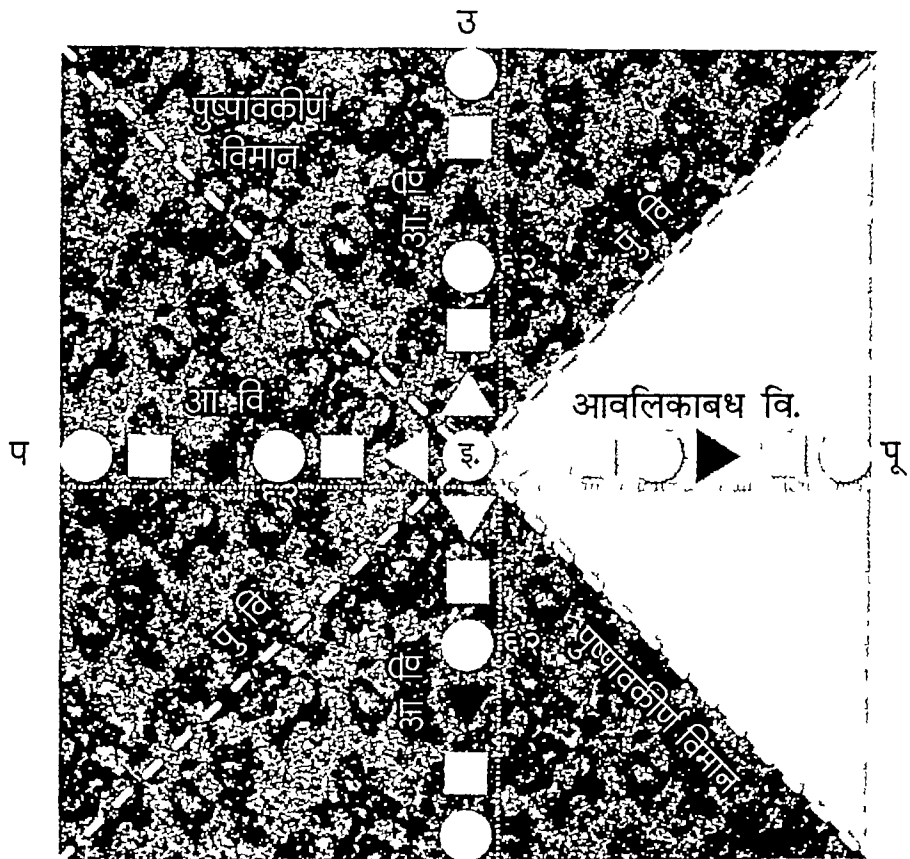
आधार-वृहत्सग्रहणी

विमान अर्थात् वैमानिक देवताओ के निवास स्थान .- वे निवास स्थान दो तरह से रहे हुए है । एक पुप्पावकीर्ण है (जो विखरे हुए फुलो के आकार में है) और दूसरे आवलिक अर्थात् पंक्तिवद्ध है, पंक्तिवद्ध विमाना की आकृति तीन प्रकार की होती है- 1 गोल, 2. त्रिकोण, 3 चतुपकोण है। गोल म एक दरवाजा, त्रिकोण में तीन दरवाजे और चतुपकाण मे चार दरवाजे है- गोल विमान म चारा तरफ कंगुरे वाला काट है। त्रिकोण विमान क दो तरफ कोट और एक तरफ वेवडा (पद्मवत वेदिका) है, चतुपकाण विमान के चारा तरप्फ वेदिका है।

पडक वन

उपरि तन काड ३६००० योजन ऊँ सर्वथा जाम्बूनद मय

सौमनस वन

मद्दयम काड ६३००० योजन ऊंचा ४ प्रकार का है आक रत्न मय स्फटिक मय स्वर्ण मय रजत मय

नन्दन वन

भद्रसाल वन

अधस्तन काड १००० योजन जमीन में गहरा, ४ प्रकार है पृथ्वी (मृत्तिका रूप), उपल-पाषण रूप, वज्र-हीर - कमय, शर्करा - कडकर रूप

वृत्त वैताढ्य

ल चौ ऊँ
१००० योजन
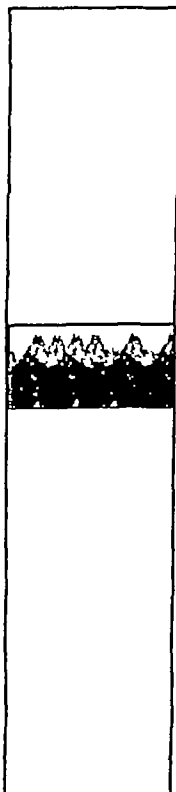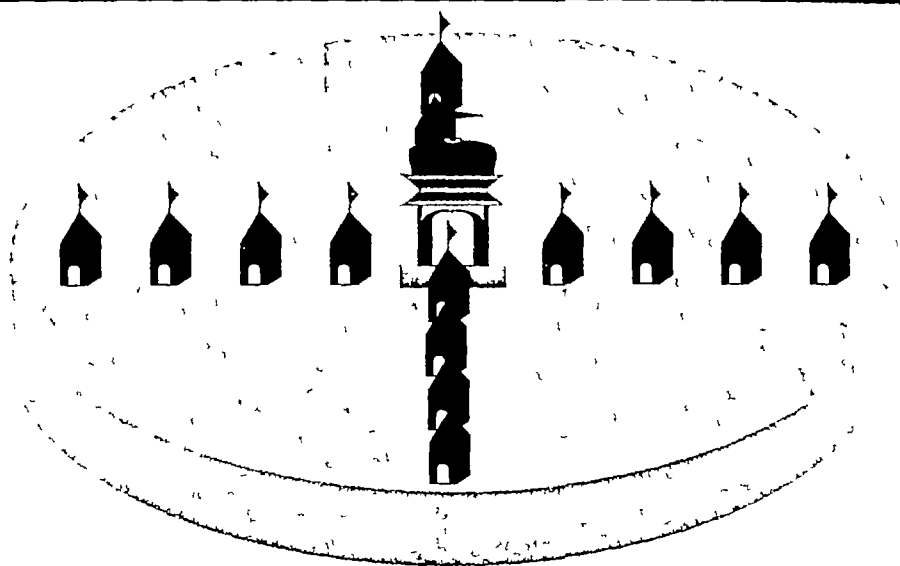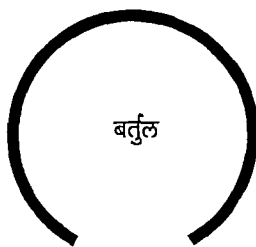
वैमानिक निकाय का प्रतर १
(वैमानिक निकाय का आवलिका-श्रेणिबद्ध तथा पुष्पावकीर्ण विमान युक्त प्रतर)

आधार - वृहत्सग्रहणी
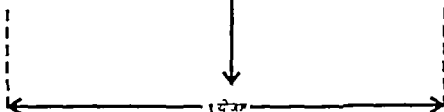
पल्योपम मापने का धनवृत्तपल्य

आधार - वृहत्सग्रहणी